सुधारक

पुनन्तु मा देवजनाः॥

वर्ष २ | गु० झज्जर (रोहतक), वैशाख-ज्येष्ठ सं. २०१२ वि. | वार्षिक मू० २)
अङ्क ८-९ | अप्रैल-मई १९५५–दयानन्दाब्द १३१ | इस अङ्क का १)

* भोजन-विशेषाङ्क *

जितना हिंसा और चोरी विश्वासघात छल कपट आदि से पदार्थों को प्राप्त होकर भोग करना है वह अभक्ष्य और अहिंसा धर्मादि कर्मों से प्राप्त होकर भोजनादि करना भक्ष्य है।

ऋषि दयानन्द
सत्यार्थप्रकाश-दशम समुल्लास

...स्थापक व सम्पादक–ब्र० भगवान्देव आचार्य, व्यवस्थापक–आचार्य० ब्र० वेदव्रत
...-सम्पादक – पं० विश्वप्रिय शास्त्री, सह-व्यवस्थापक––आचार्य० ब्र० सुदर्शनदेव

सुधारक के नियम

१—सुधारक अंग्रेजी महीने की १० ता० को डाकखाने में डाला जाता है। यदि २० ता० तक न मिले तो अपने पोस्ट आफिस में पूछताछ करनी चाहिये। फिर भी न मिले तो हमें लिखने पर और भेज दिया जायेगा।

२—लेख छोटे, सारगर्भित तथा कागज के एक ओर सुन्दर और सुपाठ्य लिखे हुयें हों।

३—लेख में उचित परिवर्तन करना, प्रकाशित करना या न करना, सब सम्पादक के आधीन है। अस्वीकृत लेख पोस्टेज भेजने पर ही वापिस लौटाया जा सकेगा।

४—आर्यसमाज या वेद के विरुद्ध लेखों का प्रकाशन सुधारक में न हो सकेगा।

५—सिद्धान्त विरुद्ध, अश्लील और मिथ्या विज्ञापनों के लिये "सुधारक" में स्थान नहीं है। इतना होते हुये भी विज्ञापन की सत्यता का उत्तरदायित्व हम पर नहीं है।

६—व्यवस्थापक सम्बन्धी सब पत्र व्यवहार, तार, मनिआर्डर आदि "व्यवस्थापक-सुधारक" के नाम से भेजने चाहियें। साथ ही ग्राहक अपनी संख्या अवश्य लिखें।

७—एजेण्टों को २५ प्रतिशत कमीशन दिया जाता है और ५ से कम की एजेन्सी नहीं ली जाती। विज्ञापन का धन अगाऊ भेजना आवश्यक है।

८—सब पत्र व्यवहार हिन्दी तथा संस्कृत में करें, उत्तर के लिये जवावी कार्ड डालें।

विज्ञापन दर

	पूरा पृष्ठ	आधा पृष्ठ	चौथाई पृष्ठ
एक बार	१६)	९)	५)
तीन बार	४०)	२४)	१३)
छः बार	७५)	४५)	२५)
१ वर्ष तक	१३०)	७५)	४५)

टाईटिल अन्तिम १५ प्रतिशत आधिक।

" तृतीय १० प्रतिशत अधिक

विशेपांक में सवाया। कम से कम ४)

सम्पादकीय---

"धर्मार्थकाममोक्षाणामारोग्यं मूलमुत्तमम्"

धर्म अर्थ काम और मोक्ष यह पुरुषार्थ चतुष्टय मानव जीवन का उद्देश्य है, इस पुरुषार्थ चतुष्टय की सिद्धि का मूल कारण आरोग्य है। शरीर यदि स्वस्थ नहीं है, रोगी है, तो पुरुषार्थ चतुष्टय की तो क्या बात, शौच स्नानादि नित्य कर्मों का अनुष्ठान भी भली भांति नहीं किया जाता। रोगी स्वयं दूसरों पर भार होता है, वह किसी की क्या सेवा या उपकार कर सकता है तथा क्या धर्म कमा सकता है। इसलिए शरीर की स्वस्थता को पुरुषार्थ चतुष्टय की सिद्धि के लिये हमारे शास्त्रकारों ने सर्वप्रथम और मुख्य स्थान दिया है।

जीवन का चरम लक्ष्य, अन्तिम ध्येय मोक्ष प्राप्ति ही है और उसकी प्राप्ति आत्मा इस शरीर रूपी रथ पर सवार होकर करता है। यदि शरीर रूपी रथ स्वस्थ और दृढ नहीं है तो मार्ग में ही जीर्ण शीर्ण हो जायेगा, तथा आत्मा अपने लक्ष्य की प्राप्ति नहीं कर सकेगा। आवागमन के चक्र से न छूटकर दुःख सागर में गोता लगायेगा। अतः आवश्यक है कि हमारा शरीर रूपी रथ, जीवन-यात्रा का साधन, स्वस्थ, दृढ और सुगठित हो।

"आहारवैषम्यादस्वास्थ्यम्" (सु० सू० अ० ४६)

भोजन की विषमता से स्वास्थ्य विगड़ जाता है। शरीर को स्वस्थ और नीरोग रखने के लिए भोजन का सर्वप्रथम स्थान है, क्योंकि यह पांच भौतिक शरीर भोजन के द्वारा ही हृष्ट-पुष्ट और दृढाङ्ग होता है, शरीर का उपचय-अपचय=वृद्धि और ह्रास भोजन पर ही निर्भर है। यदि शरीर को यथा-समय उचित भोजन मिलता रहता है तो शरीर भी हृष्ट-पुष्ट और सुडौल बन जाता है अन्यथा स्वास्थ्य गिर जाता है।

भोजन जैसे आवश्यक और महत्वपूर्ण विषय की उपेक्षा करना अपने जीवन की उपेक्षा करना है, भोजन के विषय में अज्ञान रखना मानो अपने जीवन को अन्धेरे में रखना है। हमारे पूर्वज ऋषि महर्षियों ने इस विषय पर गम्भीरता से विचार-विवेचन किया है। किस पदार्थ के क्या गुण हैं और वह भी किस अवस्था में लाभदायक अथवा हानिप्रद हैं। देश, काल, प्रकृति और अवस्था भेद से हमारे शास्त्रकारों ने भक्ष्याभक्ष्य पदार्थों की पूर्ण मीमांसा की है। इस लिए जब हमारा देश शास्त्रविहित भोजन करता था तब संसार में सभी दृष्टियों से शिरोमणि था। किन्तु दुःख है कि आज हम शास्त्रों को भूल गये, इसलिये अनेक कुरीतियां भोजन के विषय में प्रचलित हो गई हैं। मद्य, मांस, लहशुन, प्याज आदि अभक्ष्य पदार्थों का भी निःसङ्कोच होकर सेवन किया जाता है।

इसका मुख्य कारण यह है कि हम भोजन के मूल उद्देश्य को ही भूल गये, हमारा भोजन जीवन के लिए नहीं अपितु जीवन ही भोजन के लिये बन गया है। भोजन के परखने की कसौटी केवल जिह्वा ही रह गई है और यह पिशाचिनी इतनी लोलुप हो गई है कि इसने सर्वनाश ही कर डाला।

भोजन बिगड़ने और असंयमित होने से ब्रह्मचर्य के पालन और संयमी जीवन का अभाव होता जा रहा है। विषयवासना, शृंगार और व्यभिचार की भट्टी इतनी प्रचंड होकर धधक रही है कि इस ऋषियों की पवित्र भूमि भारत को नहीं, अपितु समस्त विश्व को ही भस्मसात् कर देना चाहती है।

ऐसे विकट काल में यह छोटा सा किन्तु सारगर्भित "भोजन-अङ्क" कुछ भी पथ-प्रदर्शन कर सका तो हमारा परिश्रम सफल है, देश का भविष्य उज्ज्वल है।

इस अङ्क में भोजन सम्बन्धी अनेक भ्रान्त धारणाओं और प्रथाओं का खण्डन किया गया है। बहुत सी ऐसी बातें भी पाठक महानुभावों

को मिलेंगी जो सर्वथा नवीन प्रतीत होती हैं, उन पर गम्भीरता से विचार करने से तत्त्वज्ञान होगा।

समयाभाव और कार्याधिक्य से जैसा हम चाहते थे वैसा तो नहीं किन्तु फिर भी हमने इसे यथाशक्ति उपयोगी और सुन्दर बनाने का यत्न किया है, हम अपने कार्य में कहाँ तक सफल हुए हैं यह तो पाठक महानुभाव ही बता सकेंगे।

शोक समाचार

गुरुकुल झज्जर रोहतक के ब्रह्मचारियों और कार्यकर्त्ताओं का यह अधिवेशन आर्य जगत के मान्य नेता श्री स्वा० स्वतन्त्रानन्द जी महाराज के असामयिक देहावसान पर महान् शोक प्रकट करता है। दयालु परमात्मा दिवङ्गत आत्मा को सद्गति तथा शोक सन्तप्त आर्यजनों को सान्त्वना प्रदान करे।

—मुख्याधिष्ठाता

हमारा भोजन

प्रत्येक मनुष्य स्वस्थ रहना चाहता है, रोगी रहना किसी को नहीं भाता। स्वास्थ्य और भोजन का परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध है। विचारशील मनुष्य तथा जातियाँ इसके महत्त्व को भली भान्ति समझते हैं। हमारे प्राचीन पुरुषा भोजन के महत्त्व से भली भान्ति परिचित थे, अतः वे इस विषय में बड़े सावधान रहते थे। आज हम उनकी सन्तान भोजन के विषय में किञ्चिन्मात्र भी ध्यान नहीं रखते।

दैनिक आहार का हमारे स्वास्थ्य, ब्रह्मचर्य, मन, बुद्धि और आत्मा पर क्या प्रभाव पड़ता है यह तो हम कभी विचारने का कष्ट भी नहीं करते। शुद्धाहार से ही मनुष्य का सब कुछ बनता तथा मिथ्याहार से सर्वनाश हो जाता है। इस पर हमारे प्राचीन ऋषि महर्षियों ने गम्भीरता से विचार ही नहीं अपितु पूर्णरूप से अनुभव किया था। इसी कारण उन्होंने अपनी खोज के आधार पर शुद्धाहार की बड़ी प्रशंसा की है। छान्दोग्योपनिषद् में लिखा है—

आहारशुद्धौ सत्त्वशुद्धिः सत्त्वशुद्धौ ध्रुवा स्मृतिः।
स्मृतिलम्भे सर्वग्रन्थीनां विप्रमोक्षः॥

आहार के शुद्ध होने से अन्तःकरण अर्थात् बुद्धि आदि की शुद्धि होती है, बुद्धि आदि के शुद्ध होने पर स्मृति दृढ वा स्थिर हो जाती है, स्मृति के दृढ होने पर सब (हृदय की) गांठें खुल जाती हैं अर्थात् जन्म-मरण के बन्धन ढीले हो जाते हैं। अविद्या-अन्धकार मिटकर मनुष्य सब दासता की शृंखलाओं से छुटकारा पाता है। और परम पद मोक्ष की ओर पग बढ़ाता है। निष्कर्ष यह निकला कि शुद्धाहार से मनुष्य के लोक और परलोक दोनों बनते हैं। अतः योगिराज श्री कृष्ण जी ने इसी भाव को गीता में निम्नलिखित प्रकार से प्रगट किया है—

युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु ।
युक्तस्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुःखहा ॥ (६-१७)

यथायोग्य आहार-विहार करने वाले, यथोचित कर्म करने वाले, उचित मात्रा में निद्रा और जागरण करनेवाले का यह योग दुःखनाशक होता है अर्थात् युक्तआहार-विहार आदि के सेवन से मनुष्य के सब दुःख दूर हो जाते हैं ।

भोजन की आवश्यकता सभी प्राणियों को है, कीट पतङ्ग से लेकर सर्वश्रेष्ठ प्राणी मनुष्य तक इसी भोजन के लिए व्याकुल दिखाई देते हैं । इस युग के मनुष्य की सम्पूर्ण-शक्ति इसी भोजन जुटाने में लगी हुई है, प्रातःकाल से लेकर सायंकाल तक "हाय भोजन हाय भोजन" करता हुआ दौड़ धूप करता है । यही नहीं, आज मानव का जीवनमरण भी भोजन के लिये ही है । किन्तु हम भोजन क्यों करते हैं इसका उचित उत्तर सहस्रों में से कोई विचारशील व्यक्ति ही दे सकता है । आयुर्वेद के ग्रन्थों में इसका उत्तर इस प्रकार दिया है—

आहारः प्रीणनः सद्योबलकृद्देहधारणः ।
स्मृत्यायुःशक्तिवर्णोजःसत्त्वशोभाविवर्धनः ॥

(भाव० ४-१)

भोजन से तत्काल ही शरीर का पोषण और धारण होता है, बल की वृद्धि होती है तथा स्मरणशक्ति, आयु, सामर्थ्य, शरीर का वर्ण, कान्ति, उत्साह, धैर्य और शोभा बढ़ती है । इससे सिद्ध हुआ कि—

"आहार हमारा जीवन है"

क्योंकि भोजन से मनुष्य क्या सभी प्राणियों के जीवन की रक्षा होती है अतः भोजन की आवश्यकता सभी प्राणधारियों को है । अथवा यों कहिये कि प्राणिमात्र के जीवन का आधार खान-पान है । यदि हमें भोजन न मिले तो हमारा जीवित रहना असम्भव है । अतः जन्म से लेकर मृत्युपर्यन्त प्रत्येक प्राणी जीवन धारणार्थ भोजन ग्रहण करता रहता है

और इसी से जीवित रहता है। अतः सर्वप्रथम तथा सर्वोत्तम भोजन का महत्त्व हमारे जीवन में यही है, जिसके बिना हम जीवित नहीं रह सकते ऐसे महत्त्वपूर्ण विषय से हमारा अन्धेरे में रहना कितनी आश्चर्य तथा मूर्खता की बात है। अपठित जिन्हें जीवन के विषय में कुछ भी ज्ञान नहीं, ऐसे लोग इस विषय में न जानते हों तो कोई बड़ी बात नहीं, किन्तु आज का शिक्षित समुदाय इस विषय में कोरा है। यह बड़े दुःख की बात है। अशिक्षित भाई तो कुछ प्राचीन परम्परा से इस विषय में थोड़ा बहुत ज्ञान रखते भी हैं किन्तु बड़ी-बड़ी बी० ए० एम० ए०, प्रभाकर और शास्त्री आदि डिग्रीधारी शिक्षितों में जीवन के के आधार आहार जैसे महत्त्वपूर्ण विषय के ज्ञान का अभाव हो तो ऐसी दयनीय अवस्था को देख अत्यन्त दुःख होता है और देश का निकट भविष्य उज्ज्वल दिखाई नहीं देता.।

वैसे इतना ज्ञान तो प्रत्येक प्राणी को है कि भोजन करने के पश्चात् बल उत्साह प्रतीत होता है। भूखे प्राणी में इसका अभाव देखने में आता है, यदि भोजन सर्वथा न किया जाये तो मृत्यु निश्चित रूप से दर्शन देती है,टाले नहीं टलती। यह शरीर के रचयिता अथवा प्रकृति का अटल नियम है। उचित एवं आवश्यक भोजन की प्राप्ति के बिना स्वास्थ्य रक्षा अथवा यों कहिये जीवनरक्षा नहीं हो सकती। इसीलिये स्वास्थ्य प्राप्ति तथा जीवनरक्षा के लिये भोजन का भी एक विशेष स्थान है। चरक शास्त्र में इसी विषय में कहा है—

बलमारोग्यमायुश्च प्राणाश्चाग्नौ प्रतिष्ठिताः।
अन्नपानेन्धनैश्चाग्निर्दीप्यते शाम्यतेऽन्यथा ॥

शरीर के अन्दर जो अग्नि है उसी के आश्रय से देह में प्राण स्थिर रहते हैं। यही अग्नि बल आरोग्य और आयु को प्रतिष्ठित करने वाली है अथवा यह कह सकते हैं कि अन्तरग्नि पर देह की स्थिति है। अन्नपान रूपी ईन्धन से ही अन्तरग्नि स्थिर रहती है, इस अग्नि का

दीपन और शमन भोजन से ही होता है। यह हम प्रत्यक्ष ही देखते हैं कि अन्न-पान के सेवन से आयु पर्यन्त प्राण रहते हैं। इसी विषय में चरक शास्त्र में अन्यत्र लिखा है—

इष्टवर्णगन्धरसस्पर्शं विधिविहितमन्नपानं प्राणिनां प्राणिसञ्ज्ञकानां प्राणमाचक्षते कुशलाः, प्रत्यक्षफलदर्शनात्, तदिन्धना ह्यन्तराग्नेः स्थितिः, तत्सत्त्वमूर्जयति, तच्छरीरधातुव्यूहबलवर्णेन्द्रियप्रसादकरं यथोक्तमुपसेव्यमानं विपरीतमहिताय सम्पद्यते ॥

कुशल विचारशील पुरुष जो अन्न-पान (भोजन) विधिपूर्वक बनाया गया है, जो अच्छे वर्ण (रङ्ग) गन्ध रस तथा स्पर्श संयुक्त है उसे प्राणियों अर्थात् मनुष्यादि देहधारियों के लिये प्राण तुल्य मानते हैं। क्योंकि यह प्रत्यक्ष अनुभव की बात है कि अन्न-पान से प्राणी के प्राण कार्य करते हैं। भोजन न करने से आयु क्षीण होकर मृत्यु हो जाती है। अन्न-पान से ही अन्तरग्नि स्थिर रहती है, अन्न से प्राणों को ही नहीं मन को बल मिलता है। जब भोजन यथोचित विधि से किया जाता है तो यह शरीर की वातादि (दोषों) का रस रक्त वीर्यादि धातुओं के व्यूह (सङ्घात) को बनाने वाला है। जहाँ जिस धातु की न्यूनता होती है वहाँ उसकी भोजन पूर्त्ति करता है। बल देने वाला, वर्ण (रङ्ग) को निखारनेवाला, कान्तिदायक और इन्द्रियों को प्रसन्न तथा तृप्त करने वाला है। विधि से विपरीत सेवन करने से हानिकारक सिद्ध होता है।

आहार से शरीर का विकास और वृद्धि

सभी प्राणी जिस समय जन्म लेते हैं, तत्काल इन्हें क्षुधा सताने लगती है। माता के गर्भ से बाहर आते ही मानव-शिशु तुरन्त ही रोने और बिलबिलाने लगता है और माता का स्तन जहाँ उसके मुख में आया तथा उसने दुग्धामृत का पान किया, वह तत्काल ही शान्तचित्त हो खेलने लगता है या सो जाता है। क्षुधा की निवृत्ति के साथ ही उसकी व्याकुलता भी भाग जाती है। सभी प्राणियों की ऐसी ही समानावस्था है।

इस दुग्धपान तथा भोजन के सेवन से सभी प्राणी क्षुधा के शान्त होते ही जहाँ शान्त हो जाते हैं वहाँ इनके शरीर में कुछ ही दिनों में वृद्धि-विकास स्पष्टतया दिखाई देने लगता है। इससे सिद्ध होता है कि जन्म के समय से लेकर युवावस्था तक मनुष्य ही नहीं, प्रत्येक प्राणी के शरीर की वृद्धि तथा विकास प्रतिदिन के किये हुए भोजन से होता रहता है। अतः हमारे शरीर की सम्यकतया वृद्धि वा सम्पूर्ण विकास हमारे भोजन पर निर्भर है। यदि हमें भोजन यथोचित रूप में न मिले तो शरीर का विकास भी रुक जायेगा। यदि भोजन सर्वथा न मिले तो विकास के स्थान में ह्रास तथा अन्त में शरीर का नाश ही हो जायेगा। इससे यह सिद्ध होता हैं कि आहार जहाँ जीवन का आधार है वहाँ विकास वा वृद्धि का भी मुख्य कारण है। किन्तु वह भोजन हितकर होना चाहिये। हितकर भोजन के विना वृद्धि असम्भव है। चरक शास्त्र में लिखा भी है—

"हिताहारोपयोग एक एव पुरुषस्याभिवृद्धिकरो भवति।"

अर्थात् एक हितकर आहार का उपयोग ही पुरुष के शरीर की वृद्धि करता है। वैसे तो जो कुछ खाया जाता है वह आहार (भोजन) कहलाता है। चरकशास्त्र में लिखा है—"आहारत्वमाहारस्यैकविध-मर्थाभेदात्।" निगरण अर्थात निगलने की क्रिया सभी आहारों में एक समान है। भिन्न भिन्न भोजन की वस्तुओं में निगरण के समान होने से सब को आहार कहते हैं। "आह्रर्यंते गलादधो नीयते इत्याहारः" गले से नीचे जो ले जाया जाता है उसे आहार कहते हैं। सभी आहार के द्रव्यों में आहारता होती है, किन्तु हमारे लिये हितकर आहार कौन से हैं यह जानने की वस्तु है। जो आहार शरीर की वृद्धि करे वह हितकर है, यह एक लक्षण तो कर दिया। आगे इसी विषय में लिखा है—

समांश्चैव शरीरधातून् प्रकृतौ स्थापयति विषमांश्च समीकरोतीत्ये-तद्धितं विद्धि, विपरीतमहितमिति,एतद् हिताहितलक्षणमनपवादं भवति॥

(चरक सूत्र० अ० २५)

अग्निवेश के पूछने पर भगवान् आत्रेय ने उत्तर दिया—जो आहार समावस्था में स्थित शरीर की वात पित्त कफ, रक्त मांस...वीर्यादि धातुओं को प्रकृति अर्थात् साम्यावस्था में ही रखता है, दूपित नहीं होने देता और सुरक्षित रखता है। विषम (बिगड़े हुए) धातुओं को समावस्था में ले आता है अर्थात् सुधार देता है उस भोजन को हितकर कहते हैं। इस से विपरीत जो सम धातुओं को विषम कर (बिगाड़) दे, और विषम अवस्था में रखे अर्थात् बिगड़ी को बिगड़ी ही रहने दे उसको अहितकर समझना चाहिये। इस विषय में खोलकर आगे लिखेंगे। विषम और अहित कर भोजन करने से अरुचि, शारीरिक दुर्बलता, कण्डू, पामा, कुष्ठ आदि रोगों की उत्पत्ति होती है। अङ्गावसाद तथा दोषों के प्रकुपित होने से उस उस दोष के अनुसार ग्रहणी अर्श आदि रोग उत्पन्न होते हैं।

अधिक भोजन

यह प्रत्येक मनुष्य का प्रतिदिन का अनुभव तथा डाक्टरों का अधिकाँश में यही मत है कि ९९ प्रतिशत मनुष्य आवश्यकता से अधिक आहार ग्रहण करते हैं। इसका मुख्य कारण यही है कि हम सब जिह्वा के दास हैं। हमारी रसना (जिह्वा) सदैव स्वादिष्ठ भोजन के लिए लपलपाती रहती है। हम स्वाद के चक्कर में आकर ही अधिक खा जाते हैं। पूज्य महात्मा गांधी जी इस विषय में लिखते हैं। "हम लोग इतने पेटू हो गये हैं कि हमारी जिह्वा सदा स्वादिष्ठ भोजन चाहती है। इसलिये हम लोग अपने महमानों को स्वादिष्ठ भोजन कराते हैं कि जब हम भी उनके यहाँ जावेंगे तो वे भी हमें वैसा ही भोजन करायेंगे। यदि हम अधिक खाने के पाप से बचना चाहते हैं तो हमें प्रतिज्ञा करनी चाहिये कि हम किसी भी दावत (विशेष भोजन) में भाग न लें। हमारे यहाँ जब कोई महमान (अतिथि) आ जाये तो उन्हें स्वास्थ्य के नियमों का ध्यान रखते

हुए खिलाना चाहिए।" किन्तु स्वभाव से यह स्वादुप्रिय मनुष्य स्वादिष्ठ भोजनों में जो क्षणिक सुख अनुभव करता है। इसी सुख को अपने जीवन का लक्ष्य बना लेता है। और अपना सारा बहुमूल्य जीवन इस सुख की इच्छापूर्ति में गँवा देता है। और यह सब भूल जाता है कि हमारा हित और कल्याण इन स्वादिष्ठ भोजनों से होने वाला नहीं है। इसलिये मनुष्य पेटू बन जाता है। स्वास्थ्य, बल, वीर्य, शक्ति, ब्रह्मचर्य, भाड़ में जायें किन्तु इस चटोरे पेटू मनुष्य को चटपटे और मीठे स्वादिष्ठ भोजन चाहियें। जिह्वा का संयम करने वाले बहुत थोड़े व्यक्ति देखने में आते हैं। स्वादिष्ठ भोजन करना कोई पाप नहीं किन्तु स्वाद के कारण अधिक खाना तथा भोजन को स्वादिष्ठ बनाने के लिये नमक, मिर्च, मसाले, खटाई आदि हानिकारक पदार्थ डालकर भोजन को बिगाड़ कर खाना तो महामूर्खता है। कविराज हरनामदास जी इस विषय में लिखते हैं "चूर्णों और चटपटी चीजों का चलन बढ़ गया है। बाबू लोग गोल गप्पे, इमली की चाट, भल्ले पकोड़ियाँ एक जगह बैठकर खा जाते हैं। लोगो! होश करो क्यों अपने पैरों पर कुल्हाड़ी मारते हो। ऐसी चीजें हाजमे को बिगाड़ती हैं। रक्त को बिगाड़ती हैं और जीवन के सार (वीर्य) को दुर्बल करती हैं। और सन्तान उत्पन्न करने के योग्य नहीं रहने देतीं। छोटे लड़के जो खटाई खाते हैं उन्हें युवावस्था से पहिले ही कामवासना की उमंग आने लगती है। जिनकी आँखें खुली हैं वे ये सब बातें स्पष्ट रीति से देख रहे हैं। अधिक क्या लिखूँ। ऐसे दृश्यों को देखते हुये मैं इस परिणाम पर पहुँचा हूँ कि हमारी निर्बलता, हमारे रोग, हमारा बुढ़ापा एक सीमा तक खाने-पीने की खराबी के कारण है।" अतः भोजन में बड़ी सावधानता और संयम की आवश्यकता है।

——

भोजन में संयम

स्वास्थ्यप्रिय व्यक्ति वा ब्रह्मचारी न अधिक खाता है न न्यून, किन्तु शरीर के लिये जितना आवश्यक है ठीक उतनी ही मात्रा में खाता है। अधिक खाना सरल और सर्वथा उपवास करना भी सहज है किन्तु यथोचित (न न्यून न अधिक) खाना अधिक कठिन है। भोजन समतोलता रखना ही तो ब्रह्मचारी की सच्ची तपस्या है। यही भोजन का संयम है। कुछ लोग मितभोजन को स्वास्थ्यप्रद मानते हैं। कौटिल्य अर्थशास्त्र में 'मितभोजनं स्वास्थ्यम्' यह सूत्र आया है। अर्थात मितभोजन अल्पाहार स्वास्थ्य के लिये हितकर है। अतिभोजन तो सभी ने वर्जित किया है किन्तु मिताहार की प्रशंसा प्रायः सभी लेखक और व्याख्याता करते हैं। किन्तु मनुष्य की विशेषता तो तब है जब वह शरीर को जितने भोजन की आवश्यकता है उतना ग्रहण करे न अधिक न न्यून। यथोचित भोजन करना बहुत बड़ा संयम है। और यह भोजन का संयम ब्रह्मचर्य, स्वास्थ्य आदि सभी शुभ कर्मों की आधारशिला है। भोजन में संयम करने वाला मनुष्य कोई सहस्रों में एक दो होता है। और ऐसा ही संयमी पुरुष श्रेष्ठ सच्चे स्वास्थ्य का स्वाद लूटता है और ब्रह्मचर्य पालन में सफलता ऐसे ही सौभाग्यशाली व्यक्ति को प्राप्त होती है। ७५ प्रतिशत स्वप्नदोष के रोगी भोजन में संयम न होने के कारण ही होते हैं। जहाँ भोजन कुछ अधिक स्वाद लगा संयम न होने के कारण पेट को ठोककर भर लिया। रात्रि में पेट के भारी होने से स्वप्नदोष हो जाता है। फिर सारा स्वाद निकल जाता है रोता और पछताता है। कितने ही व्यक्ति अपनी इस भूल को समझते हैं किन्तु संयम न होने के कारण इसी प्रकार हानि उठाते रहते हैं। कुछ अज्ञानवश भी रोगी भोजन में अधिक खाने की भूल करते हैं। जब उन्हें पता चलता है तो अधिक भोजन करना छोड़ देते हैं और आहार-व्यवहार के संयम को धारण कर लेते हैं। नित्य युक्त आहार-विहार के बिना कल्याण सम्भव

नहीं। अतः सभी तथा विशेषतया विद्यार्थियों के लिये युक्ताहारविहार का आदेश वा उपदेश ऋषियों ने किया है—"नित्यं युक्ताहारविहारवान्—विद्योपार्जने च यत्नवान् भव" विद्यार्थी अर्थात् ब्रह्मचारी को नित्य युक्ति से आहार-विहार करते हुए विद्याग्रहण में यत्नशील होना चाहिये। मात्रा से न्यून आहार करने से बल, वर्ण, कान्ति, शक्ति, पुष्टि का नाश वा क्षीणता होती है, तृप्ति नहीं होती। उदावर्त आदि रोग उत्पन्न हो जाते हैं, मनुष्य अतृप्त और अशान्त रहता है, वीर्य आदि धातुओं की वृद्धि नहीं होती, आयु घट जाती है। शरीर की आवश्यकतानुसार भोजन न करने से शरीर का सारभाग वीर्य, बल, ओज, नष्ट हो जाता है। मन-बुद्धि और इन्द्रियों की शक्ति का ह्रास और नाश हो जाता है। और ८० प्रकार के वातरोगों की उत्पत्ति होती हैं। अतः न्यून भोजन करना स्वस्थ होते हुये उपवास करना आदि स्वास्थ्य के लिये हानिकारक हैं। किन्तु यह स्मरण रखने की बात है कि जहाँ आवश्यकता से न्यून भोजन शरीर को रोगी तथा क्षीण बनाता है वहाँ आवश्यकता से अधिक भोजन बल, वीर्य, ब्रह्मचर्य और स्वास्थ्य के लिये और भी अधिक घातक है। न्यून भोजन करना इतना अपराध नहीं जितना बड़ा घोर अपराध अधिक भोजन करना है। कम भोजन करने से शरीर की क्षति कुछ अधिक दिनों में होती है किन्तु अधिक भोजन करने वाले को अपने अपराध का शीघ्र ही दण्ड मिलता है। अतः यहाँ संक्षेप से अधिक भोजन करने की हानियाँ लिखी जाती हैं।

—

अधिक भोजन से हानियाँ

मात्रा से अधिक खाने से आलस्य, भारीपन, पेट फूलना, पेट में गुड़गुडाहट आदि उपद्रव खड़े हो जाते हैं। महात्मा गांधी जी लिखते हैं कि "अधिक खाने से बहुतों के पेट में वायुविकार पैदा हो जाता है। खट्टी डकार आती हैं, यह भोजन न पचने की पहिचान है। डाक्टर और वैद्य सभी का यह मत है।" पेट को ठूँस ठूँस कर भरने से विशूचिका रोग (हैजा) बहुत ही शीघ्र होता है और इन्फ्लुएञ्जा के होने की भी आशंका रहती है। अपचन, अजीर्ण, मलबन्ध, अनाह, संग्रहणी बवासीर तथा स्वप्नदोष प्रमेहादि धातु सम्बन्धी रोग अधिक खाने वाले पेटू लोगों को ही होते हैं। मनुष्य प्रायः जितना खाते हैं उसका तीसरा भाग भी नहीं पचा सकते, जो भोजन नहीं पचता वह पेट में पड़ा रहकर रक्त को विषैला और दूषित बनाता और स्वप्नदोष अर्शादि असंख्य विकारों को जन्म देता है। प्राणशक्ति को द्विगुण कार्य करना पड़ता है। एक तो अधिक भोजन के पचाने में दूसरा मल को बाहर निकालने में। अधिक खाने से राष्ट्र के अन्न और धन दोनों का अपव्यय होता है तथा रोग दण्डरूप भी प्रकृति देवी प्रदान करती है। धनी लोग इस दोष के अधिक दोषी हैं। वे कई निर्धन मनुष्यों का पालन जिससे हो जाये इतना अधिक अन्न प्रतिदिन बिगाड़ देते हैं। यह घोर अपराध है। अतः मात्रा से अधिक भोजन नहीं करना चाहिए। इस विषय में मनु जी महाराज लिखते हैं—

अनारोग्यमनायुष्यमस्वर्ग्यं चातिभोजनम्।
अपुण्यं लोकविद्विष्टं तस्मात्तत्परिवर्जयेत ॥

(मनु० अ० २-५७)

अति भोजन करने से स्वास्थ्यहानि तथा रोगों की वृद्धि होती है, आयु घटती है, व्याधि आदि के कारण अनेक दुःख भोगने पड़ते हैं, पुण्य का नाश और पाप की वृद्धि होती है, और अधिक खाने वाले की

जनता में निन्दा भी होती है। ब्रह्मचारी को तो भूल कर भी अधिक भोजन नहीं करना चाहिये। पेट ठोक-ठोक कर अधिक भोजन करने वाला सात जन्म भी ब्रह्मचारी नहीं रह सकता, ब्रह्मचारी का सायङ्काल का भोजन मध्याह्न से आधा होना चाहिये तथा सोने से दो वा तीन घण्टे पूर्व ही भोजन करना चाहिये। दुग्ध तथा जलपान भी सोने से दो वा तीन घंटे पूर्व ही कर लेना चाहिये। अतः अधिक भोजन नहीं करना चाहिये।

कवि भगवान्‌दास वामन जी इस विषय में लिखते हैं—

अधिक वायु के फटने से फुटबाल फटि जाय।
बड़ी कृपा भगवान् की पेट नहीं फटि जाय ॥१॥
यद्यपि न दीखत पेट फटा, फटत मनुज की देह।
रोग भयंकर होत है वने नरक को गेह ॥२॥

इसी विषय में "ब्रह्मचर्य ही जीवन है" पुस्तक के प्रसिद्ध लेखक स्वामी शिवानन्द जी लिखते हैं—

"अधिक भोजन करने वाला सात जन्म में भी ब्रह्मचारी नहीं हो सकता। क्योंकि जोर की आन्धी जैसे पेड़ों को उखाड़ डालती है, वैसे कामदेव पेटू मनुष्य को पटक-पटक कर मार डालता है। अधिक भोजन करने वाला पुरुष किसी हालत में वीर्य नहीं रोक सकता, उसका चित्त सदा विषय की ओर लगा रहता है। मन और तन दोनों रोगी वन जाते हैं। आयु घट जाती है और स्वार्थ व परमार्थ दोनों मटियामेट हो जाते हैं। यदि आपको वीर्यवान् या आरोग्यवान् बनना हो, स्वप्नदोष से और अकाल मृत्यु से वचना हो, तो आपको अवश्य ही सादा मिताहारी बनना होगा।"

उत्तम भोजन से उत्तम सन्तान

इस विषय में महर्षि दयानन्द जी महाराज अपने ग्रन्थ संस्कारविधि में गर्भाधान संस्कार विषय पर लिखते हुये कहते हैं—

"उत्तम सन्तान करने का मुख्य हेतु यथोक्त वधू वर के आहार पर निर्भर है। इसलिये पति-पत्नी अपने शरीर आत्मा की पुष्टि के लिये बल और बुद्धि आदि की वर्द्धक सर्वौषधि का सेवन करें। वे पुष्टिकारक सर्वौषधि ये हैं। दो खण्ड आम्बाहल्दी, दूसरी खाने की हल्दी, चन्दन-(मुरा) कुष्ठ, जटामासी, मोरबेल, शिलाजीत, कपूर मुस्ता, भद्रमोथ, इन सब औषधियों को चूर्ण करके समभाग लेके उदुम्बर के काष्ठपात्र मे गाय के दूध के साथ उनकी दही जमा और उदुम्बर ही के लकड़े की मन्थनी से मन्थन करके उसमें से मक्खन निकाल उसको ताय घृत करके उसमें सुगन्धितद्रव्य केसर, कस्तूरी, जायफल, इलायची, जावित्री मिला के अर्थात् सेर भर दूध में छटांक भर पूर्वोक्त सर्वौषधि मिला सिद्धकर घी हुये पश्चात एक सेर में एक रत्ती कस्तूरी और एक माशा केशर और एक-एक माशा जायफल आदि मिलाके नित्य प्रातःकाल उस घी में २२, २३ पृष्ठ संस्कारविधि में लिखे प्रमाणे आघारावाज्यभागाहुति ४ (चार) और पृष्ठ ३४ में लिखे हुये (विष्णुर्योनिः) इत्यादि सात मन्त्रों के अन्त में स्वाहा शब्द का उच्चारण करके जिस रात्रि में गर्भ स्थापित क्रिया करनी हो उसके दिन में होम करके उसी घी को दोनों जने खीर अथवा भात के साथ मिला के यथा रुचि भोजन करें। इस प्रकार (पुष्टिकारक भोजन करके) गर्भ स्थापन करें तो सुशील विद्वान्, दीर्घायु, तेजस्वी, सुदृढ और नीरोग पुत्र उत्पन्न होवे। यदि कन्या की इच्छा हो तो जल में चावल पका पूर्वोक्त प्रकार घृत गूलर को एक पात्र में जमाये हुये दही के साथ भोजन करने से उत्तम गुणयुक्त कन्या भी होवे क्योंकि "आहार-शुद्धौ सत्त्वशुद्धिः सत्त्वशुद्धौ ध्रुवास्मृतिः" यह छान्दोग्य का वचन है अर्थात्

आहार जो मद्य मांसादि रहित घृत दुग्धादि चावल गेहूँ आदि के करने से अन्तःकरण की शुद्धि बल, पुरुषार्थ आरोग्य और बुद्धि की प्राप्ति होती है। जैसे सब पदार्थों को उत्कृष्ट करने की विद्या है वैसे सन्तान को उत्कृष्ट करने की यह विद्या है। इस पर मनुष्य लोग बहुत ध्यान देवें, क्योंकि इसकेन होने से कुल की हानि, नीचताऔर होने से कुल की वृद्धि और उत्तमता अवश्य होती है।"

गर्भाधान के समय स्त्री को सावधान रहने के लिये लिखते हैं—

"पुनः स्त्री के भोजन छादन का सुनियम करे; कोई मादक मद्यादि, रेचक हरीतकी (हरड़) आदि, क्षार अति लवण आदि, अत्यम्ल अर्थात् अधिक खटाई रूक्षचणे आदि, तीक्ष्ण अधिक लालमिर्ची आदि स्त्री कभी न खावे किन्तु घृत, दूध, मिष्ट, सोमलता अर्थात् गुडूच्यादि औषधि, चावल मिष्ट, दधि, गेहूँ, उर्द, मूङ्ग, तूअर आदि अन्न और पुष्टिकारक शाक खावे, युक्त आहार विहार सदा किया करे। दधि में शुंठी और ब्राह्मी औषधि का सेवन स्त्री विशेष किया करे जिससे सन्तान अति बुद्धिमान् रोगरहित शुभ गुण कर्म स्वभाव वाले होवें।"

उत्तम सन्तान निर्माणार्थं पुंसवन संस्कार में महर्षि लिखते हैं—

"स्त्री सुनियम युक्ताहार विहार करे, विशेषकर गिलोय ब्राह्मी औषधि और शुण्ठी को दूध के साथ थोड़ी-थोड़ी खाया करे, और अधिक शयन और अधिक भाषण, अधिक खारा, खट्टा, तीखा, कडवा, रेचक, हरडें आदि न खावे सूक्ष्म आहार करे। क्रोध, द्वेष, लोभादि दोषों में न फंसे, चित्त को सदा प्रसन्न रखे, इत्यादि शुभाचरण करे।"

———

भोजन का स्थान

भोजनालय—जिस स्थान पर बैठकर मनुष्य भोजन करे वह इतना शुद्ध, लीपा-पोता, धुला-धुलाया, हवादार और खुला होना चाहिये, जिससे आहार ग्रहण करते समय मन में कोई विकार न आये। उस समय भोजन करने वाले व्यक्ति का चित्त भोजनालय की स्वच्छता आदि से प्रभावित होकर सर्वथा शान्त और प्रसन्न रहना चाहिए। आहार-ग्रहण करते समय यदि चित्त में किसी प्रकार की गड़बड़ी वा अशान्ति हुई तो भोजन का पाचन कार्य भली भांति न हो सकेगा। भोजन करते समय मानसिक विचारों का शरीरयन्त्र पर अत्यधिक प्रभाव पड़ता है।

जो लोग शुद्धि नहीं रखते उनके भोजनालय में कहीं कोयला, कहीं राख, कहीं लकड़ी, कहीं फूटी हांडी, कहीं झूठी रकेबी, तथा मांस खाने वालों के स्थान पर हाड़गोड़ आदि पड़े रहते हैं और मक्खियों का तो क्या कहना। वह स्थान ऐसा बुरा प्रतीत होता है कि यदि कोई श्रेष्ठ मनुष्य जाकर बैठे तो उसे वांत (वमन) होने की भी सम्भावना है। ऐसे दुर्गन्ध-युक्त स्थान पर भोजन करने से शरीर और मन पर अच्छा प्रभाव कैसे पड़ सकता है? पूर्वोक्त दोषों की निवृत्ति के लिये महर्षि दयानन्द जी महाराज लिखते हैं—

"जो पक्का मकान हो तो जल से धोकर शुद्ध रखना चाहिए।" और कच्चे मकान में गाय के गोबर से चौका लगाने का महत्व यह लिखते हैं—

"गोमय (गाय का गोबर) चिकना होने से शीघ्र नहीं उखड़ता, न कपड़ा बिगड़ता और न मलिन होता है। जैसे मिट्टी से मैल चढ़ता है वैसा सूखे गोबर से नहीं होता। मिट्टी और गोबर से जिस स्थान का लेपन करते हैं वह देखने में अति सुन्दर होता है और जहां रसोई बनती है वहाँ भोजन करने से घी मिष्ट और उच्छिष्ट भी गिरता है उससे मक्खी कीड़ी और बहुत से जीव मलिन स्थान के रहने से आते हैं। यदि उसमें

झाड़ू लगवाने से प्रतिदिन शुद्धि न की जावे तो जानो पाखानों के समान वह स्थान हो जाता है। इसलिए प्रतिदिन गोबर मिट्टी झाड़ू से सर्वथा शुद्ध रखना चाहिये।" इसी विषय में प्रश्न है "चौके में बैठ के भोजन करना अच्छा है वा बाहर बैठकर ?" उत्तर देते हैं "जहाँ पर अच्छा रमणीय सुन्दर स्थान देखें वहाँ भोजन करना चाहिये।" इसी विषय में महर्षि धन्वन्तरि जी महाराज सुश्रुत में लिखते हैं—

भोक्तारं विजने रम्ये निःसंपाते शुभे शुचौ।
सुगन्धपुष्परचिते समे देशे च भोजयेत् ॥ ४५८ ॥
(सूत्र स्थान अ० ४६)

एकान्त स्थान में, जहाँ पर लोगों का यातायात = आना जाना न हो, रमणीय, शुद्ध पवित्र तथा पुष्पादि से सुगन्धित, सम (जो ऊँचा-नीचा न हो) स्थान में बैठकर भोजन करना चाहिये। हमारे शास्त्रकारों ने भोजन, भोजन का स्थान और भोज्यपदार्थों की शुद्धता तथा पवित्रता पर अत्यधिक बल दिया है, अतः भोजन के स्थानादि को धो-लीपकर सर्वथा शुद्ध रखना चाहिए। इसी में उत्तम स्वास्थ्य का रहस्य निहित है।

———

भोजन से पूर्व तथा पश्चात् करने योग्य क्रिया

भोजन से पूर्व स्नान करने का महत्त्व हमारे प्राचीन पुरुषा विशेषतया मानते हैं। ग्रामीण लोगों पर इसकी अब तक छाप है। कितने ही भारतीय अशिक्षित ग्रामीण लोग बिना स्नान किये भोजन करना पाप समझते हैं। अतः मकर संक्रान्ति आदि पर्वों पर तो न नहाने वाले लोग भी भोजन से पूर्व स्नान कर ही लेते हैं। यह प्रसिद्ध लोकोक्ति "सौ काम छोड़कर खा और हजार काम छोड़कर नहा" लोगों में कुछ व्यावहारिक रूप में प्रचलित है। संस्कृत के श्लोक का यह भाग—"शतं विहाय भोक्तव्यं सहस्रं स्नानमाचरेत्" भी यही सिद्ध करता है कि भोजन

से पूर्व स्नान अवश्य ही कर लेना चाहिए।

महर्षि दयानन्द जी इस विषय में लिखते हैं—"प्रथम स्नान इसलिए है कि जिस से शरीर के बाह्य अवयवों की शुद्धि और आरोग्य आदि होते हैं। इस से स्नान भोजन से पूर्व अवश्य करना।" आजकल पढ़े लिखे लोग भोजन तो चार-पाँच बार तक दिन में कर लेते हैं किन्तु स्नान जैसे आवश्यक कृत्य को दिन में एक बार भी नहीं करते। कितने ही ऐसे बाबू लोग इस भारत भूमि पर मिल जायेंगे जो सारे शीतकाल (जाड़े) में एक बार भी स्नान नहीं करते। और चाय बिस्कुट आदि तो बिना शौच से निवृत्त हुए ही बिस्तर पर उठते ही मंगवा लेते हैं। किन्तु ब्रह्मचर्य और स्वास्थ्य प्रेमी व्यक्ति को प्रतिदिन सब ऋतुओं में बिना स्नान किये भोजन नहीं करना चाहिए। यदि स्नान प्रातः सायं दोनों समय किया जाये तो और भी अच्छा है।

यथार्थ में भोजन के अधिकारी तो वे ही लोग हैं जो प्रातः काल ब्राह्ममुहूर्त में उठ शौच, स्नान, प्राणायाम, ईश्वरोपासना, यज्ञ, व्यायाम आदि नित्यप्रति प्रातःकाल ही कर लेते हैं और इसी प्रकार सायंकाल भी सब नित्य-कर्म करते हैं। भोजन की वेला में हाथ, पाँव और मुख को भली भांति शुद्ध जल से धोकर स्वच्छ कर लेना चाहिए। शुद्ध वस्त्र धारण कर भोजनशाला में जाकर कुशआसन पर बैठें, यदि गृहस्थ हो तो बलिवैश्वदेवयज्ञ करें तथा अपने आश्रित कुत्ते आदि प्राणियों को भी भोजन दें।

हमारे शास्त्रों में अतिथि सत्कार का महत्त्व अत्यधिक पाया जाता है। अथर्ववेद में आया है—"श्रेयांसमेनमात्मनो मानयेत् (१५।१०।२) यदि कोई अतिथि अपने घर आ जाये तो अपना सौभाग्य समझकर उसका सत्कार करना चाहिए। और "अशितवत्यतिथौ अश्नीयात्" (अ० ९-८-८) इस वेदाज्ञा के अनुसार गृहस्थ को अतिथि से पूर्व कभी भोजन न करना चाहिए। अतः अपने पूज्य जनों साधु महात्मा अतिथियों

को श्रेष्ठ भोजन से तृप्त करने के उपरान्त स्वयं प्रसन्नचित्त हो भोजन ग्रहण करना चाहिए।

भोजन करते समय बोलना या कोलाहल करना हमारी सभ्यता के विरुद्ध है। "वाग्यतस्तु भुञ्जीत" के अनुसार मौन होकर शान्ति-पूर्वक भोजन करना चाहिये। अपने भाग्य और परिश्रम से जो मिले उसी में सन्तुष्ट रहना चाहिये और अन्न की कभी निन्दा न करे।

भोजनोपरान्त तत्काल ही कठोर शारीरिक या मानसिक कोई भी कार्य करना या दौड़ना आदि हानिकारक है। शांतिपूर्वक शारीरिक या मानसिक साधारण कार्य किया जा सकता है। भोजन के पूर्व या पश्चात् कभी भी क्रोधादि के करने से भोजन विष बन जाता है, विलम्ब से पचता है; अतः सावधानतया शान्त रहना चाहिये।

भोजन करते समय सर्व प्रकार की चिन्ता शोक ईर्ष्यादि का परित्याग कर सर्वथा प्रसन्न चित्त रहने से भोजन भली भांति पचता तथा शुद्ध रक्तादि धातुओं का निर्माण करता है और शरीर का ढंग बदलकर शरीर को हृष्ट-पुष्ट स्वस्थ और बलिष्ठ बनाता है। इसके साथ भक्ष्याभक्ष्य का विचार अवश्य रखना चाहिये।

भक्ष्याभक्ष्य मीमांसा

प्राचीन काल में राजा अश्वपति की प्रतिज्ञा "(न मे स्तेनो जनपदे न कदर्यो न च मद्यपः) कि मेरे राज्य में कोई शराब पीने वाला व्यक्ति नहीं है'" के अनुसार कोई भी मांस मदिरा आदि बुद्धिनाशक द्रव्यों का सेवन करने वाला नहीं था। सभी लोग अभक्ष्य पदार्थों को त्याग बल-बुद्धि-वीर्य-वर्द्धक, भक्ष्य पदार्थों का सेवन करते थे। किन्तु आज लोग अभक्ष्य पदार्थों को अपना कर निज बल-बुद्धि को खो बैठे। यहाँ तक कि निरामिष भोजी हरयाणा प्रान्त में भी आजकल मांसादि अभक्ष्य पदार्थों का सेवन दिन प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है। अभक्ष्य और भक्ष्य पदार्थों के

हानि लाभों को विचार कर अभक्ष्य पदार्थों का सर्वथा परित्याग कर देना चाहिये ।—

भक्ष्य और अभक्ष्य पदार्थों की परिभाषा ऋषि दयानन्द जी के शब्दों में निम्न प्रकार है ।

"जितना हिंसा और चोरी, विश्वासघात, छल, कपट आदि से पदार्थों को प्राप्त होकर भोग करना है वह अभक्ष्य और अहिंसा धर्मादि कर्मों से प्राप्त होकर भोजन आदि करना भक्ष्य है । जिन पदार्थों से स्वास्थ्य, रोग-नाश, बुद्धि, बल, पराक्रमवृद्धि और आयुवृद्धि होवे उन तण्डुलादि (चाव-लादि) गोधूम (गेहूँ) फल, मूल, कन्द, दूध, घी मिष्टादि पदार्थों का सेवन यथायोग्य पाक मेल करके यथोचित समय पर मिताहार भोजन करना सब भक्ष्य कहाता है । जितने पदार्थ अपनी प्रकृति से विरुद्ध विकार करने वाले हैं उन २ का सर्वथा त्याग करना और जो जो जिसके लिये विहित हैं उन उन पदार्थों का ग्रहण करना यह भी भक्ष्य है ।"

(सत्यार्थप्रकाश दशम समुल्लास)

इस परिभाषा को ध्यान में रखते हुए अपने भोजन में सुधार कर आहार-विहार करना चाहिये ।

उच्छिष्ट भोजन अभक्ष्य

नोच्छिष्टं कस्यचिद्दद्यान्नाद्याच्चैव तथान्तरा ।
न चैवात्यशनं कुर्यान्न चोच्छिष्टःक्वचिद् व्रजेत ॥
(मनु० २।५६)

किसी को अपना उच्छिष्ट—झूठा भोजन न दे और न किसी के भोजन के बीच स्वयं खावे । अर्थात एक थाली में एक से अधिक नर-नारियों को भोजन नहीं करना चाहिए। अधिक भोजन भी अभक्ष्य है। और हाथ पैर धोये विना कहीं इधर उधर न जावे । कुछ एक भाई 'सम्भव है यह प्रश्न करें कि 'गुरोरुच्छिष्टभोजनम्' इसका क्या अभिप्राय है ? इसका अभिप्राय यह है कि गुरु जी के भोजन करने के पश्चात जो भोजन पृथक् शुद्ध पवित्र रखा हुआ है उस भोजन को शिष्य करे । और इससे

दूसरी शिक्षा यह भी मिलती है कि गुरु जी के भोजन करने के पश्चात ही शिष्य को भोजन करना चाहिये।

क्या शहद का भी उपयोग नहीं करना चाहिए वह भी मक्खियों का उच्छिष्ट है। और क्या दूध भी नहीं पीना चाहिये वह भी बछड़े का भूठा है ? इसका उत्तर ऋषि दयानन्द जी महाराज के शब्दों में इस प्रकार है—

"शहद कथन मात्र ही उच्छिष्ट होता है, परन्तु वह बहुत सी औषधियों का सार ग्राह्य (ग्रहण करने योग्य है) बछड़ा अपनी माँ के बाहर का दूध पीता है भीतर के दूध को नहीं पी सकता, इसलिये उच्छिष्ट नहीं। परन्तु बछड़े के पिये पश्चात जल से उसकी माँ के स्तन धोकर शुद्ध पात्र में दूध दोहना चाहिए।" (सत्यार्थप्रकाश दशम समुल्लास)

साथ और उच्छिष्ट खाने में यह एक भारी दोष है कि एक व्यक्ति के साथ दूसरे व्यक्ति की प्रकृति और स्वभाव नहीं मिलता। प्रकृति और स्वभाव भेद होने से एक-दूसरे के रोग एक-दूसरे को लग जाते हैं। जिस प्रकार ले कुष्ठी–कोढ़ी व्यक्ति के साथ भोजन करने से अच्छे मनुष्य का रक्त भी विगड़ जाता है। इसलिये उच्छिष्ट भोजन अभक्ष्य है।

अभक्ष्य पदार्थ

वर्जयेन्मधु मासञ्च (मनु० २।७७)

मधु और मांस का सेवन करना वर्जित है। संस्कृत साहित्य में मधु शब्द प्राय दो अर्थों में प्रयुक्त होता है। प्रथम शहद, द्वितीय शराब। यहाँ मधु शब्द से शराव अर्थ ग्रहण करना चाहिए, शहद नहीं। मधु और मांस का निषेध मनु महाराज ने इसलिये किया है कि यह दोनों मदकारी हैं। और भी जितने गाञ्झा, अफीम, चरस आदि नशा करने वाली वस्तुएँ हैं उन सव का सेवन वर्जित समझना चाहिए। क्योंकि—

बुद्धि लुम्पति यद्द्रव्यं मदकारि तदुच्यते।

(शारङ्गधर अ० ४–श्लो० २१)

जो द्रव्य बुद्धि का नाश करने वाले हैं। अर्थात् जितनी भी वस्तुयें नशा पैदा करती हैं वे सब बुद्धि लोपक होने से अभक्ष्य हैं।

शराब

गौडी पैष्टी च माध्वी च विजेया त्रिविधा सुरा।
यथैवका तथा सर्वा न पातव्या द्विजोत्तमैः॥

(मनु० ११।९४)

शराब तीन प्रकार की होती हैं। प्रथम जो गुड़ के द्वारा बनाई जाय वह गौडी, दूसरे जो आटे से बनाई जाये वह पैष्टी, तीसरे जो मधुक वृक्षों के फूलों से बनाई जाये वह माधवी कहलाती है। जैसी एक वैसी ही सारी हैं। अतः तीनों प्रकार की शराब वर्जित हैं।

सुरा वै मलमन्नानां पाप्मा च मलमुच्यते।
तस्माद् ब्राह्मणराजन्यौ वैश्यश्च न सुरां पिवेत॥

(मनु० ११।९३)

शराब अन्नों का मल है और मल पाप कहलाता है। अतः ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य (शूद्र भी)सुरापान न करे।

मांस

नाकृत्वा प्राणिनां हिंसां मांसमुत्पद्यते क्वचित।
न च प्राणिवधः स्वर्ग्यस्तस्मान्मांसं विवर्जयेत्॥

(मनु० ५।४८)

प्राणियों की हिंसा किए विना मांस की उपलब्धी नहीं होती। प्राणियों को मारना सुखदायक नहीं। अतः मांस का खाना सर्वथा निषिद्ध है। मांसभक्षी लोग 'अहिंसा परमो धर्मः' का उल्लङ्घन कर महा-पापी बनते हैं।

योऽहिंसकानि भूतानि हिनस्त्यात्मसुखेच्छया।
स जीवंश्च मृतश्चैव न क्वचित्सुखमेधते॥

(मनु० ५।४५)

जो अहिंसक प्राणी अर्थात् गाय, मुर्गी बकरी, बकरा, मछली आदि को अपने सुख के लिये मारता है वह इस लोक में तो क्या परलोक में भी सुख को प्राप्त नहीं होगा।

आजकल लोग मछली और अण्डे के खाने को मांस भक्षण में नहीं गिनते। किन्तु—

मत्स्यादः सर्वमांसादस्तस्मान्मत्स्यान् विवर्जयेत। (मनु० ५।१५)

मच्छली को खाने वाले 'सर्वमांसादः' अर्थात् सभी का मांस खाने वाले कहलाते हैं। इसका अभिप्राय यह है कि जिसने मछली का मांस खा लिया, उनने सबका मांस खा लिया अतः मछली का मांस खाना नितान्त निषिद्ध है।

मांस मदिरा आदि के अतिरिक्त—

लशुनं गृञ्जनं चैव पलाण्डुं कवकानि च।
अभक्ष्याणि द्विजातीनाममेध्यप्रभवाणि च॥ (मनु० ५।५)

द्विज अर्थात् ब्रह्मण क्षत्रिय वैश्य और शूद्रों को लशुन, शलगम, प्याज, कवक (सांप की छत्री) और मलिन, विष्ठा, मूत्रादि के संसर्ग से उत्पन्न हुए शाक, फल मूल आदि नहीं खाने चाहियें।

लोहितान् वृक्षनिर्यासान् वृश्चनपुभावाँस्तथा।
शेलुं गव्यञ्च पेयूपं प्रयत्नेन विवर्जयेत्॥
(मनु० ५।६)

वृक्षों के लाल व श्वेत सभी प्रकार के गोन्द, शेलु-निसोड़ा और गौ का खीस भी वर्जित है।

ब्रह्मचारियों के लिए अभक्ष्य पदार्थ

पिता ब्रह्मचारी को ब्रह्मचर्य का उपदेश करता है कि—

मांसरूक्षाहारमद्यादिपानं च वर्जय॥१५॥
(संस्कारविधि-वेदारम्भ प्रकरण)

हे ब्रह्मचारिन्! तू मांस, रूखा भोजन, और शराब आदि का सेवन मत कर। और—

अत्यम्लातितिक्तकषायक्षाररेचनद्रव्याणि मा सेवस्व ॥१६॥

(संस्कारविधि-वेदारम्भ प्रकरण)

अति खट्टा अमली आदि, अति तीखा लालमिर्च आदि, कसेला हरड़ें आदि, क्षार अधिक लवण आदि और रेचक जमालगोटा आदि द्रव्यों का सेवन मत कर। अतः ब्रह्मचारियों को चाहिये कि उपर्युक्त सभी पदार्थों को त्याग कर जीवन को उदात्त बनावें।

ब्रह्मचारी को लाल मिर्च, सफेद, काली, हरी कोई भी मिर्च खानी तो क्या खाने के लिए छूनी भी नहीं चाहिए।

'घृतौदनं तेजस्कामः' अर्थात् जो तेजस्वी बलवान् होना चाहे उसे घृत चावल आदि सात्विक पदार्थों का सेवन करना चाहिए। ऋषि दयानन्द जी ने इस विषय में लिखा है—

'मनुष्य लोग घृतादि उत्तम पदार्थ न खावें तो उनके शरीर और आत्मा के बल की उन्नति न हो सके, इससे अच्छे पदार्थ खिलाना पिलाना भी चाहिए। (सत्यार्थ० तृतीय समुल्लास)

और—"जिस प्रकार आरोग्य विद्या और बल प्राप्त हो उसी प्रकार से भोजन छादन और व्यवहार करें करावें अर्थात् जितनी क्षुधा हो उससे कुछ न्यून भोजन करें।" (सत्यार्थ० द्वितीय समुल्लास)

आचार मुरब्बे चटनी, मसाले खट्टे चटपटे मसाले युक्त भोजन ब्रह्मचारी को भूल कर भी नही करने चाहियें। वैसे ये गृहस्थों के लिये भी हानिकारक हैं।

सभी मनुष्यों को चाहिए कि बल, बुद्धि, पराक्रम वर्धक त्रिदोष-नाशक, ब्रह्मचय के लिये हितकारक सात्विक द्रव्यों को ही अपने भोजन में स्थान दें और जितने भी पदार्थ मांस मदिरादि बुद्धिनाशक एवं देश के लिये भी अहितकारक हैं उनको सर्वदा के लिए छोड़ दें। क्योंकि—

अभोज्यमन्नं नात्तव्यमात्मनः शुद्धिमिच्छता।
अज्ञानभुक्तं तूत्तार्यं शोध्यं वाप्याशुशोधनैः॥ (मनु० ११।१६०)

जो अपने आपको पवित्र रखना चाहता है उसे चाहिये कि वह अभक्ष्य पदार्थों का सेवन कभी न करे। यदि कोई अज्ञानवश अभक्ष्य पदार्थ खाया भी जावे तो ज्ञान होने पर वमन आद के द्वारा निकाल देवे। वा कोई आत्मा की पवित्रता के लिए प्रायश्चित्त अवश्य करे।

विरुद्ध भोजन

बहुत से भोज्य-पदार्थ ऐसे हैं कि जो पृथक्-पृथक् खाने से तो लाभ करते हैं, परन्तु यदि उनको मिलाकर अथवा एक के पश्चात् दूसरा पदार्थ खाने से लाभ के स्थान पर हानि करते हैं। ऐसे पदार्थ नीचे लिखे जाते हैं।

१. दही को गरम रोटी अथवा किसी भी गरम पदार्थ के साथ न खाना चाहिये। पानी मिला दूध और घी खाना हानिकारक है। छाछ, दही अथवा बेलगिरी में से किसी के साथ केला खाना हानिकारक है। बराबर-बराबर घी तथा मधु या जल और मधु मिला कर खाना मानो विष को खाना है। कांसी, ताम्बा या पीतल के पात्र में कई दिन का रखा हुआ घी, तेल या कुछ समय का रखा हुआ दूध, मक्खन, खटाई, दही अथवा छाछ और दूध के साथ सिरका, अञ्जीर, कांजी, नमक, इमली, अखरोट, निम्बू अथवा जामन खाना हानिकारक है, किसी भी उष्ण पदार्थ के साथ शीतल शर्बत, ककड़ी, तरबूज अथवा खीरा नहीं खाना चाहिये। कांजी या सिरका के साथ तिल हानिकारक है। तेल और बेसन अर्थात् तेल के पकौड़े नहीं खाने चाहियें। भूख को बन्द करते हैं, मेदा को खराब करते हैं। तेल की बनी हुई और घी की बनी हुई चीजें साथ-साथ खाना हानिकारक है। गन्ना और मसूर की दाल साथ-साथ नहीं खानी चाहिये। दूध और तेल की चीजें साथ-साथ नहीं खानी चाहियें। मूली या खरबूजे के साथ मधु, दूध में गुड़, खरबूजा और

नहीं, एक साथ नहीं खाना चाहिये । घी चिकनी मिठाई, खटाई, खीरा, फूट, ककड़ी, तरबूज, खरबूज तथा नासपाती के ऊपर पानी, शरबत या दूध की लस्सी पीना बहुत हानिकारक है ।

सात्विक, राजसिक और तामसिक भोजन

सत्त्व रज और तम की साम्यावस्था ही प्रकृति है और सभी प्राकृतिक पदार्थों को इन तीन श्रेणियों में विभक्त किया जा सकता है। भोजन भी सात्विक, राजसिक और तामसिक भेद से तीन प्रकार का है। मनुष्यों की प्रवृत्तियां अपनी-अपनी रुचि और स्वभाव के कारण विभिन्न हैं। जिसकी जैसी प्रवृत्ति होती है, वह उसी प्रकार के भोजन को पसन्द करता है। श्रीकृष्ण जी गीता में लिखते हैं—"आहारस्त्वपि सर्वस्य त्रिविधो भवति प्रियः।" अर्थात् सभी मनुष्य अपनी-अपनी प्रवृत्ति के अनुसार तीन प्रकार के भोजन को श्रेष्ठ समझते हैं। सात्विक वृत्ति के लोग सात्विक भोजन को श्रेष्ठ समझते हैं, राजसवृत्ति के लोग राजसिक भोजन को उत्तम मानते हैं। इसी प्रकार तमःप्रधान व्यक्ति तामस भोजन में रुचि रखते हैं।

सात्विक भोजन

आयुः सत्त्वबलारोग्यसुखप्रीतिविर्वधनाः ।
रस्याः स्निग्धाःस्थिरा हृद्या आहाराः सात्विकप्रियाः ॥
(गीता १७।८)

आयु, बल, आरोग्य सुख और प्रीति को बढ़ाने वाले तथा रसीले, चिकने, स्थिर=देर तक ठहरने वाले एवं हृदय के लिये हितकारी भोजन है, वह सत्त्व गुणी मनुष्यों को प्रिय होता है। अर्थात् जिस भोजन के सेवन से आयु, बल वीर्य आरोग्य आदि की वृद्धि हो, जो सरस चिकना—घृतादियुक्त, चिरस्थायी और हृदय के लिये हितकारी वह भोजन सात्विक है।

सात्विक-पदार्थ

गाय का घी, दूध, गेहूँ, जौ, चावल, मूँग, मोठ, उत्तम फल, पत्तों के शाक, काली तोरई, घीया [कद्दू] आदि मधुर, शीतल, स्निग्ध, सरस शुद्ध पवित्र और शीघ्र पचनेवाले तथा ओज एवं कान्तिप्रद पदार्थ हैं वे सब सात्विक हैं।

राजसिक भोजन

कट्वम्ललवणात्युष्णतीक्ष्णरूक्षविदाहिनः।
आहारा राजसस्येष्टा दुःखशोकामयप्रदाः॥

[गीता १७।६]

कड़वे, खट्टे, नमकीन, अत्युष्ण, तीक्ष्ण, रूक्ष, दाह—जलन पैदा करने वाले तथा दुःख ,शोक और रोगों को बढ़ाने वाले भोजन रजोगुणी व्यक्तियों को प्रिय होते हैं।

कड़वे, खट्टे, नमकीन, अत्युष्ण, तीखे, रूखे, और दाहक—नमक मिर्च, इमली मसाले आदि से युक्त भोजन राजसिक है और इसके सेवन से मनुष्य की वृत्ति चंचल हो जाती है, नाना रोगों में ग्रस्त होकर व्यक्ति विविध दुःखों का उपभोग करता है और शोक सागर में डूब जाता है।

राजसिक पदार्थ

नमक, मिर्च, मसाला, हींग, गाजर, चणा, उड़द, करेला, सरसों, तेल में पके हुए पदार्थ, मांस, मछली, कछुआ, अण्डा, शराब, चरस, चण्डू, काफी, कोकीन आदि मादक-द्रव्य, तथा उष्ण, रूक्ष, गृष्ट, भारी देर में पचने वाले सभी पदार्थ राजसिक हैं।

तामसिक भोजन

यातयामं गतरसं पूतिपर्युषितं च यत्।
उच्छिष्टमपि चामेध्यं तामसप्रियम्॥

[गीता १७ १०]

बहुत देर के बने हुए, नीरस=शुष्क, दुर्गन्ध युक्त, बासी उच्छिष्ट= झूठे और बुद्धि को नष्ट करने वाले भोजन तमःप्रधान व्यक्ति को प्रिय होते हैं।

जो अन्न गला सड़ा, बहुत विलम्ब से पकाया हुआ दुर्गन्धित, उच्छिष्ट और कृमिकीटों से अपवित्र किया हुआ तथा रसहीन हो वह तामसिक है। इस प्रकार के भोजन के सेवन से सब प्रकार के रोग हो जाते हैं, स्वास्थ्य और आयु क्षीण हो जाते हैं, बुद्धि, मन तथा आत्मा इतने मलिन हो जाते हैं, कि उनको अपने हिताहित और धर्म-कर्म का भी ध्यान नहीं रहता। अतएव तमोगुणी व्यक्ति मलिन, आलसी, प्रमादी और अकर्मण्य होकर पड़े रहते हैं। तामसिक भोजन किसी भी व्यक्ति के लिये उपयुक्त नहीं, सर्वथा सर्वदा त्याज्य है।

तामसिक-पदार्थ

गले सड़े दूषित बासी अन्न फल आदि, भैंस का दूध और घी, भिण्डी, काशीफल, लहसुन, प्याज, शलगम आदि कफवर्द्धक, बुद्धि को भ्रष्ट करने वाले दुर्गन्धयुक्त और भारी पदार्थ हैं वे सब तामसिक हैं।

भोजन सम्बन्धी आवश्यक नियम

१. जिस प्रकार भौतिक अग्नि ईंधन के बिना बुझ जाती है इसी प्रकार भूख लगने पर भोजन न करने से जठराग्नि मन्द पड़ जाती है, रक्तादि धातुओं का शोषण तथा शरीर कृश हो जाता है।

२. भोजन निश्चित समय पर करना चाहिये, असमय में भोजन करने से नाना व्याधियाँ और मृत्यु तक हो जाती है।

३. भोजन समय के व्यतीत हो जाने पर खाली पेट में वायु जठराग्नि को मन्द कर देती है, तत्पश्चात् किया भोजन कठिनता से पचता है।

४—भोजन के गुणदोषों को ध्यान में रखते हुए दिन में केवल दो ही बार भोजन करना चाहिये।

५—अधिक उष्ण या बहुत देर से बना बासी भोजन नहीं खाना चाहिये।

६—सायंकाल का भोजन सोने से दो तीन घण्टे पूर्व अवश्य ही कर लेना चाहिये। दोपहर से सायंकाल के भोजन की मात्रा आधी होनी चाहिये।

७—कम भोजन से सन्तुष्टि नहीं होती, बल और शरीर क्षीण हो जाते हैं। इसी प्रकार अधिक भोजन से भी आलस्य, प्रमाद, अफारा, भारीपन आदि हो जाते हैं अतः दोनों ही त्याज्य हैं।

८—मित भोजन ही स्वास्थ्य का मूल मन्त्र है।

९—अजीर्ण हो जाने पर पथ्य हो या अपथ्य कुछ भी नहीं खाना चाहिये, क्योंकि अजीर्ण में भोजन करना दुःखदायक है।

१०—अकेला स्वादु भोजन का सेवन न करे; अपने आश्रित सेवक, सम्बन्धियों को उस में सम्मिलित करना चाहिये।

११—परस्पर विरुद्ध भोजन एक साथ खाने से लाभ के स्थान में हानि अधिक होती है।

१२—भोजन के कम से कम एक घण्टा पूर्व और एक घण्टा पश्चात् पानी पीना चाहिये।

१३—भोजन में जल नहीं पीना चाहिये, यदि भोजन रूक्ष हो तो थोड़ी मात्रा में पीना उचित है।

१४—व्यायाम के तत्काल पश्चात् भोजन करना अथवा भोजन के पश्चात् तत्काल व्यायाम करना बहुत हानिकारक है।

१५—भोजन में शुद्धता की अत्यधिक आवश्यकता है।

१६—भोजनोपरान्त मुख को कुल्लादि से शुद्ध कर लेना चाहिये और दान्तों में फंसे अन्नकणों को तिनके आदि से युक्तिपूर्वक पृथक् कर देना चाहिये।

१७—ब्रह्मचारी का सायंकाल का भोजन अत्यन्त हल्का होना चाहिये. यदि हो सके तो केवल दुग्धाहार ही करे।

१८—भोजन खूब भूख लगने पर करना चाहिये, स्वाद भोजन में नहीं, भूख में है।

१९—जिन पदार्थों में से स्नेहभाग निकाल लिया गया है, उनका सेवन नहीं करना चाहिये।

२०—एक वस्त्र धारण कर भोजन नहीं करना चाहिये।

२१—शय्या पर बैठकर, लेटकर, आसन पर रखकर या हाथ में लेकर भोजन करना शिष्टाचार के विरुद्ध है।

२२—किसी के भी साथ एक पात्र में भोजन नहीं करना चाहिए। कुल्ला किये विना झूठे हाथ इधर-उधर नहीं घूमना चाहिये।

२३—गीले पांव करके भोजन करना चाहिये, ऐसा करने से आयु बढ़ती है।

२४—सुश्रुत के मतानुसार भोजन के पश्चात् शतपद घूमकर बाईं करवट लेट जाना चाहिये। भावमिश्र के मतानुसार ८ श्वास सीधे, १६ दाहिनी करवट और ३२ श्वास बाईं करवट लेटकर लेने चाहियें।

२५—सर्वदा एक ही प्रकार के पदार्थ नहीं खाने चाहियें, अदल-बदल कर भोजन करना स्वास्थ्यप्रद है।

२६—भूख में पानी पीने से जलोदर हो जाता है और प्यास में भोजन करने से गुल्म रोग हो जाता है, अतः प्यास में पानी तथा भूख में भोजन करना उचित है।

२७—भोजन के पूर्व जल पीने से जठराग्नि मन्द होती है, भोजन के पश्चात् जल पीने से कफ बढ़ता है और भोजन के बीच में अधिक जल पीने से भोजन भली भांति नहीं पचता।

२८—पेट के दो भाग अन्न से तीसरा जल और चौथा भाग वायु से भरना चाहिये। अर्थात् पेट को ठूँस-ठूँस कर अन्न से नहीं भरना चाहिये।

२९—भोजन खूब चबा-चबा कर खाना चाहिये, इससे भोजन शीघ्र पचता है तथा शरीर का अङ्ग बन जाता है; बिना चबाये जल्दी-जल्दी किया हुआ भोजन रोगों को बढ़ाता है। ध्यान रहे-दांतों का कार्य आंतों से नहीं लेना चाहिये।

३०—फल तथा सभी शुष्क (जो द्रव न हों) पदार्थों को भोजन करने वाले के दाहिनी ओर तथ दूध जल आदि द्रव पदार्थों को बाईं ओर रखना चाहिये।

३१—भोजन करते समय पहले मधुर रस का सेवन करना चाहिये, बीच में खट्टे और लवण रस का तथा अन्त में शेष चरपरे, कटु, कषैले रसों का सेवन करना उचित है।

३२—यदि भोजन में फल हों तो पहले अनार खाना चाहिये, फिर रोटी चावल शाकादि और अन्त में दूध या छाछ आदि द्रव पदार्थों का सेवन करना चाहिये क्योंकि शास्त्र में पहले धन (सख्त), बीच में मृदु (नर्म) और अन्त में द्रव पदार्थों के सेवन का विधान है।

भोजन में लवण और क्षार

लवण और क्षार

क्षार के विषय में चरक शास्त्र में लिखा है—"दृष्टिशुक्रघ्नः क्षारः" क्षार दृष्टि अर्थात आंखों के देखने की शक्ति और वीर्य अर्थात ब्रह्मचर्य को नष्ट करता है।

चरक में "क्षारः पुंस्त्वोपघातिनाम्" अर्थात् पुरुष की पुंस्त्वशक्ति का नाश करने वाले पदार्थों में सब से अधिक पुंस्त्वनाशक क्षार है। मनुष्य की ब्रह्मचर्य शक्ति वा वीर्य का सब से अधिक नाश क्षार करता है।

क्षार क्या वस्तु है, इस विषय में—'क्षरणात्क्षारः' क्षरण करने से क्षार कहाता है। यह त्वचा, मांस आदि को उतार देता है, अतः इसे

क्षार कहते हैं। चक्रपाणि के मत में नीचे जाने की क्रिया को क्षार कहते हैं। दोषों को अपने स्थान से हिला देना, यह भी क्षरण का अभिप्राय है। वैसे क्षार अनेक रस वाले द्रव्यों (यव, सज्जी, अपामार्ग, मूली, सुहागा आदि) से तैयार किया जाता है। इसमें कटु लवण आदि अनेक रस होते हैं।

क्षार सभी लगभग रूक्ष, उष्ण और तीक्ष्ण होते हैं। अतः वीर्य को पतला करके नाश करने वाले होते हैं। ब्रह्मचर्य प्रेमी व्यक्ति को इनका सेवन नहीं करना चाहिये। औषध में क्षार का सेवन करना भी पड़ जाय तो किसी चतुर वैद्य की सम्मति से करना चाहिये। जहाँ क्षार कुछ रोगों को दूर करता है वहां इसमें ब्रह्मचर्य नाश करने वाला भयङ्कर दोष भी है, अतः ब्रह्मचारी को सदैव इससे बचकर रहना चाहिये। मानवगृह्यसूत्र में "उपनयनप्रभृति व्रतचारी स्यात् ॥१॥" जब से उपनयन संस्कार हो तभी से व्रतचारी (ब्रह्मचारी) हो। इत्यादि नियम बतलाते हुए लिखा है कि—"न मधुमांसेप्राश्नीयात् क्षारलवणे च ॥" (पुरुष १ ख० १ सू० १२) ब्रह्मचारी मद्य मांस और क्षार तथा लवण का सेवन न करे।

गोभिल गृह्य सूत्र में लिखा है—"क्षाररेचनद्रव्याणि मा सेवस्व"। स्वामी दयानन्द जी ने संस्कारविधि में इस का अर्थ इस प्रकार लिखा है—"क्षार अधिक लवणादि और रेचक जमालगोटादि द्रव्यों का सेवन मत कर।" वेदारम्भ संस्कार में ब्रह्मचारी के लिए लिखा है कि—"तीन दिन तक क्षार लवण रहित पदार्थ का भोजन ब्रह्मचारी किया करे।" अतः ब्रह्मचारी के लिये लवण क्षार का परित्याग उसकी ब्रह्मचर्य साधना में सहायक है।

लवण से हानियाँ

चरक शास्त्र में लवण के दोष इस प्रकार लिखे हैं—"लवणो रसो गुरुः स्निग्ध उष्णश्च···पित्तं कोपयति, रक्तं वर्तयति, तर्षयति, मोहयति, मूर्च्छयति, तापयति, दारयति, कुष्णाति मांसानि, प्रगालयति कुष्ठानि,

'विषं वर्धयति', शोफान् स्फोटयति पुंस्त्वमुपहन्ति, इन्द्रियाण्युपरुणद्धि, वलीपलितखालित्यमापादयति, अपिच लोहितपित्ताम्लपित्तविसर्पवातरक्त-विर्चचिकेन्द्रलुप्तप्रभृतीन् विकारानुपजनयति ।

(सू० अ० २६)

लवण रस भारी स्निग्ध और उष्ण होता है, लवण-रस वा नमक का उपयोग पित्त को कुपित करता है, रक्त में अत्यधिक गति को उत्पन्न करता, प्यास लगता, मोह को पैदा करता, मूर्च्छा तथा सन्ताप को उत्पन्न करता है। फाड़ता है, मांसों को कुरेद देता है, कुष्ठ को गला कर गिरा देता है, विष को बढ़ाता है, शोथों को फोड़ देता है। पुंस्त्व को नष्ट करता है, इन्द्रियों को क्षीण करता है। मनुष्य को बुड्ढा कर देता है, शरीर में झुरियाँ पड़ जाती हैं, बालों को सफेद और गंजा कर देता है। रक्तपित्त, अम्लपित्त, विसर्प, वातरक्त, विचर्चिका इन्द्रलुप्त आदि रोगों को उत्पन्न करता है। लवण को सुश्रुत में भी खुजली, शोथादि रोगों को उत्पन्न करनेवाला तथा पुंस्त्व और इन्द्रियों की शक्ति का नाशक लिखा है।

जिस प्रकार आजकल नमक का सेवन लोग करते हैं वह तो सर्वथा ही अनुचित है। सब्जियों में ऊपर से नमक डालकर, फलों के साथ भी नमक यहां तक कि सेव तरबूज आदि मीठे फलों के साथ भी नमक खाते हैं, नमक मिले हुए दलिये आदि में दूध मिला कर खाते हैं, ऐसे लोगों पर दया आती है। ऐसे लोग ब्रह्मचर्य की तो क्या रक्षा करेंगे? नमक के सेवन से लोग कुष्ठादि भयङ्कर रोगों में फंस जाते हैं। नमक के कारण अधिक खा जाते हैं, अधिक खाने से अपचन (कब्ज) हो जाता है और कब्ज से वीर्य नाश हो जाता है। क्योंकि कब्ज=मलबन्ध ब्रह्मचर्य का परम शत्रु है। भोजन का अपना क्या स्वाद है यह तो नमक खाने वाले जानते ही नहीं; क्योंकि नमक के स्वाद से अन्य स्वाद नष्ट हो जाते हैं। अधिक नमक खाने वाले प्रायः जिह्वालोलुप=चटोरे होते हैं अतः वे पेटू बन जाते हैं। पेटू मनुष्य का ब्रह्मचर्य नाश से सर्वनाश हो जाता है।

भोजन खाने का जो उद्देश्य स्वास्थ्य, बल वा शक्ति बढ़ाना तथा जीवन-रक्षादि है वह नमक खाने से सर्वथा समाप्त हो जाता है। अतः बाह्य-अप्राकृतिक नमक का परित्याग ब्रह्मचर्य तथा स्वास्थ्य प्रेमी के लिये अत्यन्त हितकर है।

जितनी आवश्यकता लवणरस की शरीर निर्माण स्वास्थ्यरक्षाणादि के लिये है उतना नमक शाक-भाजी, फल आदि भोज्य पदार्थों में स्वाभाविक रूप से विद्यमान है। अतः शाक भाजी फलादि सेवन अपनी प्रकृति के अनुसार यथोचित मात्रा में प्रतिदिन करना चाहिये, जिससे शरीर की आवश्यकतानुसार लवणरस की पूर्ति हो सके, और बाहर का नमक खाकर ब्रह्मचर्य तथा स्वास्थ्य का नाश नहीं करना चाहिये। क्योंकि नमक में जो पाचनादि कुछ गुण लिखे हैं वहाँ इसे ब्रह्मचर्थ का शत्रु भी तो लिखा है—"पुंस्त्वमुपहन्ति" ब्रह्मचर्य का नाश करके मनुष्य की पुंस्त्व शक्ति को नष्ट करता है अर्थात् लवण का सेवन मनुष्य को नपुंसक (नामर्द) बनाता है।

लवण-रस से लाभ तथा बाह्य-लवण से हानियां

लवणरस का सेवन हम सभी प्रतिदिन भोजन में करते हैं। डाक्टर लोग इसको शरीर के लिये हितकारी कहते है, अतः अत्यन्त आवश्यक मानते हैं।

निम्नलिखित लाभ बतलाते हैं—

१—नमक से हड्डियों तथा शरीर का निर्माण होता है।

२—पाचन शक्ति में नमक सहायता करता तथा रक्त को शुद्ध करता है।

३—नमक के सेवन से मुख की लालाग्रन्थियां अधिक कार्य करती हैं, लार अधिक मात्रा में उत्पन्न करती हैं।

४—लवण की सहायता से यकृत् पित्त बनाने का कार्य करता है।

५—भोजन को पचाने के लिये जो हमारे आमाशय में पाचक-रस बनता है वह लवण के सहयोग से ही बनता है।

चरक शास्त्र में लवण रस के गुण इस प्रकार लिखे हैं—"लवणो रसः पाचनः क्लेदनो दीपनश्च्यावनश्छेदनो भेदनः तीक्ष्णः सरोविकास्यधः स्रंस्यवकाशकरो वातहरः स्तम्भसंघातविधमनः सर्वरसप्रत्यनीकभूत आस्यमास्त्रावयति कफं विष्यन्दयति"। अर्थात् लवणरस पाचन, गीला करने वाला, दीपन, स्राव करने वाला, छेदन, भेदन, रेचक, सन्धिजोड़ों के बन्धनों को खोलने वाला, कोष्ठों में रुके हुये मलों को बिना पकाये नीचे की ओर ले जाने वाला, वात और कफ को हरने वाला, स्तम्भ (जकड़ना) बन्ध (कब्ज) दोषों के संघात का नाशक और सम्पूर्ण रसों का शत्रु है अर्थात् यदि नमक या लवण रस किसी भोज्य पदार्थ में अधिक हो जाये तो किसी अन्य रस का स्वाद नहीं आता। मुख से लाला और कफ को बहाता है। (मार्गान् विशोधयति) मार्गों को शुद्ध करता तथा शरीर के अवयवों को मृदु-नरम करता है। (रोचयत्याहारम्) आहार में रुचि करता है। प्रायः लोग इसको स्वाद के कारण ही अधिक खा जाते हैं। ये लवण रस के लाभ बतलाये हैं, जो नमक प्रतिदिन ऊपर से डालकर खाया जाता है उसमें ये गुण वा लाभ नहीं है।

लवण रस शरीर के लिये अत्यन्त उपयोगी है अतः भगवान् ने लवण रस सब से अधिक उत्पन्न किया है। प्रायः सभी खाद्य पदार्थों में लवण रस पाया जाता है। फल तथा शाक-सब्जियों में स्वाभाविक रूप से लवण रस या प्राकृतिक नमक अधिक पाया जाता है। अतः कन्द-मूल, फल, शाकभाजी के खाने को स्वास्थ्य रक्षार्थ अधिक महत्व दिया है। जो लोग शाकभाजी नहीं खाते वे प्रायः रोगी देखे जाते हैं। फलों में मिश्रित जो लवण पाया जाता है वह शरीर के लिए बहुत लाभकारी है। इस स्वाभाविक लवण की ही प्रशंसा प्राचीन शास्त्र तथा आधुनिक वैद्य और डाक्टर करते हैं। जो भोजन में ऊपर से बनावटी सांभर, समुद्र आदि का नमक खाते हैं वह हानिकारक है, उसकी आवश्यकता भी नहीं है। वास्तव में हमारी आवश्यकता के अनुसार लवण रस हमें भोज्य

पदार्थों से स्वयमेव प्राप्त हो जाता है अतः यह आवश्यक नहीं कि भोजन पकाते समय लवण डाला जाय या खाते समय ऊपर डालकर खाया जाय। लवण रस की प्रशंसा के कारण लोगों में नमक मिलाने की प्रबल प्रथा चली हुई है, यह अनावश्यक और हानिकारक है। स्वाद के कारण लोग नमक सेवन आवश्यकता से अधिक मात्रा में करके हानि उठा रहे हैं। अतः ऊपर से नमक डालकर अथवा भोजन में पकते समय डालकर खाने की प्रथा को बन्द करना ही हितकर है।

भोज्य पदार्थों में विद्यमान स्वाभाविक लवण रस ही हमारे स्वास्थ्य के लिए पर्याप्त है। तथा यह बात भी भली भान्ति समझ लेनी चाहिये कि जहां कहीं लवण का लाभ अथवा उपयोग लिखा है यह सांभर, विड, सोंचर और समुद्र नमक तो कदापि नहीं लेना चाहिये, वहां सैंधा नमक का प्रयोग कर सकते हैं। इस के लिए आयुर्वेद के ग्रन्थों में लिखा है। यह वैद्यों के लिए संकेत है—"लवणं सैन्धवं प्रोक्तम्" जहां कहीं प्रयोग में लवण लिखा हो तो सैंधा नमक ही लेना चाहिये। चरकशास्त्र में भी "सैन्धवं लवणानां श्रेष्ठतमं पथ्यम्" लवणों में सब से श्रेष्ठ सैंधा नमक पथ्य माना है। सैंधा नमक खनिज है अर्थात् खान से निकलता है, इस की खान पाकिस्तान में रह गई, अब सैंधा नमक के नाम से बनावटी नमक बाजार में बिकता है। दुर्भाग्य से असली सैंधा नमक तो औषध-निर्माण के लिए भी नहीं मिलता, प्रतिदिन खाने के लिये कहां से आये? सांभर नमक का सेवन तो अत्यन्त हानिकारक है। ब्रह्मचर्य रक्षा की दृष्टि से तो सभी नमक बहुत हानिकारक हैं।

लवण पर ब्र० रामप्रसाद जी का अनुभव

नमक के विषय में ब्रह्मचारी रामप्रसाद 'बिस्मिल' जो फांसी के तख्ते पर देश की स्वतन्त्रता के लिये हंसते-हंसते झूल गये, लिखते हैं—

"सहसा ही बुरी आदतों को छोड़ा था इसी कारण कभी-कभी स्वप्नदोष हो जाता था। तब किसी सज्जन के कहने से हम ने नमक

खाना छोड़ दिया, केवल उवाल कर शाक या दाल से एक समय भोजन करता। मैंने रात्रि के समय भोजन करना त्याग दिया, केवल थोड़ा सा दूध ही रात्रि को पीने लगा। मिर्च खटाई तो छूता भी न था। इस प्रकार पांच वर्ष तक बराबर नमक न खाया। नमक के न खाने से शरीर के सब दोष दूर हो गये। और मेरा स्धास्थ्य दर्शनीय हो गया, सब लोग मेरे स्वास्थ्य को आश्चर्य की दृष्टि से देखा करते।"

लवण पर महात्मा गांधी जी का अनुभव

महात्मा गान्धी जी लवण के विषय में लिखते हैं—

"मसाले के विषय में जो कहा गया है वही नमक के विषय में भी कहा जा सकता है। कितने ही इस बात को सुनकर चौंक पड़ेंगे, किन्तु यह एक अनुभव सिद्ध बात है। इंग्लैंड में एक स्कूल है, जिस का यह मत है कि नमक मसाले से अधिक हानिकारक है, जो शाक हम लोग खाते हैं उस में आवश्यकतानुसार नमक का भाग विद्यमान है। अतः ऊपर से नमक मिलाने की कोई आवश्यकता नहीं। आवश्यकता से अधिक नमक हमारे शरीर के पसीने द्वारा या और किसी दूसरे प्रकार से बाहर निकल आता है। प्रकृति ने आवश्यकतानुसार सभी खाद्य पदार्थों में नमक का भाग छोड़ रखा है। एक लेखक का कहना है कि लवण खून को विषैला बना देता है। वह यह भी कहता है कि जो लोग सर्वथा लवण नहीं खाते उनका खून इतना स्वच्छ रहता है कि सांप के विष का भी प्रभाव उन पर कुछ नहीं पड़ता। हम नहीं कह सकते कि यह कहाँ तक सत्य है। किन्तु अपने निजी अनुभव से यह कह सकता हूं कि दमा जैसे बहुत से रोग नमक छोड़ देने से शीघ्र ठीक हो जाते हैं। दूसरी बात यह है कि इसके छोड़ देने से किसी की कुछ हानि होती नहीं देखी गई, किन्तु उन्हें कुछ लाभ ही होता है। मैंने स्वयं दो वर्ष से नमक छोड़ दिया है। उसका परित्याग मुझे जरा भी नहीं अखरता। बल्कि कुछ अंशों में मुझे लाभ ही हुआ है। अब मुझे पहिले के समान बार-

बार जल नहीं पीना पड़ता। यदि कोई मनुष्य नमक छोड़ दे तो कुछ दिन तक उसे अड़चन प्रतीत होगी। किन्तु यदि वह अपने धैर्य को स्थिर रखेगा तो थोड़े ही दिनों में उसे बहुत लाभ हो सकता है।"

लवण पर महात्मा नारायण स्वामी जी का मत

महात्मा नारायण स्वामी जी महाराज अपनी 'योगरहस्य' पुस्तक में लिखते हैं—"नमक यदि न खाया जाये तो अधिक अच्छा है, अन्यथा थोड़ी मात्रा में खाया जा सकता है।" अतः यदि अभ्यासी नमक का सर्वथा परित्याग कर दें तो उनके लिये अधिक हितकर है।

लवण पर टण्डन जी का अनुभव

राजर्षि श्री पुरुषोत्तमदास टण्डन ने हरद्वार में अपने एक भाषण में कहा था—"कि मानव भोजन में ऊपर से नमक मिलाकर खाना व्यर्थ ही नहीं किन्तु अनर्थकर भी है, उतना नमक मनुष्य को शाकादि में मिल जाता है जितने की उसे आवश्यकता है। ऊपरी नमक हानिकारक है।" टण्डन जी ने तर्कबल से विषय पुष्ट किया और उदाहरण में अपने आप को उपस्थित (पेश) किया। वे दीर्घकाल से नमक नहीं खाते, किन्तु इस प्रयोग से उन पर बहुत अच्छा प्रभाव पड़ा। टण्डन जी ऊपरी नमक को एक हल्का विष मानते हैं। उन्होंने वैद्यों तथा डाक्टरों से अनुरोध किया कि वे इस विषय पर विचार करें।

लवण पर मेरा अनुभव

२० वर्ष से भी अधिक समय व्यतीत हो गया, तभी से मैंने नमक खाना छोड़ रखा है। उसके कुछ काल पश्चात मेरे अन्य कई मित्रों ने भी नमक का परित्याग कर रखा था। उन में से कुछ तो कुछ वर्ष पीछे खाने लग गये और कोई कोई ऐसे भी हैं जिन्होंने छोड़ने के पीछे नमक को खाने के लिये स्पर्श भी नहीं किया। हमारे गुरुकुल (झज्जर) में १२ वर्ष से कोई भी ब्रह्मचारी नमक ऊपर से डालकर या शाक भाजी पकते समय भी डालकर नहीं खाता। जो शाक भाजी में स्वाभाविक लवण

होता है वही हम खाते हैं। सैंधादि कोई भी नमक भोज्य पदार्थ के रूप में सेवन नहीं करते। इसका मुख्य कारण यही है कि मेरा यह निश्चय है कि ब्रह्मचारी को अपने साधना काल में नमक नहीं खाना चाहिये, अतः मैं स्वयं भी नहीं खाता तथा हमारे ब्रह्मचारी भी नहीं खाते।

नमक छोड़ने का प्रभाव स्वास्थ्य पर कैसा पड़ता है यह हमारे विद्यार्थियों के स्वास्थ्य को देखने से ही पता चलता है। विद्यार्थियों का स्वास्थ्य भारत के सभी शिक्षणालयों से सामन्यतया अच्छा ही हो सकता है खराब तो किसी रूप में है ही नहीं। खुजली तो आज तक किसी को हुई ही नहीं। फार्मी गन्ना चूसने के कारण कभी-कभी एक दो विद्यार्थियों को दाद अवश्य हुए हैं, वे साधारण औषध के सेवन से चले गये। आँख किसी की कभी भी नहीं दुखती। फोड़े-न्फुसी आदि रक्त सम्बन्धी विकार भी नहीं होते। प्यास सामान्य लोगों की भांति हमें नहीं सताती। हमारे यहाँ जब नया बालक प्रविष्ट होता है तब कुछ दिन तो उसे हमारा बिना नमक का शाक दाल अच्छा नहीं लगता। किन्तु थोड़े दिन में उसका अभ्यास हो जाता है और भोजन को रुचि करके खाने लगता है तब उसका शरीर तथा स्वास्थ्य उन्नति करने लगते हैं। रक्त अत्यन्त शुद्ध हो जाता है, मुख की लाली शरीर का लाल रङ्ग तथा चर्मरोगों का सर्वथा अभाव इसके अकाट्य प्रमाण हैं। यही नहीं, चरक शास्त्र तथा महात्मा गांधी जी का यह कथन है कि नमक खाने से सर्प आदि विषैले जन्तुओं का विष शीघ्र और अधिक हानि करता है। जो नमक नहीं खाते उन पर सर्प आदि का विष बहुत न्यून हानि करता है अथवा करता ही नहीं, यह मेरा अनेक वर्षों का प्रत्यक्ष अनुभव है। मुझे तथा मेरे अनेक ब्रह्मचारियों को सर्प ने काटा है किन्तु बहुत ही आश्चर्य की बात है कि प्रत्यक्ष रूप से तो अनेक ब्रह्मचारियों पर नाम-मात्र भी सर्प के काटने का प्रभाव नहीं दिखाई दिया। किसी-किसी पर नाममात्र का प्रभाव हुआ, वह औषध-उपचार से एक-दो दिन में ठीक हो गया। किन्तु जो व्यक्ति नमक का सेवन करते है ऐसे भी मेरे कई

साथियों को सर्प ने काटा । उन को सर्प के काटने से पर्याप्त हानि तथा कष्ट उठाना पड़ा ।

आजकल (चार-पाँच वर्ष से) मैं सर्प-विष की चिकित्सा करता हूँ । आस-पास के ग्रामों से प्रतिवर्ष सर्प के दंशित रोगी आते ही रहते हैं । इस शुष्क प्रान्त में बिना फण के पित्त प्रकृति के (Vapur) सर्प अधिकतर घुरेड़िये चित्तकोड़ियादि हैं जो पर्याप्त विषैले होते हैं । चिकित्सा समय पर तथा यथोचित नहीं होती तो मृत्यु भी हो जाती है । इसी प्रकार के सर्पों ने हमारे ब्रह्मचारियों को काटा था, उन पर तो नाममात्र का प्रभाव हुआ, अथवा सर्वथा प्रभाव ही नहीं हुआ ।

जब कोई सर्प का काटा रोगी चिकित्सार्थ गुरुकुल में आता है तब औषधोपचार के साथ उसका नमक मसाला आदि सब छुड़वा देते हैं तथा गोघृतादि सात्विक पदार्थों का सेवन विशेषतया करवाते हैं। नमकादि के छुड़वाने से चिकित्सा शीघ्र तथा सरलता से हो जाती है। इसी प्रकार तृषा, दाह, रक्तपित्त, अम्लपित्त, विसर्प, कुष्ठ, शोथ, गञ्ज, दाद, खुजली आदि सब चर्मरोग, नेत्ररोग, दन्तरोग वालों का सफेद होना, नपुंसकता अर्थात् ब्रह्मचर्य का नाश, स्वप्नदोष और धातु प्रमेह आदि रोगों को नमक का सेवन जन्म देता और बढ़ाता है । नमक के छोड़ने से उपर्युक्त रोग कम हो जाते हैं, कई तो सर्वथा चले ही जाते हैं । यह अनुभव मैं अनेक वर्षों से कर रहा हूँ । ब्रह्मचर्य के लिए नमक कितना हानिकारक है यह काकोरी के शहीद श्र० रामप्रसाद जी के लेख को पढ़ कर पाठक समझ ही गये ।

नपुंसकता को जन्म देने वालों में नमक सबसे बढ़ कर है यह चरक-शास्त्र के अनेक प्रमाणों से सिद्ध हो चुका है । क्योंकि अणु रूक्ष और तीक्ष्ण प्रकृति के नमकादि जितने भी पदार्थ हैं ये वीर्यादि धातुओं को पतला करते हैं । इससे स्वप्नदोष, वीर्य का मूत्र में निकलना आदि प्रमेह रोग हो जाते हैं । अतः स्वास्थ्यप्रेमी तथा ब्रह्मचारियों को नमक का सेवन कदापि भूलकर भी नहीं करना चाहिये । यदि दुर्भाग्यवश

किसी को औषधादि के रूप में वा किसी अन्य कारण से नमक का प्रयोग करना भी पड़े तो सैन्धा नमक का ही सेवन वह भी थोड़ी मात्रा में करना चाहिए। चरकशास्त्र के अनुसार "सैन्धवं लवणानाम्" सब नमकों में सैन्धव नमक ही पथ्य है, अर्थात् कम हानिकारक है। किन्तु ब्रह्मचारी को नमक से सर्वथा बचना चाहिये। सैन्धे नमक की जहाँ खाने की आज्ञा है, वह केवल इसलिए कि जो कोई रोगी आदि लवण खाना चाहे अथवा कोई गृहस्थ नमक बिना न रह सके तो वह बहुत थोड़ी मात्रा में सैन्धा नमक का सेवन कर सकता है। इससे कुछ कम हानि होगी क्योंकि 'लवणं सैन्धवं नोष्णम्' चरक में लिखा है। सभी लवण उष्णवीर्य होते हैं केवल सैन्धव लवण उष्णवीर्य नहीं। तीक्ष्णता और रूक्षता का दोष इसमें भी है। अतः नमक सेवन से बचना ही ब्रह्मचारी के लिये कल्याणकर है।

दूध

गाय, भैंस, भेड़, बकरी आदि अनेक पशुओं का दूध प्रयोग में लाया जाता है, किन्तु गोदुग्ध ही सर्व-श्रेष्ठ और अमृत है। महाभारत में आया है—"अमृतं वै गवां क्षीरम्" (अनु० अ० ६६।४६) अर्थात् गोदुग्ध ही वास्तव में अमृत है।

हमारे शरीर के लिए दूध की अत्यधिक आवश्यकता है। यदि बच्चे को दूध यथोचित मात्रा में नहीं मिलता तो उसके शरीर का पूर्ण विकास नहीं हो पाता। वैसे तो दूध सभी अवस्थाओं में श्रेष्ठ और पथ्य है किन्तु वृद्धि-अवस्था १६ वर्ष से ४० वर्ष तक नवयुवकों के लिए अत्यावश्यक है। "क्षीरमोजस्करं पुंसाम्" तथा "पयसा वर्धते तनुः" के अनुसार दूध से बल, वीर्य, ओज, कान्ति और शरीर की वृद्धि होती है। अतः प्रतिदिन के भोजन में दूध का अपना विशेष स्थान है।

दूध सर्वश्रेष्ठ और पूर्ण भोजन है। डाक्टरों के मतानुसार इसमें

बिटामिन ए. बी. डी. जी. होते हैं। दूध में सभी पोषक और जीवनीय तत्त्व विद्यमान हैं। अतः केवल दुग्धाहार से ही क्षरीर का पूर्ण-विकास हो सकता है। संसार में इसके तुल्य अन्य कोई पदार्थ नहीं जिस पर जीवन निर्वाह् या शरीर का विकास किया जा सके। गोमाता की यह अद्वितीय देन है। धन्वन्तरीय निघण्टु में गोदुग्ध के गुण इस प्रकार लिखे हैं—

पथ्यं रसायनं बल्यं हृद्यं मेध्यं गवां पयः।
आयुष्यं पुंस्त्वकृद्वातरक्तविकारनुत ॥१६४॥
(सुवर्णादिःषष्ठो वर्गः)

गोदुग्ध पथ्य = सब रोगों या अवस्थाओं में सेवन करने योग्य, रसायन, वलकारक, हृदय के लिए हितकारी, मेधा (बुद्धि) को बनाने वाला, आयु को बढ़ाने वाला, पुंस्त्वशक्ति अर्थात् वीर्यवर्द्धक, वातनाशक और रक्तपित्त के विकारों को दूर करने वाला है।

दूध को हमारे शास्त्रकारों ने (सद्यः शुक्रकरं पयः) तत्काल वीर्य-वर्द्धक लिखा है। इसी प्रकार चरक सुश्रुत आदि सभी आयुर्वेदीय ग्रंथों में गोदुग्ध की महिमा और गुण बतलाये हैं। आजकल गोवंश की रक्षा नहीं की जाती, उसके स्थान पर भैंसों को पाला जाता है और उन्हीं का घी दूध आदि सेवन किया जाता है, किन्तु भैंस का दूध हानिकारक है।

गाय और भैंस के दूध की तुलना

१. गाय का दूध मधुर, स्निग्ध, शीतल, वात-पित्त-कफ नाशक, फ़ेफड़े के लिये लाभकारी, क्षय रोग को दूर करने वाला तथा नस और नाड़ियों को स्निग्ध करने वाला है। अस्थिमार्दव (Reckets) से क्षीण होने वाल बालक के लिये गाय का दूध अमृत के समान प्राण-वर्धक है। जिन बालकों के नेत्रों की ज्योति क्षीण हो गई है या जो रक्तक्षय या पाण्डु रोग से पीड़ित हैं उनके लिये भी यह अत्यन्त उपकारी औषध है। बराबर सेवन करने से सभी व्याधियाँ दूर होती हैं एवं

बुढ़ापा शीघ्र नहीं आता। धारोष्ण पीने से अमृत तुल्य है, यह दो घण्टे में पचता है।

२. भैंस का दूध उपर्युक्त कई रोगों के लिये तो बिल्कुल निकम्मा है तथा कई रोगों पर कुछ लाभकारी है भी तो बहुत कम मात्रा में। वह मधुर, भारी, गर्म, वीर्यवर्धक, चिकना, कफ और वायुकारक, आलस्य पैदा करने वाला, मन्दाग्नि तथा छूत की व्याधियों को बुलाने वाला है। धारोष्ण जहर है, नौ घण्टे में पचता है। पीने से नींद सताती है। अनिद्रारोग में औषध रूप में दिया जाता है। उसमें बड़ी गर्मी रहती है, इसी लिये भैंस के दूध आदि पदार्थों के गुण शीघ्र ही शरीर से बाहर हो जावे हैं और देर तक शरीर में शक्ति को नहीं रख सकते।

३. गौ के दूध में विटामिन ए. डी. बहुत अधिक होते हैं। गौ तेज धूप में गोचर भूमि में चर कर अपने दूध को सूर्य किरणों द्वारा उपयोगी बनाती है और भैंस धूप में नहीं चर सकती।

४. गोदुग्ध में आयोडीन और केरोटीन होते हैं जो भैंस के दूध में नहीं होते। कैरोटीन ही विटामिनों के गुणों को सुरक्षित रखता है।

गाय के दूध के स्नेह पदार्थ में जहाँ यह २० यूनिट है वहां भैंस के दूध के स्नेह पदार्थ में २ यूनिट से भी कम है। गाय के दूध को उबालने पर उसकी मलाई में जो पीला रंग आता है वह इस कैरोटीन पदार्थ के कारण ही आता है। भैंस के दूध में यह पदार्थ नहीं है इसलिए उसका नवनीत (मक्खन) घी एकदम सफेद होता है।

५. गोदुग्ध का प्रोटीन अधिक आसानी से पच जाता है और धीर्यबर्धक है, और छूत के रोगों को भगाने वाला है, एक से दो घण्टे में पच जाता है। पुरुषार्थ, शान्ति चुस्ती, लाने वाला सात्विक आहार है।

६. गौ का दूध दैवी और भैंस का दूध आसुरी है। काम, क्रोध, लोभ, राग, द्वेप, आलस्य, मन्दाग्निकारक, गरम, भारी, मन्द बुद्धि, तामसी आहार है।

अंग्रेजी में एक कहावत है—Cow milk and honey are the root of beauty (गोदुग्ध और मधु सौन्दर्य के मूल कारण हैं) डाक्टरों का यह अनुभव है कि धारण शक्ति को तीव्र बनाने तथा उसको टिकाये रखने में यह बहुत सहायक है। किन्तु वह गुण भैंस के दूध में नहीं है।

गोदुग्ध

बलदायक, आयुवर्धक, शीतल, कफ और पित्त के विकारों को शान्त करता है, हृदय के लिए हितकारी, रुचिकारक, बुद्धि तथा अत्यधिक वीर्यवर्द्धक, स्वादु, रसायन और जीवनीय है, आँखों के लिये हितकारी तथा रस और पाक में मधुर है।

महिषी दुग्ध

भैंस का दूध गाय के दूध से अधिक भारी, शीतल और स्निग्ध होता है। महाभिष्यन्दी, निद्रा आलस्य, और प्रमाद जनक, जठराग्नि को मन्द करने वाला, और बलदायक है किन्तु भैंस का दूध कामोद्दीपक है अतः ब्रह्मचारी के लिये विशेष हानिकारक है।

अजापयः [बकरी का दूध]

बकरी के दूध के गुण भी लगभग गाय के दूध से मिलते हैं, यह विशेषतया कृश शरीर वाले दुबले पतले व्यक्तियों के लिये हितकर है। श्वास, कास, रक्तपित्त और त्रिदोषनाशक है।

आविक [भेड़ का दूध]

भेड़ का दूध मधुर, स्निग्ध, गुरु, पित्त और कफ कारक है, केवल वात व्याधियों में पथ्य है। स्थूलता और प्रमेह नाशक है।

उष्ट्रीपयः [ऊंटनी का दूध]

रूक्ष, उष्ण, कुछ लवण, लघु और स्वादु है, वात और कफ के रोग, गुल्मोदर, शोफ, अफ़ारा, कृमि, कुष्ठ, बवासीर और विषनाशक है।

हस्तिनीपय: [हथिनी का दूध]

भारी, वलदायक, स्निग्ध, अतिशीतल, मधु, नेत्रज्योतिवर्धक तथा शरीर को अत्यन्त दृढ करने वाला है।

अश्वापय: [घोड़ी का दूध]

खट्टा, नमकीन, दीपन, लघु, बल, कान्ति दायक और श्वास तथा वातनाशक हैं।

गर्दभीपय: [गधी का दूध]

मधुर, अम्ल, रूक्ष और दीपन है। श्वास कास नाशक तथा बच्चों के सभी रोगों को दूर करता है।

मानुषीपय: [स्त्री का दूध]

मधुर शीतल, लघु, स्निग्ध, तृप्तिकारक, दीपन, बलवर्द्धक, जीवन, नेत्रों के लिये हितकारी, रक्तपित्त तथा नेत्रपीड़ा को नष्ट करता है। नस्य लेने और आँखों में डालने के लिये पथ्य है।

———

घृत

दूध की भान्ति घी का भी भोजन में अपना विशिष्ट स्थान है। घी के अभाव में भोजन में स्वादिष्ठता और स्निग्धता नहीं आती। घी के संयोग से सभी भोज्य पदार्थ उत्तम, स्वादिष्ठ और बलदायक हो जाते हैं। "आयुर्वै घृतम्" के अनुसार घी से आयु बढ़ती है और वेद में आया है "घृतेन त्वं तन्वं वर्धयस्व" (यजु० १२-४४) अर्थात घी से शरीर की वृद्धि होती है।

महर्षि धन्वन्तरि जी महाराज ने गोघृत के गुण इस प्रकार लिखे हैं—

शस्तं धीस्मृतिमेधाग्निवलायुः शुक्रचक्षुपाम्।
वालवृद्धप्रजाकान्तिसौकुमार्यस्थिरार्थिनाम् ॥१४५॥

क्षतक्षीणपरीसर्पशस्त्राग्निग्लपितात्मनाम् ।
विपाके मधुरं शीतं वातपित्तविषापहम् ।
चक्षुष्यं बल्यमग्र्यं च गव्यं सर्पिर्गुणोत्तरम् ।।१४६।।

धन्वन्तरीय निघण्टौ पष्ठो वर्गः

अर्थात—गाय का घी वृद्धि, स्मरणशक्ति, मेधा (धारणावती बुद्धि) अग्नि (जाठराग्नि) बल, आयु, वीर्य, नेत्र ज्योति, बालक-बूढ़े, प्रजा, (सन्तान) कान्ति, (तेज) तथा सौकुमार्य (युवावस्था) की स्थिरता के लिये हितकारी व लाभदायक है। गाय का घी पाक में मधुर और शीतल है। वातरोगों, पित्तरोगों तथा सब प्रकार के विषों (जहरों) को नष्ट करने वाला है। क्षतक्षीण, (निर्बल) परीसर्प रोग तथा शस्त्र और अग्नि से पीड़ितों के लिये लाभदायक है। चक्षु के लिये हितकारी अर्थात नेत्र ज्योति वर्धक है। अत्यन्त बलवर्धक और सबसे अधिक गुण वाला है।

सुश्रुत शास्त्र में भी गोघृत के गुण इस प्रकार लिखे हैं। श्री नरहरि जी राजनिघण्टु में लिखते हैं—गाय का घी, वातश्लेष्महारक, श्रमनिवारक, हृदय को हितकारी, व शरीर को स्थिरता देने वाला है। और यह भी लिखते हैं कि—

गव्यं हव्यतम घृतं बहु गुणं भोग्यं भवेद्भाग्यतः ।।२०४।।

राजनिघण्टौ पंचदशो वर्गः

गौ का घी हव्यतम अर्थात हवन करने के लिये सर्वश्रेष्ठ और बहु गुणयुक्त है, यह बड़े सौभाग्यशाली मनुष्यों को ही खाने को मिलता है। यथार्थ में गोपालक ही शुद्ध गोघृत का सेवन कर सकते हैं। शालिग्राम निघुण्टु में गाय के घृत के गुण यों लिखे हैं।

गाय का घी अमृत के समान गुणकारी और रसायन है तथा सब घृतों में उत्तम है। यही प्रशंसनीय है। भावप्रकाश निघण्टु में भी गोघृत को इससे भिन्न, कुरूपतापाय, तथा राक्षस–नाशक, मंगलरूप रसायन, सुन्दर सम्पूर्ण घृतों में उत्तम बताया है।

इसी प्रकार दही, तक्र [छाछ] आदि भी स्वास्थ्य रक्षा के लिये उत्तम हैं, दही और तक्र के सेवन से पाचन प्रणाली अपना कार्य सुचारु रूप से करती है, पेट के सभी विकार नष्ट होकर उदर नीरोग रहता है। निघण्टुकार ने लिखा है कि—"न तक्रसेवी व्यथते कदाचित्" अर्थात् तक्र का सेवन करने वाला कभी रोगी नहीं होता।

फलाहार

दुग्धाहार के पश्चात् दूसरा नम्बर फलाहार का ही है। कुछ लोग फलाहार को सर्वश्रेष्ठ मानते है किन्तु इसमें मलभाग अधिक होने से सर्वश्रेष्ठ दुग्धाहार ही है। फलाहार दुग्धाहार से हीन तथा अन्न से उत्तम है। फलों में वल वीर्य, कान्ति और ओज को बढ़ाने की शक्ति कूट-कूटकर भरी हुई है। फलाहार से सत्त्वशक्ति की वृद्धि होती है, मन की चंचलता नष्ट होती है और स्वास्थ्य भी अत्युत्तम हो जाता है। फल ताजा और पके हुए एवं जों दूषित न हों वे ही उपादेय हैं। जो फल गुणों की दृष्टि से उत्तम हैं उनको अपनी प्रकृति के अनुसार सोच-विचारकर ग्रहण करना चाहिये।

अञ्जीर

अंजीर का फल अत्यन्त शीतल है, रक्तपित्त को तत्काल दूर करता है। पित्त और शिर के विकारों में प्रथम पथ्य है, तथा नाक से रक्त गिरने (नकसीर) में विशेष लाभदायक है। इसका सेवन ब्रह्मचारी तथा स्वास्थ्यप्रेमियों के लिए अत्यन्त हितकर है, प्रचुर मात्रा में सेवन कनना चाहिए।

शहतूत

पक्के शहतूत गुरु, स्वादु, शीतल, वात-पित्त नाशक हैं और कच्चे भारी, सारक खट्टे, उष्ण और रक्तपित्त कारक, होते हैं। थोड़ी मात्रा में इसका सेवन करना चाहिए, खांसी, जुकाम, गले के रोगों के लिए हितकर है।

आंवला

आंवला किंचित् कटु, खट्टा, मधुर, शीतल, हल्का, दाह, पित्त, वमन, प्रमेह, शोष, अरुचि, रक्तपित्त, आध्मान, मलवद्धता को नष्ट करता है। केशों के लिये हितकारी, रसायन, जरा और त्रिदोषनाशक है—खट्टेपन से वात का, मधुरता और शीतलता से पित्त का तथा कषैलेपन और रूक्षता से कफ का नाश करता है।

सूखा आंवला कटु, अम्ल, तिक्त, मीठा, कषैला, केश और नेत्रों के लिये हितकारी और वीर्यवर्धक है। तृषा, मेद, विष और त्रिदोष नाशक है। केवल आंवला की खटाई ही ऐसी है जो हानि नहीं करती।

अंगूर

अंगूर सर्वश्रेष्ठ फल है, यह रुचिकारक, वीर्यवर्द्धक, शीतल, मधुर, स्निग्ध है। स्वर और आंखों के लिये हितकारी, वात, रक्तपित्त, ज्वर, श्वास, वमन, कामला, दाह, तृषा आदि का नाश करता है। इसी प्रकार दाख और किशमिश भी लाभदायक हैं। अंगूर यदि खट्टा हो तो रक्तपित्त को करता है। इसे यथेच्छा सेवन करना चाहिए।

आम

पका हुआ आम सुगन्धित, मधुर, स्निग्ध, अत्यन्त पुष्टिकारक, रुचिकारी, वातनाशक, हृदय के लिये हितकारी, शीतल, भारी, मलरोधक, प्रमेहनाशक, वर्ण का उज्ज्वल करने वाला, तृषा, वात तथा श्रमनाशक, बल, वीर्य, मांस और कफ को बढ़ाता है। आम के साथ दूध का सेवन अत्यन्त लाभप्रद है। दूध के साथ आम चूसने से बलवीर्य की अत्यन्त वृद्धि करता है, लघु, वात-पित्त नाशक और शीघ्र पचाता है। आम खट्टा होता है तथा बिना दूध के हानि करता है।

कच्ची अम्बियां कषैली खट्टी, वात और रक्तपित्त कारक होती हैं। इसी प्रकार कच्चा बड़ा आम भी अत्यन्त खट्टा, रूक्ष, त्रिदोषकारक

तथा रुधिर के रोगों को बढ़ाता है। अतः इनका सेवन नहीं करना चाहिये। ब्रह्मचारी के लिए कच्चे आम की खटाई अत्यन्त हानिकारक है।

अमरूद

अमरूद स्वादु, कषैला अत्यन्त शीतल, वातपित्त नाशक, कफकारक, वीर्यवर्द्धक और रुचिकारक है। इसका यथोचित सेवन स्वास्थ्य के लिये लाभदायक है। किसी २ को यह कब्ज करता है तथा दस्त भी लगा देता है।

केला

केला स्वादिष्ट, शीतल, पाक में मधुर, वीर्यवर्द्धक, पुष्टिकारक, रुचिप्रद, मांस को बढ़ाने वाला, क्षुधा, तृषा, नेत्ररोग और प्रमेहनाशक है। केले की जड़ कृमि नाशक है, सुखाकर ·च्चे फलों का चूर्ण उत्तम पौष्टिक पदार्थ है। पुरानी खांसी में केले का शर्बत उत्तम है। किसी-किसी को कब्ज करता है।

सेव

सेव वातपित्त नाशक, पुष्टिकारक, कफवर्धक, भारी, शीतल, रुचिकारक और वीर्यवर्धक है। रस और पाक में मधुर है। खूब रक्त बढ़ाता है। इसका सेवन हितकारी है।

नारंगी

यह मीठी, खट्टी, भारी, अति कठिनता से पचनेवाली, वीर्यवर्द्धक और वातनाशक है। खट्टी नारंगी अत्यन्त उष्ण होती है। नारङ्गी कब्जकारक खट्टी और उष्ण होने से ब्रह्मचारी के लिए हानिकारक है, अतः उपादेय नहीं। मीठे सन्तरे थोड़ी मात्रा में सेवन कर सकते हैं।

नासपाती

नासपाती भारी, वीर्यवर्धक मधुर और त्रिदोषनाशक है। संस्कृत में इसका एक नाम "अमृतफल" भी है। यह अच्छा फल है।

निम्बू

निम्बू उष्ण, पाचक, दीपन, खट्टा, त्रिदोषनाशक, नेत्रों के लिए हितकारी, अतिशय रुचिकारी, कटु कषैला, हल्का होता है। कफ, वात, वमन खांसी, कण्ठरोग, क्षय, विषूचिका, आमवात, गुल्म और कृमियों को नष्ट करता है। पका हुआ निम्बू गुणों में श्रेष्ठ होता है, ये कागजी निम्बू के गुण हैं। ब्रह्मचारी के लिए निम्बू का सेवन हानिकारक है, चाहे वह कागजी ही क्यों न हो।

मीठा निम्बू या शर्बती निम्बू—मधुर, भारी, वात, पित्त, सर्पविष, रक्तविकार, शोथ, वमन, अरुचि तथा तृषा को नष्ट करता है। कफसम्बन्धी रोगों को दूर करता है। बलदायक और पुष्टिकारक है।

कागजी निम्बू और शर्बती निम्बू में केवल पत्तों का ही भेद है। कागजी के पत्ते छोटे और शर्बती के पत्ते कुछ बड़े होते हैं।

बिजौरा निम्बू—स्वादिष्ठ, खट्टा, दीपन, हल्का, रक्तपित्तनाशक, कण्ठ और जिह्वा को शुद्ध करता है। हृदय के लिए हितकारी ,श्वास, खांसी, अरुचि तथा तृषा को नष्ट करता है।

कागजी, शर्बती (मीठा निम्बू), जम्बीर (बिजौरा निम्बू), चकोतरा, नारङ्गी, सन्तरा, बिहारी आदि अनेक भेद निंबू के हैं।

इमली

कच्ची इमली अत्यन्त खट्टी, उष्ण, मलरोधक, वातनाशक, अग्निदीपक, रक्तपित्त, कफ और रक्त को दूषित करती है। अतः स्वास्थ्य एवं ब्रह्मचर्य के प्रेमी को इसका सर्वथा सेवन नहीं करना चाहिए। संस्कारविधि वेदारम्भ संस्कार में महर्षि दयानन्द जी ने ब्रह्मचारी के लिए "न अति खट्टा अमली आदि" लिखते हुए इमली खाने का निषेध किया है। दक्षिण भारत में इसके खाने का प्रचार बहुत है, वह हानिप्रद होने से सर्वथा त्याज्य है।

सिंघाड़ा

सिंघाड़ा जलीय फल है। यह शीतल, स्वादिष्ठ, भारी ग्राही, और, वीर्यवर्धक है, वात तथा कफ कारक है, रक्तविकार और दाह को नष्ट करता है।

कलिन्द (तरबूज)

तरबूज शीतलग्राही, पित्त, दृष्टि और वीर्य को नष्ट करता है। पकने पर उष्ण, खारी, पित्तकारक, वात और कफ को नष्ट करता है। इसका सेवन ब्रह्मचारी के लिए हानिकारक है।

पपीता (एण्ड खरबूजा)

पका हुआ पपीता, मधुर, रुचिकारक, भारी, मलरोवक, कफकारी, वीर्यवर्द्धक, वात और उन्माद रोगों को नष्ट करता है। पाचन प्रणाली को ठीक रखने में सहायक है। इसमें रोग के कीटाणुओं को छिन्न-भिन्न करने की शक्ति है।

खजूर

खजूर, गुरु, शीतल, हृदय के लिये हितकारी और तृप्ति कारक है। रस और पाक में मधुर, कफ कारक तथा रक्तपित्त को जीतने वाली है। बलवीर्य वर्द्धक, कोठे की वायु, ज्वर, अतीसार, कास, श्वास आदि को दूर करती है। यह अधिकतर पश्चिमीय देशों में होती है।

खरबूजा

खरबूजा—बलदायक, मूत्रकारक, कोठे को शुद्ध करने याला, भारी, स्निग्ध, शीतल, वीर्यवर्द्धक, अति स्वादिष्ठ, वात तथा पित्तनाशक है।

दाडिम (अनार)

अनार तीन प्रकार का होता है, मीठा, मीठा और खट्टा तथा केवल खट्टा। मीठा अनार—त्रिदोष नाशक, तृषा, दाह, ज्वर, हृदयरोग, कण्ठ और मुख रोगों को दूर करता है। तृप्ति कारक, वीर्यवर्धक, हल्का,

कुछ कषैला, मलरोधक, स्निग्ध, मेधाजनक और बलवर्धक है। श्रम, अरुचि और निर्बलता को दूर करता है।

मीठा और खट्टा अनार दीपन करने वाला, रुचिकारी, कुछ पित्त-कारक और हल्का होता है।

खट्टा अनार वात कफ नाशक, पित्तकारक, अग्निदीपक और हल्का होता है।

अनारदाना—रुचिकारक, हृदय को प्रिय, दाह और तृषा का शमन करता है। अनार के फूल नाक से रक्त आने को रोकते हैं और इसका बल्कल कृमिनाशक, मलरोधक और रक्तातिसार को दूर करता है।

नारीकेल (नारियल)

नारियल का जल स्निग्ध, स्वादिष्ठ, बलदायक, वीर्यवर्धक, रुचि-कारक, बस्तिशोधक, पित्त और पिपासा को नष्ट करता है।

साधारण नारियल-स्वादु, पाक में मधुर, भारी, दुर्जर (कठिनता से पचने वाला), मदकारक, पित्तनाशक, कृमिवर्द्धक, जठराग्नि को मन्द करता है और कामदेव के बल को बढ़ाता है अतः ब्रह्मचारी इसका सेवन न करे।

बादाम

बादाम चिकना, गरम, वीर्यवर्धक, भारी और वात नाशक है। बादाम की गिरी वीर्यवर्धक, बलदायक, कफकारक और वात पित्त नाशक है। रक्तपित्त के रोगी के लिये ठीक नहीं। बादाम की गिरी को सायं-काल भिगोकर प्रातःकाल दूध या जल के साथ घोटकर पीने से शरीर और मस्तिष्क की खुश्की तथा उष्णता दूर होती है, बल-वीर्य की वृद्धि होती है। बादाम का सेवन ब्रह्मचारी को इसी प्रकार करना चाहिए अन्यथा उष्ण होने से हानिकारक है।

———

शाक

आयुर्वेद शास्त्र के अनुसार पत्ते, फूल, फल, नाल, कन्द और संस्वेदज भेद से होने वाले छः प्रकार के शाक हैं। प्रायः सभी शाक विष्टम्भी कब्ज करने वाले तथा भारी होते हैं। रूखे, बहुत मलकारक, अपानवायु तथा मल को निकालने वाले होते हैं। पत्ते की अपेक्षा पुष्प, पुष्प की अपेक्षा फल, फल की अपेक्षा नाल, नाल की अपेक्षा कन्द और कन्द की अपेक्षा संस्वेदज शाक उत्तरोत्तर भारी होते हैं।

"शाकेषु सर्वेषु वसन्ति रोगाः" सर्व प्रकार के शाकों में रोग का निवास रहता है। इसी की पुष्टि चाणक्य ने भी की है—"शाकेन रोगा वर्धन्ते" शाक से रोग बढ़ते हैं। शाक का अधिक मात्रा में सेवन हड्डियों का भेदन, नेत्र ज्योति, बुद्धि, स्मरणशक्ति, वर्ण, रक्त और वीर्य का नाश करता है। और भी अनेक हानियाँ द्रव्य गुण जानने वाले विद्वान् बतलाते हैं।

शाकों में क्षार नमक का भाग अधिक होता है, और इनके अधिक सेवन से शरीर में क्षार नमक का भाग अधिक होने से स्वप्नदोष, प्रमेहादि रोगों की उत्पत्ति होती है। अधिक मात्रा में शाक नहीं खाना चाहिये। प्राकृतिक चिकित्सा वाले शाकों का सेवन अधिक बतलाते है किन्तु यह शास्त्र विरुद्ध है। जहाँ शाकों में गुण होते हैं वहाँ गुण विशेष भी होते हैं। अपनी प्रकृति आदि को विचार कर थोड़ी मात्रा में शाक-सब्जी का सेवन करना चाहिये। गुण-दोष विचार कर पदार्थों का सेवन करने से ही स्वास्थ्य रक्षा, बल, बुद्धि, आयु, तेज, कान्ति आदि की वृद्धि होती है। अतः जो शाक अधिक लाभदायक हैं और हानि कम करते हैं उन्हीं को चुनकर कुछ विस्तार से लिख रहा हूँ। जो निषिद्ध तथा हानिकारक शाक हैं उनकी सूची इस प्रकरण के पीछे लिख दी है। पाठक लाभ उठावें।

पत्र-शाक

चरणे का शाक

चरणे का शाक दुर्जर कब्ज करने वाला, कफ तथा वात के रोगों को बढ़ाने वाला, खट्टा और विष्टम्भकारक है, अतः गुणकारी नहीं होता। पित्तनाशक है तथा दाँतों की सूजन को दूर करता है।

मटर का शाक

मटर का शाक मलभेदक, हल्का, स्वादु, शीतल, कषैला, पुष्टिप्रद, वातकारक, कफ, और पित्तनाशक होता है। इसका सेवन स्वास्थ्य के लिये अच्छा है।

कसौंदी के पत्ते का शाक

कसौंदी के पत्तों का शाक रुचिकारक वीर्यवर्धक, खांसी, विष और रक्तविकारनाशक है, वात और कफ के रोगों को दूर करता है, पाचक तथा कण्ठशोधक है। उष्ण होने से सेवन करना चाहिये।

मेथी

मेथी के पत्तों का शाक बनाकर लोग खाते हैं, यह कषैली, चरपरी, उष्ण और रूक्ष होती है। वात और कफ के रोगियों को इसका औषध रूप में सेवन करने से लाभ होता है। स्वास्थ्य और ब्रह्मचर्य-प्रेमी को दैनिक भोजन में इसका सेवन नहीं करना चाहिये।

सरसों का शाक

सरसों का शाक स्वभाव से ही अहितकर=हानिकारक होता है। इस में मलभाग अधिक होता है, पोषक-तत्त्व नाम मात्र को ही होता है। निघण्टुकार ने "शाकेषु निन्दितम्" सब शाकों से निन्दित बतलाते हुए लिखा है कि सरसों का शाक चरपरा, मल-मूत्र को अत्यधिक बढ़ाने वाला, भारी, पाक में खट्टा, जलन करने वाला, गरम, रूखा और

त्रिदोषकारक है। यह स्वादु होते हुए भी हानिकारक है, अतः इसका सेवन सर्वथा नहीं करना चाहिये।

चौलाई का शाक

चौलाई का शाक हल्का, मधुर, शीतल, रूक्ष, रुचिकारक अग्निदीपक, पित्त, कफ तथा रक्त दोषों को हरने वाला, मल-मूत्र को निकालने वाला, सब प्रकार के विषों का नाश और पेट के सभी विकारों को दूर करता है। डाक्टरों के मतानुसार इसमें विटामिन सी० बहुत होती है।

चौलाई प्रायः सभी प्रान्तों में तथा सभी ऋतुओं में पाई जाती है। आर्द्रभूमि में तथा वर्षा और शीतकाल में चौलाई अधिक होती है। यह समूह के साथ पाई जाती है, इसका क्षुप एक बालिस्त से लेकर डेढ़ हाथ तक देखने में आता है। इसका क्षुप अनेक शाखाओं वाला झाड़ी के समान किन्तु कोमल होता है। इसके फल बहुत छोटे छोटे गुच्छाकार तथा बीज अत्यन्त छोटा और काले रंग का होता है।

चौलाई का एक भेद और है जिसे पानीध तण्डुलीय तथा कञ्चर भी कहते हैं। यह जलीय प्रदेश में अधिक पाया जाता है। यह हल्की, कड़वी, रक्तपित्तनाशक और वात रोगों को नष्ट करती है।

चौलाई की जड़ गरम, कफनाशक, स्त्रियों के रज को रोकने वाली तथा रक्तपित्त और प्रदर रोग को नष्ट करती है। इसी प्रकार अन्य अनेक रोगों में चौलाई का उपयोग किया जाता है।

पालक

पालक का शाक बादी करने वाला, शीतल, कफकारक, भेदक, भारी, विष्टम्भजनक तथा मद (नशा) श्वास रक्तपित्त और विषनाशक है। रुधिर के विकारों को शान्त करता है। उदर के सभी रोगों को दूर करता है। डाक्टरों के मतानुसार पालक में चूना, लोहा, आयोडीन, क्लोरिनवा गन्धकादि नमक आवश्यकता से अधिक मिलते हैं। इसमें जीवनीयतत्त्व (विटामिन सी०) बहुत मात्रा में विद्यमान हैं। पालक

सेवन भोजन में प्रतिदिन किया जा सकता है। सब ऋतुओं तथा सब स्थानों में होता है।

पोदीना

पोदीना रोचक, मधुर, गुरु, हृदय के लिए लाभप्रद और सुखदायक है। कफ, कास, मद, अग्निमान्द्य, विषूचिका, संग्रहणी, अतीसार, जीर्ण ज्वर और कृमिनाशक है। इसके सेवन से वात और कफ के दोष दूर होते हैं, रक्त को खूब शुद्ध करता है। जठराग्नि को तीव्र करता है। हैजे के दिनों में सेवन करने से हैजा नहीं होता। प्यास को बुझाता है। आँखों के लिए हितकारी है। घर में कोई शाक बनाया जाये, इसके पत्ते भी डाल लेने चाहियें। इसमें विटामिन ए० पर्याप्त मात्रा में मानते हैं।

बथुवा

बथुआ क्षुद्र और बृहत, रक्त तथा हरित पत्र होने से दो प्रकार का होता है। बथुवे का क्षुप (पौदा) एक हाथ से लेकर चार हाथ तक ऊँचा होता है। छोटे बथुवे के पत्ते मोटे, चिकने तथा हरे रंग के होते हैं और बड़े बथुवे के पत्ते बड़े और पुष्ट होने पर लाल रंग के हो जाते हैं। बथुवा अधिकतर जौ और गेहूं के खेतों में उत्पन्न होता है। यह शीतकाल तथा गर्मी के आरम्भ काल में भारत के सभी प्रान्तों में पाया जाता है, इसके फूल छोटे-छोटे तथा हरे होते हैं, उन में काले रंग के छोटे-छोटे बीज निकलते हैं। बथुवे में एक प्रकार का क्षार होता है। डाक्टर इसमें "सी" विटामिन बहुत मात्रा में मानते हैं।

बथुवे के गुण

वास्तुकं तु मधुरं सुशीतलं क्षारमीषदमलं त्रिदोषजित्।
रोचनं ज्वरहरं महार्शसां नाशनं च मलमूत्रशुद्धिकृत्॥
(राजनिघण्टुः)

वास्तूकद्वितीयं स्वादु क्षारं पाके कटूदितम्।
दीपनं पाचनं रुच्यं लघु शुक्रबलप्रदम्।

सरं प्लीहास्रपित्तार्शः कृमिदोषत्रयापहम् ॥

(भावप्रकाशः)

दोनों ही प्रकार का बथुआ स्वाद में मधुर, खारी, पाक में चरपरा थोड़ा अम्ल और सुशीतल होता है। यह रुचिवर्द्धक, हल्का, दीपन पाचन करने वाला, बल वीर्य को बढ़ाने वाला, प्लीहा (तिल्ली) रक्त पित्त, ज्वर सब प्रकार का अर्श (बवासीर) और कृमि रोगों का नाश करने वाला है। तीनों दोषों को जीतने वाला और रेचक अर्थात् मल-मूत्र की शुद्धि करने वाला है। इससे पेट की शुद्धि खूब होती है। एक रोगी को मलबन्ध (बन्धा) हो गया, सब औषधियां निष्फल हो गईं। उस रोगी ने किसी के कहने से बथुवा उबाल छानकर पर्याप्त मात्रा में बथुवे का जल पी लिया, इसी से उसका बन्धा टूट गया, लोगों को बड़ा आश्चर्य हुआ और रोगी बच गया।

वास्तूकोऽग्निकरो रसे च मधुरः पित्तापहश्चक्षुषः,
स्निग्धो वातविनाशनः कृमिहरः पित्तादिदोषापहः।
वर्चोमूत्रविशोधनः प्रथमतः श्लेष्मामयानां तथा,
शाकानामपि चोत्तमो लघुतरः पथ्यः सदा प्राणिनाम् ॥

(शालिग्राम निघण्टुः)

बथुवा जठराग्नि को दीप्त करने वाला, रस में मीठा, पित्तनाशक, नेत्रों के लिए हितकारी, स्निग्ध, कृमिनाशक, पित्तादि दोषों को नष्ट करने वाला, मल-मूत्र शोधक शाकों में उत्तम और हल्का तथा कफ के रोग वाले मनुष्यों के लिये सदैव हितकारी है।

चरक शास्त्र ने बथुवे में "भिन्नवर्चस्तु वास्तुकम्" मल को भेदन करने वाला गुण अन्य शाकों की अपेक्षा विशेष माना है।

लाल बथुवा (चिल्ली)

सक्षारः कृमिजित् त्रिदोषशमनः सन्दीपनः पाचनश्चक्षुष्यो
मधुरः सरो रुचिकरो विष्टम्भशूलापहः।

वर्चोमूत्रविशोधनः स्वरकरः स्निग्धो विपाके गुरुर्वास्तूकः
सकलामयप्रशमनश्चिल्ली तदेवोत्तमा ॥ (सुषेण)

लाल बथुआ, क्षारयुक्त, कृमिनाशक, त्रिदोषशमन करने वाला, दीपन, पाचन, नेत्रों के लिये हितकारी, सारक, रुचिकारक, विष्टम्भ (कब्ज) और शूल नाशक, मलमूत्रशोधक, स्वर को उत्तम करने वाला, स्निग्ध, पाक में भारी, सब प्रकार के रोगों को शान्त करने वाला है और यह सब से उत्तम है।

चिल्ली वास्तुकतुल्या च सक्षारा श्लेष्मपित्तनुत् ।
प्रमेहमूत्रकृच्छ्रघ्नी पथ्या च रुचिकारिणी ॥
(राजनिघण्टु)

चिल्ली (लाल बथुवा) बथुवे के समान गुण वाली है। क्षारयुक्त, कफ, पित्त, प्रमेह नाशक, मूत्रकृच्छ्र निवारक, पथ्य और रुचिकारक है।

वास्तुकं मधुरं हृद्यं वातपित्तार्शसां हितम् ॥ (ह० स०)

बथुवा मधुर, हृदय को हितकारी तथा वातपित्त और बवासीर रोग वालों के लिए हितकारी है।

पुष्पों के शाक

केले के फूलों का शाक

स्निग्ध, मधुर, कसैला, भारी, शीतल, वातपित्त, रक्तपित्त तथा क्षय को नष्ट करता है। थोड़ी मात्रा में सेवन करना चाहिये।

सोंजने के फूलों का शाक

चरपरा, तीक्ष्ण, गरम होता है, ब्रह्मचर्य प्रेमियों को नहीं खाना चाहिए। किन्तु सूजन, कृमि, वात, कफ, विद्रधि, तिल्ली तथा गुल्म रोगों को सेवन करने से दूर करता है। अतः उपरोक्त रोगग्रस्त रोगियों को सेवन करना चाहिये।

सेमल का फूल

रस पाक में मधुर कसैला शीतल भारी ग्राही वातकारक और कफ तथा पित्त को नष्ट करने वाला है। देवियों के दु:साध्य प्रदर को इसके फूलों का शाक घृत में पकाकर सैंधा नमक डालकर खिलाने से नष्ट करता है।

फलों का शाक

कुष्माण्ड

मिठाई के पेठे का नाम है कुष्माण्ड। इसका शाक पुष्टिकारक वीर्य-वर्द्धक, भारी, पित्त, तथा रक्तविकार, रक्तपित्त तथा वात रोगों का नाश करता है। कच्चा पेठा शीतल और पित्त नाशक है। मध्यम पेठा कफकारक है। पका हुआ पेठा कुछ शीतल, स्वादु, खारी, अग्निदीपक, हल्का वस्ति को शुद्ध करने वाला, तथा मानसिक रोग अपस्मार [मृगी] उन्मादादि [पागलपन] को दूर करता है। सब दोषों को जीतने वाला होता है। ये गुण मिठाई के पेठे के हैं. इसका कुष्माण्डावलेह बनता है, जो असाध्य नकसीर आदि रक्तपित्त के रोगों की रामबाण औषध है। जो बाजार में पेठा बिकता है जिसका शाक प्रायः सभी लोग बाहुल्य से खाते हैं इसमें उपरोक्त गुण नहीं हैं। कुछ विद्वान् तो उसको तामसिक तथा ब्रह्मचर्य के लिये हानिकारक मानते हैं।

पेठा

बाजारी पेठे में मल भाग अधिक होता है, शरीर का पोषक तत्त्व सार भाग नाम मात्र ही होता है। वायु रोगों को बढ़ाता है। पेट में अनाह अफारा आदि रोग पैदा करता है। जठराग्नि को मन्द करता है। अतः बाजारी शाक वाले पेठे का सेवन नहीं करना चाहिए। मिठाई वाले पेठे का शाकादि बनाकर सेवन करना लाभदायक है। किन्तु

लोग इसे केवल मिठाई बनाने के लिये समझते हैं शाक बनाकर नहीं खाते यह भारी भूल है।

महाकोशातकी (घीया तोरई)

चिकनी वायु के रोगों को तथा रक्तपित्त को शान्त करती है। इसका शाक अच्छा होता है।

राजकोशातकी [तोरई]

शीतल, मधुर, कफ तथा वातकारक, पित्तनाशक, अग्निदीपक, और श्वास, ज्वर, कास, और कृमि के रोगों को नष्ट करती है। यह हलकी होने से सभी प्रकार के रोगियों के लिये पथ्य है।

पटोल [परवल के फल]

यह फलों के शाकों में सर्वोत्तम है। यह गरम, हल्का, पाचक, स्निग्ध, अग्निदीपक पाचक और हृदय के लिए हितकारी है। खांसी, कृमि, रक्तविकार तथा त्रिदोष सम्बन्धी रोगों का विनाशक है। यह वीर्यवर्धक ब्रह्मचारियों तथा स्वास्थ्य प्रेमियों के लिए बहुत ही अच्छा शाक है। बङ्गाल, बिहार आदि प्रदेशों में अधिक होता है।

डिण्डिश [टिण्डा]

टिण्डा वा ढेंढस रुचिकारक, मलभेदक, [दस्तावर] बहुत शीतल, वातकारक, रूक्ष, मूत्रवर्धक है, कफ तथा पथरी रोग को नष्ट करता है। सामान्यतया यह अच्छा शाक माना जाता है।

अलाबू (घीया)

हृदय को प्रिय, पित्त तथा कफनाशक, भारी, वीर्यवर्धक, रुचिकारक और धातु को पुष्ट करने वाली होती है।

कर्कटी (ककड़ी)

कच्ची ककड़ी शीतल, रूखी, ग्राही, मधुर, भारी, रुचिकारक और पित्त को नष्ट करती है। पक्की ककड़ी तृषा [प्यास] अग्नि और पित्तकारक है।

शिम्बी (सेम)

रस तथा पाक में मीठी, शीतल, भारी, वलदायक, दाहकारक, कफ-कारक, वात और पित्त को नष्ट करती है।

वैंगन—अत्यन्त गर्म होता है। इसका सेवन अर्श, ववासीर, प्रमेह, स्वप्नदोष आदि रोगों को उत्पन्न करता है। ब्रह्मचारी तथा स्वास्थ्य प्रेमी को इस का भूलकर भी सेवन नहीं करना चाहिए। केवल एक वार तथा थोड़ी मात्रा में खाने से ही वीर्यनाश करता है।

शोभाञ्जनफल (सोंजने की फली)

स्वादु, कसैली, कफ पित्त को नष्ट करती है। शूल, कोढ़, क्षय, श्वास तथा गुल्म नाशक और परम अग्निदीप्त करने वाली होती है। मनुस्मृति में शिग्रव-सोञ्जने के फलादि खाने का निषेध किया है।

कन्द-शाक

आलू

आलू का शाक बहुत अधिक मात्रा में तथा सभी देशों में खाया जाता है। परन्तु इसके गुण दोषों के विषय में बड़ा भ्रम है। चरक-शास्त्र में आलू के विषय में लिखा है "आलूकः कन्दानां प्रकृत्यैव अहिततमानामाहारविकाराणाम्" सब कन्दों में आलू स्वभाव से ही सबसे अधिक अहितकर अर्थात् हानिकारक है। जिस आलू की प्रशंसा करता करता आधुनिक डाक्टर तथा शिक्षित समुदाय नहीं थकता वही हमारे ऋषियों की दृष्टि में कन्दों में सबसे अधिक हानिकारक शाक है। प्राचीन काल में पर्वतों पर जङ्गली रूप में यह उत्पन्न होता था, इस की खेती कोई नहीं करता था। न ही शाक रूप में इसका व्यवहार होता था। लग-भग दो सहस्र वर्ष हो गये तव से यह खेतों में वोया जाने लगा। और आज तो यह मानव समाज के भोजन का महत्वपूर्ण अङ्ग बन गया है।

स्कूल, कालिज, गुरुकुल, पाठशाला, पुलिस, सेना, होटल, होस्टल (छात्रावास) सबकी पाकशालाओं में एकमात्र इसका शासन दिखाई देता है। इसके स्वादु और स्थायी (टिकाऊ) होने के कारण यह हमारा प्रिय भोज्य पदार्थ बन गया है। इसके दोषों का किसी को भी ध्यान नहीं। आंखों पर पट्टी बांधकर इसके गुण दोष विचारे बिना सारा मानव-समाज इसको खाने पर तुला हुआ है। संक्षेप में इसके विषय में लिख रहा हूँ, विस्तार-पूर्वक कभी स्वतन्त्र लेख ही लिखूँगा। आयुर्वेद शास्त्रों के मतानुसार—

आलुकं शीतलं सर्वं विष्टम्भि मधुरं गुरु।
सृष्टमूलमलं रूक्षं दुर्जरं रक्तपित्तनुत्॥

आलू शीतल, मधुर, रूक्ष, शुष्क, पचने में भारी व दुर्जर आलस्य-कारक, विष्टम्भी मल को रोककर तथा कठिन कर के कब्ज करने वाल मलमूत्र को बढ़ाने वाला तथा कामोद्दीपक अर्थात् काम वासना को बढ़ाने वाला है। यूनानी मत में भी वह प्रथम श्रेणी का शीतल त ा रूक्ष है। पक्काशय (मेदे) को बिगाड़ता तथा अनाह (अफारा) करता है। कुछ के मत में खून को खराब करता तथा खुजली उत्पन्न करता है। वायु और कफ को कुपित करता है। यह इतना रूक्ष (खुश्की) करने वाला होता है कि यदि इससे द्विगुण मात्रा में घी इस के साथ खाया जाये तब भी यह खुश्की ही करता है। खुश्की के कारण मलबन्ध (कब्ज) करता है तथा इससे स्वप्नदोष प्रायः होने लगता है। अतः इसके खाने वाले गर्म समझने लगते हैं। वैसे यह शीतल और शुष्क है। दो चार दिन लगातार खाने से स्वप्नदोष वीर्य-नाश आदि कुपरिणाम प्रत्यक्ष दीखने लगते हैं। इसके सेवन से जुकाम खांसी तथा श्वास तक हो जाता है। इसके रूक्ष होने से मस्तिष्क में रूक्षता बढ़ाता है, जुकाम स्थायी रहने लगता है। आँखों को बहुत हानि पहुँचती है। स्वास्थ्य प्रेमी व्यक्ति तथा ब्रह्मचारी को तो भूलकर भी सेवन नहीं करना चाहिये। सभी प्रकार के आलुओं में ये दोष पाये जाते हैं। निरन्तर

आलू के सेवन से गठिया रोग के दर्शन होते हैं। यह मूत्रनलिका में जलन उत्पन्न करता है अतः सूजाक, आतशक और मूत्रकृच्छ् के रोग इसके सेवन से होते हैं। ग्रीष्मकाल में आलू के सेवन से बहुत अधिक हानि होती है। जिनको कोष्ठबद्धता कब्ज का रोग है उनको आलू अधिक हानि करता है। पित्त, वात तथा रक्त सम्बन्धी रोगों में आलू के सेवन से उल्टे परिणाम देखने में आते हैं। यदि इसके रूक्षता के दोष को दबाने के लिये घृत का सेवन इसके साथ अधिक किया जावे तो इसके सवन से चर्बी अधिक बढ़ती है और पेट भी अधिक बड़ा हो जाता है। इसके गुण तो नाममात्र ही इस प्रकार के हैं, जैसे विषाक्त दूध, है तो दूध किन्तु विष मिला हुआ है। अतः इसका सेवन भोजन के रूप में सर्वथा नहीं करना चाहिये।

मूली

मूली दो प्रकार की होती है। एक छोटी, संस्कृत में इसे लघुमूलक कहते हैं। यह चर्परी, गरम, रुचिकारक, हल्की पाचक, त्रिदोषनाशक, स्वर को उत्तम करने वाली, ज्वर, श्वास, नासिकारोग, कण्ठरोग तथा नेत्र रोग नाशक है। दूसरी बड़ी मूली, रूक्ष गरम भारी और त्रिदोष को करने वाली है। यदि घृत आदि में पकाकर खाई जावे तो त्रिदोष नाशक है। मूली अन्य भोजनों को पचाती है किन्तु स्वयं कब्ज करती है। बवासीर के रोगी के लिये मूली का शाक अमृत के समान लाभदायक है। यकृत तथा तिल्ली के रोगी के लिये भी लाभदायक है।

मूली के पत्तों का शाक पाचक हल्का रुचिकारक और गरम है। घृत से भुना हुआ त्रिदोषनाशक और विना भुना हुआ कफ तथा पित्त कारक है।

गाजर

गाजर तीक्ष्ण,, मधुर, तिक्त, गरम, अग्नि, दीपन करने वाली, हलकी, ग्राही और रक्तपित्त, बवासीर, संग्रहणी, कफ तथा वातसम्बन्धी रोगों का

नाश करती है। काली गाजर सबसे अच्छी होती है। इसमें पर्याप्त मात्रा में लोह होता है अतः जिगर को शक्ति देती है तथा जिगर सम्बन्धी सभी रोगों को दूर करती है। खून को खूब बढ़ाती है। निर्धनों का तो यह सेब कहलाती है। इसे खाने वाले शीतकाल में लाल हो जाते हैं। वैसे राजसिक है अतः रजोगुण की वृद्धि अवश्य ही करती है। डाक्टरों के मतानुसार इसमें लगभग सारे विटामिन मिलते हैं। यह कच्ची खाने पर भी अच्छा लाभ करती है। यह चमड़े को सुन्दर बनाती तथा रक्त को शुद्ध करती है। स्वास्थ्य के लिये इसका शाक अच्छा होता है।

गोभी

गोभी का शाक बहुत खाया जाता है। इसके दोषों से लोग परिचित नहीं हैं। यह फूल गोभी गांठ गोभी और पत्र गोभी के भेद से तीन प्रकार की होती है। फूल गोभी तथा गांठ गोभी ये दोनों स्वादिष्ठ मधुर शीतल बड़ी देर से पचने वाली तथा वायु के रोगों को उत्पन्न करती हैं। जठराग्नि को निर्बल करती हैं। पेट के सभी रोगों को उत्पन्न करती हैं। अजीर्ण तथा (कब्ज) करना इनका सर्वप्रथम कार्य है। अतः ब्रह्मचारी तथा स्वास्थ्य प्रेमी व्यक्ति को इनका शाक नहीं खाना चाहिये।

पत्र गोभी भी भारी तथा शीतल है और वायु करती है। मलबन्ध (कब्ज) को दूर करतो है। इसमें यही गुण है कि यह पेट की शुद्धि कर देती है। यदि किसी को गोभी खानी हो तो पत्रगोभी ही खानी चाहिये। कुछ लोग इसे अच्छी सब्जी शाक मानते हैं। डाक्टरों के मतानुसार इस में ए० बी० सी० डी० ई० विटामिन पाये जाते हैं।

गृञ्जन (शलगम)

गृञ्जन शब्द हमारे शास्त्रों में तीन अर्थों में प्रयुक्त हुआ है—१ गाजर, २ शलगम और ३ लहशुन। किन्तु इसका मुख्यतया गृञ्जन का प्रयोग शलगम अर्थ में ही हुआ है, इसके नाम और गुणों को

देखकर यही सिद्ध होता। जो लोग गृंजन का मुख्यार्थ गाजर करते हैं यह उनकी भ्रान्ति है। महर्षि मनु ने मनुस्मृति के पांचवें अध्याय में "लशुनं गृंजनं चैव पलाण्डु कवकानि च" कहते हुए लहशुन, शलगम प्याज आदि दुर्गन्धयुक्त पदार्थों को ही अभक्ष्य बतलाया है गाजर को नहीं।

राजनिघण्टु में श्री नरहरि ने गृंजन के पर्यायवाची शब्द ये लिखे हैं—

गृंजनं शिखिमूलं च यवनेष्टं च वर्तुलम्।
ग्रन्थिमूलं शिखाकन्दं डिण्डीरमोदकम् ॥५५॥

(राजनिघण्टौ चतुर्थो वर्गः)

यहां पर दिये गये सभी नामों से गृंजन का अर्थ शलगम प्रकट हो रहा है—शिखिमूल और शिखाकन्द उसे कहते हैं जिसकी मूल में शिखा हो और जो शिखावाला कन्द हो। इसी प्रकार वर्तुल=गोल भी शल भी शलगम ही होती है गाजर नहीं। यवनेष्ट=मुसलमानों की प्रिय भी शलगम ही है क्योंकि वे अधिकतर लहशुन, प्याज, शलगम आदि दुर्गन्धित पदार्थों को अधिक पसन्द करते हैं। डिण्डीरमोदक नाम से भी लड्डू जैसी आकृति प्रतीत होती है। जो कि शलगम की ही होती है। इसके गुण—

गृंजनं कटुकोष्णं च कफवातरुजापहम्।
रुच्यं च दीपनं हृद्यं दुर्गन्धं गुल्मनाशनम् ॥५६॥

(राजनिघण्टौ चतुर्थो वर्गः)

गृंजन—कटु, उष्ण, कफ तथा वात के रोगों को नष्ट करती है, रुचिकारी, दीपन, हृदय के लिये हितकारी दुर्गन्धयुक्त और गुल्म नाशक है। इसमें दुर्गन्वयुक्त बतलाने से स्पष्ट ही हो गया कि यह शलगम ही है क्योंकि शलगम में दुर्गन्ध आती है तथा गाजर में नहीं आती। यदि लहशुन और प्याज अर्थ किया जाये तो यह

भी नहीं हो सकता, क्योंकि मनु जी ने जहाँ गृंजन का निषेध किया है वहाँ पर साथ साथ पलाण्डु और लशुन का भी ग्रहण किया है।

शब्दकल्पद्रुम ने तो सर्वथा ही भ्रम दूर कर दिया है—"गृंजनम्-क्ली०। मूलविशेष:। शलगम इति ख्यात:।" गृंजन को लौकिक भाषा में शलगम नाम से प्रसिद्ध है, ऐसा लिखा है।

"वैजयन्ती कोषकार ने गृंजन की पलाण्डु की दश जातियों में गणना की है।

फरुण्डश्च पलाण्डुश्च लक्षार्कश्च परारिका।
गृंजनो यवनेष्टश्च पलाण्डोर्दशजातय: ॥२०७॥
(भूमिकाण्डे वनाध्याय:)

वास्तव में यह पलाण्डु=प्याज की ही जाति विशेष है, इसका आकार सर्वथा प्याज से मिलता जुलता ही है और इसमें भी प्याज की भान्ति दुर्गन्ध आती है। अत: गृंजन का मुख्यतया अर्थ शलगम ही है, और इसका सेवन करना हानिकारक है तथा मनुस्मृति के अनुसार यह अभक्ष्य पदार्थ है।

रक्तालु (शकरकन्दी)

शकरकन्दी शीतल, मधुर, भारी, कफ तथा वात कुपित करने वाली, वीर्यवर्धक, पित्तनाशक, तृप्तिकारक, दाद, शोथ, प्रमेह, व्रण, मूत्रकृच्छ्र आदि रोगों का नाश करने वाली, बलकारक, पुष्टिजनक, स्वादुकन्द शाक है। इसका सेवन ब्रह्मचारी को लाभदायक है। अपनी पाचनशक्ति को ध्यान में रखते हुए यथेच्छ सेवन करना चाहिये।

जिमिकन्द

अग्निदीपक, रूखा, कसैला चरपरा, विष्टम्भी, विशद रुचिकारक, हल्का तथा कफ और अर्श (बवासीर) रोग का नाशक है। तिल्ली तथा गुल्म को इसका शाक नष्ट करता है। अनेक रोगों को यह नष्ट करता है अत: "सर्वेषां कन्दशाकानां सूरण: श्रेष्ठ उच्यते" सम्पूर्ण शाकों में

जिमिकन्द श्रेष्ठ समझा जाता है। किन्तु यह उष्ण तथा रूक्ष होने से ब्रह्मचर्य को नष्ट करता है अतः ब्रह्मचारी तथा सामान्य मनुष्यों को शाक के रूप में इसे नहीं खाना चाहिये। इसके अतिरिक्त दाद, रक्तपित्त, कोढ तथा खुजली आदि रोगों को उत्पन्न करता है।

कदलीकन्द

केले का कन्द शीतल बलदायक, केशों को उत्तम बनाने वाला, अम्लपित्त को नष्ट करने वाला, अग्निकारक मधुर और अग्निवर्धक होता है।

मानकन्द

• मानकन्द शीतल, हल्का सूजन तथा रक्तपित्त नाशक है।

बिदारीकन्द

बिदारीकन्द-पित्तकारक, उष्ण, बलदायक, चरपरा कड़वा, रसायन, आयु, वीर्य तथा अग्निवर्धक है। प्रमेह कुष्ट कफ तथा वात विनाशक है।

कसेरू दोनों प्रकार के शीतल, मधुर भारी वीर्यवर्धक, कफवर्धक, पित्त रक्त के रोगों दाह तथा रोगों को नष्ट करता है।

रतालू

अरुई मलस्तम्भक, भारी जड़ स्निग्ध है अतः कब्ज करती है। और कठिनता से पचती है। पच जाये तो बलकारक है। घृत में पका कर खाने से कफनाशक तथा रुचिप्रद है। तीव्र जठराग्नि वालों को थोड़ी मात्रा ही में खाना चाहिये। कब्ज होने पर लाभ के स्थान पर हानि ही करता है।

कमलकन्द

इसे शालुक भी कहते हैं। यह वीर्यवर्धक भारी, दुर्जर पाक में मधुर, दुग्धवर्धक, वात तथा कफ कारक, ग्राही, रूक्ष, पित्त दाह तथा रक्तविकार को दूर करने वाला है। भारी होने से थोड़ी मात्रा में सेवन करना चाहिये।

मूंगफली

मूँगफली अत्यन्त गर्म कन्द है इस का सेवन ब्रह्मचारी तथा गृहस्थी सभी के लिए हानिकारक है। यह सम्बन्धि प्रमेह स्वप्नदोषादि रोगों को उत्पन्न करती है। इसमें तैल अधिक है अत: हानिकारक है। तैल तथा तैल युक्त पदार्थ केवल बादाम को श्रेष्ठ है, शेष सभी हानिकारक है।

संस्वेदज शाक

संस्वेदज, भूमिच्छत्र, शिलन्ध्रि, कवक, सांप की छत्री, छत्तीना आदि इनके नाम हैं। ये वर्षा-ऋतु में पृथ्वी, गोबर, लकड़ी, और वृक्षादि में उत्पन्न होते हैं। ये सभी शाक शीतल, दोषयुक्त, पिच्छिल, भारी और वमन, अतिसार, ज्वर, तथा कफ सम्बन्धी रोगों को उत्पन्न करते हैं। अत: इनको खाना मूर्खता है और रोगों को निमन्त्रण देना है। इन निन्दित शाकों का सेवन भूल कर भी नहीं करना चाहिये। हमारे पश्चिमी पंजाब (पाकिस्तान) से आये हुये भाई इनका सेवन करते हैं। उन्हें इनका परित्याग कर देना चाहिये। मनु जी ने भी इनका निषेध अभक्ष्य कह कर किया है।

निषिद्ध शाक

कन्द—कच्चा, बिना ऋतु में उत्पन्न हुवा, पुराना, रोगयुक्त, दीमकादि कीड़ों का खाया हुवा, अग्नि आदि से दूषित, अत्यन्त जीर्ण, रूखा, घृत आदि में न पकाया हुवा, निकृष्ट भूमि में उत्पन्न हुवा, कठिन, अत्यन्त कोमल, अत्यन्त शीतल, सर्प आदि से दूषित अति सूखा हुवा कन्द नहीं खाना चाहिये। किसी-किसी का तो यहाँ तक मत है कि मूली को छोड़कर कोई भी कन्द नहीं खाना चाहिये। 'नाश्नीयान्मूलकं विना किन्तु यह मत सर्वमान्य नहीं। मनु जी ने निम्न शाकों को अभक्ष्य लिखा है।

लशुन, शलगम, प्याज, और सर्प की छत्री को अभक्ष्य बतलाया है। इसी प्रकार जो अन्न शाकादि मल, मूत्र, अथवा, दुर्गन्ध युक्त खाद से उत्पन्न होते हैं वे कभी भी नहीं खाने चाहियें। ये पदार्थ ब्रह्मचर्य, स्वास्थ्य और बुद्धि आदि के नाश करने वाले हैं अतः अपना कल्याण चाहने वाले विचारशील व्यक्तियों को इनका सेवन भूल कर भी नहीं करना चाहिये क्योंकि यह तामसिक पदार्थ हैं।

अन्न

"अन्नं वै प्राणिनां प्राणः" के अनुसार अन्न ही प्राणाधार है। क्षुधा की शान्ति और जीवन निर्वाह के लिये अन्न का सवप्रथम स्थान है। नये और पुराने अन्न के भी गुण भिन्न-भिन्न होते हैं। नया अन्न अभिष्यन्दी (नेत्र रोग = आंखों का दुखना आदि) और भारी होता है। एक वर्ष तक अन्न नया रहता है, दूसरे वर्ष तक पुराना और गुणकारी होता है। इसके पश्चात् अन्न नीरस और गुणहीन होता जाता है। पुराने होने पर सभी अन्न भारीपन को छोड़कर हल्के हो जाते हैं। जो अन्न अधिक गुणकारी और सात्विक हैं वे ही स्वास्थ्य और ब्रह्मचर्य की दृष्टि से उत्तम हैं।

गेहूँ

गेहूँ मधुर, स्निग्ध, भारी, अतिशीतल, वात-पित्त नाशक, कफकारक बलदायक, वीर्य तथा आयु को बढ़ाने वाला, सन्धानकारक, शरीर को स्थिर रखनेवाला, वर्ण को सुन्दर करने वाला, रुचिकारक, किञ्चित रेचक और सर्वोत्तम भोजन है। डाक्टर लोग इसमें ए. बी. जी. विटामिन और ७५॥ प्रतिशत शक्कर तथा ११ प्रतिशत प्रोटीन मानते हैं।

जौ

जौ शीतल, मधुर, कषैला, बलदायक, मेधा, अग्नि और वीर्य को बढ़ाने वाला, स्वर तथा वर्णकारी, अत्यन्त वायु कारक, पीनस, श्वास,

कास, प्रमेह, तृषा, मंद कण्ठ तथा त्वचा के रोगों का नाशक है । रक्त-और पित्त को शान्त करता है ।

चावल

चावल—शीतल मधुर, वीर्यवर्द्धक, बलदायक, पित्तनाशक, कफ-वर्द्धक, मेधा के लिये हितकारी, और अल्पमल लाने वाले हैं ।

सांठी चावल, मधुर, शीतल, हल्का, मल को बाधने वाला, स्निग्ध, कोमल, त्रिदोषनाशक और ज्वर को नष्ट करता है । यह सबसे उत्तम होता है ।

चणा

चणा शीतल, मधुर कषैला, रूक्ष, विष्टम्भी, कुष्ठ, कफ, पित्त और वीर्य नाशक है । तथा घी के साथ खाने से त्रिदोष नाशक होता है ।

नवीन मतानुसार चणे को बलदायक और वाजीकरण माना जाता है, किन्तु प्राचीन आयुर्वेद के मतानुसार चणा पुंस्त्वनाशक अर्थात वीर्य को नष्ट करने वाला है । महर्षि धन्वन्तरि ने सुश्रुत में—

"चणकाः पुंस्त्वनाशनाः" (सूत्रस्थान अ० ४६ श्लोक ३२) लिखते हुए चणे को पुंस्त्वनाशक बतलाया है और इसी प्रकार धन्वन्तरि जी महाराज ने अपने निघण्टु में भी (कफास्रपित्तपुंस्त्वघ्नाश्चणका वातला हिमाः) चणे को पुंस्त्वशक्ति नाशक लिखा है । अतः ब्रह्मचारी के लिये चणे का सेवन हानिप्रद है ।

जुआर

जुआर—भारी, मलरोधक, शीतल, रूक्ष, रुचिकारक, वीर्यवर्द्धक, स्वादिष्ठ, तृषा, वात, पित्त, नाशक और रुधिर के विकारों को शान्त करती है । राजनिघण्टु में जुआर (पशूनामबलप्रदम्) पशुओं के लिये बलकारक नहीं होती; ऐसा लिखा है ।

बाजरा

बाजरा उष्ण, रूक्ष, बल कान्तिदायक अग्निदीपक, वात, कफ नाशक पित्त, प्रकोपक, दुर्जर = कठिनता से पचने वाला, वीर्यनाशक और स्त्रियों की काम शक्ति को बढ़ाता है। दूध, दही, आदि के साथ सेवन करने से इसकी उष्णता कुछ न्यून हो जाती है।

मूंग

मूंग शीतल, मधुर, हल्का अग्निदीपक, स्वादु, कफ पित्त के विकारों को शान्त करने वाला, कुछ वात कारक, नेत्रों के लिये हितकारी, किंचित् रेचक और पथ्यतम है।

मूंग, मोठ, मसूर अरहर, उड़द, चणा आदि की दाल बनाकर खाई जाती है, किन्तु इन सब में मूंग की ही दाल उत्तम है। धन्वन्तरीयनिघण्टु में मूँग को "सूपश्रेष्ठाः" अर्थात् दाल के लिये सर्वोत्तम बतलाया है। सुश्रुत के मतानुसार मूंग और मसूर को छोड़कर शेष सभी आध्मान = अफारा करने वाले हैं। (ऋते मुद्गमसूराभ्यामन्ये त्वाध्मानकारकाः)।

मोठ (वनमुद्गाः)

मोठ के गुण भी मूँग के समान ही होते हैं, विशेषतया ज्वरदाह हरने वाला है।

उड़द

उड़द, भारी, गरम, स्निग्ध, मधुर, वातनाशक, कफ, चर्बी, मांस और वीर्य को बढ़ाता है। तृप्तिकारक, बृंहण और विशेषतया इसके सेवन से माताओं के स्तनों में दूध बढ़ता है। यह उष्ण, गरिष्ठ, पित्त-कारक और राजसिक है, इसका सेवन अल्प मात्रा में करना चाहिये। जिनकी जठराग्नि तीव्र है वे ही इसका सेवन कर सकते हैं, मन्दाग्नि वाले व्यक्ति को इससे सर्वथा बचना चाहिये।

मसूर

मसूर—मधुर, शीतल, रूक्ष, संग्राही, कफ पित्तनाशक और वायु के रोगों को बढ़ाती है, मूत्रकृच्छ्र को दूर करती है।

अरहर

अरहर—शीतल, रूक्ष, वातकारक, कफ पित्त नाशक है तथा वात को भी अधिक प्रकुपित नहीं करती। चर्बी, कफ, रक्तपित्त आदि में अरहर का सेवन और सेकन हितकर है। घी के साथ सेवन करने से त्रिदोष-नाशक है।

महाकाय (मक्का)

मक्का—शीतल, विष्टम्भी, रूक्ष, वातकारक, कफ पित्त नाशक और तृप्त करने वाली है। कच्ची मक्का रुचि और पुष्टि कारक है।

——

मांस-भक्षण-अण्डा

आमिष कहिये या मांस, दोनों का अभिप्राय एक ही है। मांस वह पदार्थ है जिसकी प्राप्ति बिना प्राणिहिंसा के नहीं हो सकती। इसलिए "अहिंसा परमोधर्मः" के अनुसार धार्मिक मानव समाज में मांस भक्षण का प्रतिषेध सदा से रहा है।

"अमन्ति रोगिणो भवन्ति येन भक्षितेन तदामिषम्" जिस पदार्थ के भक्षण से मनुष्य रोगी हो जाये वह आमिष कहलाता है। कैंसर, कोढ़, गर्मी के समस्त रोग, दांतों का गिर जाना इत्यादि भयंकर रोग मांस भक्षण से हो जाते हैं।

प्राचीन भारत में "घृतं वै वलम्" "दुग्धं वै वलम्" जिस समय घी और दूध को साक्षात् वल समझ कर प्रयोग में लाया जाता था उस समय मानव-स्वास्थ्य उन्नति के शिखर पर था, सौ वर्ष से पहले मरना अकालमृत्यु और पाप समझा जाता था, तीन-तीन चार-चार सौ वर्ष तक

की आयु का भोग करते थे। मानव की आयु का माध्यम सौ वर्ष से कम न था। परन्तु आज भारत में मानव की आयु का माध्यम २७ वर्ष है। यह सब मांस भक्षण का ही परिणाम है।

इतना भी तब है जब कि मांस के साथ अन्न तथा घी दूध आदि का भी प्रयोग करते हैं। यदि केवल मांस का ही मानव को प्रयोग कराया जाए तो मानव जीवन असम्भव है। क्योंकि मानव का स्वाभाविक भोजन मांस नहीं है।

कहा जाता है कि भारत तो उष्णप्रधान देश है। यहाँ का जलवायु भले ही मांस भक्षण के विपरीत हो परन्तु इङ्गलैंड, अमेरिका आदि शीत प्रधान देशों में मांस भक्षण अनुकूल रहेगा। इसलिये लोगों ने मांस को अपनाया।

परिणाम सामने है, शीत प्रधान देशों के जीवन का भी ह्रास हो रहा है। उनकी आँखें बिल्ली जैसी दिखाई देती हैं, कैंसर, कोढ़ आदि उपरोक्त रोगों के ग्रास हो रहे हैं, जब रोग बढ़े तो बुद्धिमान् लोगों ने अन्वेषण करना प्रारम्भ किया।

लन्दन वैजीटैरियन एसोसियेशन की सेक्रेट्री कुमारी एफ० ई० निकल्सन ने १० सहस्र बच्चों को निरामिष भोजन कराया और दूसरी ओर लन्दन काउण्टी कौंसिल द्वारा एक दूसर भोजनालय में उतने ही बच्चों को मांस सहित भोजन कराया गया। ६ मास के उपरान्त दोनों दलों के बच्चों की परीक्षा डाक्टरों द्वारा की गयी। यह जानकर प्रसन्नता होगी कि निरामिप भोजी बच्चों का स्वास्थ्य अधिक अच्छा रहा, उनका भार अधिक निकला, उनके पुट्ठे सुदृढ थे, तथा चमड़ा अधिक स्वच्छ था।

अब लन्दन काउण्टी कौंसिल की प्रार्थना पर और उसी की देखरेख में लन्दन वैजीटेरियन ऐसोसियेशन द्वारा लन्दन के निर्धन से निर्धन निवासियों को सहस्रों की संख्या में निरामिप भोजन दिया जाता है।

कहा जाता है कि मांस भक्षण से सैनिकों का स्वास्थ्य ठीक रहता

है, लड़ने की शक्ति आती है इसलिए सेनाओं में मांस का प्रयोग किया गया परन्तु अन्वेषण करने पर परिणाम विपरीत निकला है। अमेरिका के प्रसिद्ध विद्वान् श्री प्रो० शिटेएडन पी० एच० डी० एस० सी० सी०, एल० डी० डी० ने निम्न प्रयोग किया है।

अमेरिकन सिपाहियों के साधारण दैनिक भोजन में ७५ औंस ठोस भोजन रहता है। इस ७५ औंस में २२ औंस कसाइयों के यहां का माँस होता है। इन सिपाहियों तथा व्यायाम करने वालों का भी भोजन का परिमाण एक प्रकार से सारे का सारा मांस तथा ठोस वस्तुओं का कुछ अंश भी निकाल कर केवल ५१ औंस कर दिया गया। नौ मास तक उन्हें इस भोजन पर रखा गया। यद्यपि इस भोजन में परिवर्तन करने से पहले उनके शरीर का पूर्ण विकास हो चुका था और देखने से ऐसा प्रतीत होता था कि अब इससे अधिक शक्ति इनमें रहीं आयेगी। परन्तु पुनरपि नवें मास के अन्त में उनमें पहले की अपेक्षा कहीं अधिक शक्ति आ गयी और उनका स्वास्थ्य भी पहले से कहीं अच्छा हो गया। यन्त्र के द्वारा ठीक-ठीक नापने से पता चला कि उनकी शक्ति में लगभग ५० प्रतिशत वृद्धि हुई तथा वह सरलता से अधिक ठोस काम करने लगे। उनमें अधिक प्रसन्नता आगयी तथा उनके स्वास्थ्य में उन्नति हुई और जब उनको इस बात की स्वतन्त्रता दे दी गई कि वे चाहें तो अपना पिछला भोजन प्रारम्भ कर सकते हैं तो उनमें से किसी ने भी पहला (मांस वाला) भोजन करना स्वीकार न किया। यदि उपरोक्त प्रोफेसर साहब कम किए हुए भोजन के स्थान में दूध २५ औंस बढ़ा देते तो परिणाम बहुत ही बढ़िया होता।

मनुष्य का स्वाभाविक भोजन शाक-सब्जी, दूध-घी और अन्नादि ही है। मांस नहीं। क्योंकि मनुष्य के शरीर की बनावट ही ऐसी है। मांस जिन पशु-पक्षियों का भोजन है, उन्हें परमात्मा ने नुकीले दांत तथा पंजे ऐसे दिये हैं जो शीघ्रता से मांस में घुस सकें। साथ ही मांसभक्षी

पशु जीभ से चपर-चपर करके पानी पीता है। उसे भागते हुए पसीना भी नहीं आता। उत्पत्ति के समय उसके बच्चे की आंखें बन्द होती हैं। बिना सिखाये वह अपने भक्ष्य पशु पर आक्रमण कर देता है। बिल्ली का बच्चा बिना सिखाये चूहे के ऊपर टूट पड़ता है। मानव का बच्चा फल को उठाकर भले ही मुँह में दे ले, आक्रमण वह नहीं करता। सिंह का बच्चा बिना सिखाये हाथी पर भी आक्रमण करने का साहस रखता है। मनुष्य का बच्चा नहीं।

मनुष्य की भोजन नालिका बहुत लम्बी होती है, जिसमें मांस जसा गरिष्ठ पदार्थ बड़ी कठिनता से पचता है। पचाने के लिए शराब पीनी पड़ती है। कहा जाता है कि जो मांस खाता है वह शराब अवश्य पीता है।

मांसभोजी पशु की भोजननालिका छोटी होती है। उसमें मांस शीघ्र पच जाता है।

मनुष्य के उदर में कौन पदार्थ कितने समय में पचता है उसकी तालिका निम्न है।

नाम	अवस्था	पचने का समय
१. चावल	उबला हुआ	१ घण्टा
२. सेव	पका हुआ	१॥ ,,
३. जौ	,, ,,	२ ,,
४. आलू	भुना हुआ	२। ,,
५. रोटी		३। ,,
६. दूध	गर्म	२ ,,
७. बकरे का मांस		३ ,,
८. शोरबा		३॥ ,,
९. मुर्गी का मांस		४ ,,
१०. मछली		४॥ ,,
११. सूअर का मांस		५। ,,
१२. गाय का मांस		५॥ ,,

गेहूँ चावल आदि अन्न, फल, दूध घी आदि पदार्थों पर ही मनुष्य का जीवन है, इन्हें यह बिना पकाये भी उपयोग में ला सकता है। विज्ञान यह बतलाता है कि पकाने था ऊपर से नमक मिर्च आदि डालने से पदार्थ की शक्ति कम होती है, इसलिए प्राकृतिकता इसी में है कि जिस रूप में पदार्थ हो उसी रूप में प्रयोग में लाया जाये। परन्तु मांस बिना पकाये मनुष्य प्रयोग में नहीं ला सकता। इसलिये सिंह, भेड़िया, कुत्ते और बिल्ली को ही मांसभक्षी कहा जा सकता है जो अपने आप मारकर ताजा मांस खाते हैं: मनुष्य को नहीं।

शक्ति की दृष्टि से मांस की स्थिति निम्न तालिका से ज्ञात हो जायेगी।

पदार्थ	प्रोटीन,	चरबी,	कार्बोज	खनिज	जल
गेहूँ	११·४७	२·०४	७०·९०	३·१४	११.८३
गेहूँ का आटा	१०·७	१·१	७५·४	०·५	×
गेहूँ की मैदा	७·६	१·४	७६·४	०·५	×
गेहूँ का चोखर	१६·४	३·५	४३·६	६.	१२·५
मसूर की दाल	२५·४७	३·०	५५·७३	×	×
मूंग	२३·६२	२·६९	५३·४५	×	×
उर्द	२२·३३	१·९५	५५·२२	×	×
अरहर	२१·७०	०·५०	४५·०६	×	×
बादाम	२४·००	५४·०	१०·०	३·०	६·०
मूंगफली	२७·५	४४·५	१५·७	२·५	७·५
गाय का दूध	३·५	४·०	३·५	०·७५	८७·२५
भैंस का दूध	६·११	७·४५	४·१७	०·८७	८१·४०
बकरे का मांस	१८·०	५·४	×	१·०	७६.७
गाय बैल का „	२०·०	१·५	०·६	१·२	७६·७
मुर्गे का „	२२·७	४·१	१·३	१·१	७४·४
अण्डे की जरदी	१६·१२	३१·३६	×	१·०१	५१·३

आजकल यह युक्ति दी जाती है कि जहाँ पर मांस के अतिरिक्त कुछ प्राप्त ही न हो सके वहां पर क्या किया जाये ? जैसे रूस का टण्ड्रा प्रान्त है वहाँ कुछ उत्पन्न ही नहीं होता। हरिण को मारकर उसके मांस से ही निर्वाह वहाँ के लोग करते हैं। परन्तु परमात्मा ने जहाँ मनुष्य को उत्पन्न किया है वहां उसके खाने के लिये खाद्य पहले उत्पन्न कर दिया है। टण्ड्रा में भी हरिण जब नदी तालावों पर जमी हुई काई से अपना निर्वाह कर सकता है तो मनुष्य क्यों नहीं कर सकता ?

आर्य जगत के प्रसिद्ध विद्वान् स्व० पं० गुरुदत्त एम० ए० एक बार रोगी हो गए, डाक्टरों ने परामर्श दिया कि यदि गुरुदत्त जी मांस खा लें तो बच सकते हैं। पं० गुरुदत्त जी ने उत्तर दिया कि यदि मैं मांस खाने पर अमर हो जाऊँ, पुनः मरना ही न पड़े तो विचार कर सकता हूँ। डाक्टर चुप हो गये।

अंग्रेजी भाषा के ख्यातनामा साहित्यकार वर्नाडाशाह ने मांस का परित्याग कर दिया था। वह मांसों वाले सहभोजों में सम्मिलित नहीं होते थे। डाक्टरों ने उनसे कहा कि मांस न खाओगे तो मर जाओगे। उन्होंने कहा मुझे परीक्षण कर लेने दो, यदि मैं न मरा तो तुम निरामिष भोजी बन जाओगे। वर्नाडाशाह लगभग १०० वर्ष की आयु के होकर मरे और मरते समय तक स्वस्थ बने रहे। उन्होंने एक बार कहा था—मेरी स्थिति बड़ी गम्भीर है, मुझ से कहा जाता है कि गोमांस खाओ तुम जीवित रहोगे। मैंने अपनी वसीयत लिख दी है कि मेरे मरने पर मेरी अर्थी के साथ विलाप करती हुई गाड़ियों की आवश्यकता नहीं। मेरे साथ बैल, भेड़ें, गायें, मुर्गे और मछलियां रहेंगी, क्योंकि मैंने अपने साथी प्राणियों को खाने की अपेक्षा मरना अच्छा समझा है। हजरत नूह की किश्ती को छोड़कर यह दृश्य सब से अधिक उत्तम और महत्वपूर्ण होगा।

मांस मनुष्य को रोगी करने वाला अभक्ष्य पदार्थ है। मनुष्य को इससे सदा दूर रहना चाहिये।

अण्डा

अण्डा भी मांस में ही सम्मिलित है किन्तु कुछ लोग अण्डे को मांस से पृथक् मानने लग गये हैं और कहते हैं कि अण्डे में जीव नहीं होता अतः इसको खाने तथा भक्ष्यपदार्थ मानने में कोई आपत्ति नहीं। किन्तु यदि थूक-खाकर मल-मूत्रादि के खाने से उत्पन्न होने वाला अण्डा भी भक्ष्य पदार्थ है तो फिर संसार में अभक्ष्य पदार्थ ही क्या रह गया ?

"अभक्ष्याणि द्विजातीनाममेध्यप्रभवाणि च" (मनु०) के अनुसार हमारे शास्त्रकारों ने गन्दगी से उत्पन्न होने वाले सभी पदार्थों को अभक्ष्य ठहराया है।

अण्डे में जीव न मानना भी बुद्धिसंगत नहीं। जब मुर्गी अण्डज है = अण्डे से बच्चा उत्पन्न होता है तो उसमें जीव क्यों नहीं ? अण्डा खाने वाले स्वार्थियों ने अपना प्रयोजन सिद्ध करने के लिए मिथ्या युक्तियां देनी प्रारम्भ कर दी हैं। यदि दुर्जन तोष न्याय से अण्डे में जीव न भी माना जाये तो क्या सभी निर्जीव पदार्थ भक्ष्य हैं ? यों तो मल-मूत्र भी इसी श्रेणी में आ जायेगा। जीव का होना या न होना भक्ष्य पदार्थ का लक्षण नहीं।

हमारे शास्त्रों में मांस भक्षण का सर्वथा निषेध है। महर्षि मनु लिखते हैं—"वर्जयेन्मधुमांसञ्च" मद्य और मांस सर्वथा छोड़ देना चाहिये। इसी प्रकार राजर्षि चाणक्य ने "मांसभक्षणमयुक्तं सर्वेषाम् (चाणक्य राजसूत्र ५६२)" सभी मनुष्यों के लिए मांसभक्षण अनुचित बतलाया है। भोज्य पदार्थों का वेद भगवान् ने कितना स्पष्ट निर्देश किया है—

"अजीजन ओषधीर्भोजनाय" (ऋ० ५।८३।१०) अर्थात् भोजन के लिये जौ, गेहूँ, चावल आदि ओषधियाँ (ओषधयः फलपाकान्ता = मनु०) उत्पन्न की हैं। अतः उन्हीं का सेवन करना चाहिये।

अण्डा खाने के पक्ष में एक यह भी युक्ति दी जाती है कि इसमें

प्रोटीन है। प्रोटीन की अधिक आवश्यकता केवल वृद्धि-अवस्था में ही होती है अर्थात तीस चालीस वर्ष तक। साथ ही वैज्ञानिकों का यह भी मत है कि माँस की प्रोटीन मनुष्य के शरीर के लिए उपयुक्त नहीं। दूध, दही, छाछ, गेहूँ, चना, मटर और दालों में पर्याप्त मात्रा में प्रोटीन होती है, और यही शरीर के लिये उपयुक्त है।

विटामिन (जीवनीय तत्त्व) की दृष्टि से भी अण्डे को कोई महत्त्व नहीं दिया जा सकता। गोदुग्ध में ए० बी० डी० जी० विटामिन विद्यमान हैं। अंगूर, गेहूँ, चना, लोभिया, हरे मटर आदि में ए० बी० सी० डी० विटामिन पर्याप्त मात्रा में होते हैं। इस प्रकार निरामिष भोजन से ही मानव को सभी जीवनीय तथा पोषक तत्त्व और खनिज-पदार्थों की यथोचित प्राप्ति हो जाती है, फिर मांस, मछली और अण्डे आदि अभक्ष्य पदार्थों को खाकर अपने तन-मन तथा आत्मा को दूषित करना महा-मूर्खता और पाप है।

अधिक दुःख की बात तो यह है कि अहिंसा का ढोल पीटने वाली सरकार भी मांस, मछली अण्डे आदि का प्रचार कर रही है। मत्स्य उत्पादन बढ़ाओ, मुर्गियां पालो, जिस से अण्डे अधिक मिल सकेंगे इत्यादि प्रचार सरकार की ओर से किया जा रहा है। लाखों रुपया इस कार्य में नष्ट किया जा रहा है, मत्स्यपालन योजना बनाई जा रही है, मुर्गी-विकास केन्द्रों की स्थापना और मुर्गी-प्रदर्शनियों का उद्घाटन हो रहा है। अभी ८ जनवरी को बम्बई में मुर्गी-प्रदर्शनी का उद्घाटन करते हुए केन्द्रिय कृषि मन्त्री श्री पंजाबराव देशमुख ने बतलाया कि—

"आगामी द्वितीय पंचवर्षीय योजना में ७० लाख रुपये की लागत से विभिन्न क्षेत्रों में १५० "मुर्गी-विकास केन्द्र" स्थापित किए जायेंगे। सरकार ने सम्प्रति १८ केन्द्रों के खोलने की स्वीकृति प्रदान की है।"

राज्याधिकारियों अथवा जनता के प्रतिनिधियों को चाहिये कि वे इस जघन्य प्रवृत्ति को रोकें। राष्ट्रहित के लिए राज्य को चाहिए कि वह

प्रचार के स्थान में इस पर प्रतिबन्ध लगावे । आशा है अधिकारी महानुभाव इस ओर ध्यान देंगे और खाद्य समस्या को सुलझाने के लिए उसी प्राचीन साधन का उपयोग करेंगे जिस का उपनिषद् में निर्देश है—

"अन्नं बहु कुर्वीत"

मद्यपान

अङ्गरेजी सभ्यता ने भारत को मांस भक्षण के साथ ही दूसरी भयङ्कर वस्तु प्रदान की है वह मद्य (शराब) है। इससे मनुष्य का शरीर, मस्तिष्क और आत्मा तीनों ही बिगड़ जाते हैं। गत महायुद्ध में जहाँ एक करोड़ प्राणी युद्ध के द्वारा नष्ट हुए और डेढ़ करोड़ महामारी के द्वारा मरे वहाँ दो करोड़ प्राणी शराब के द्वारा नष्ट हुए।

प्राचीन भारत में शराब पीने की प्रथा नहीं थी। सृष्टि के आदि से लेकर महाभारत पर्यन्त दश बीस सौ पचास नहीं, लाखों शताब्दियों तक धार्मिक मानव समाज का खान पान अच्छा रहा। सब सात्विक आहार और पान करते थे। परन्तु महाभारत के उपरान्त वैदिक शिक्षा के अभाव में शराब आदि की प्रथा चली। महात्मा बुद्ध ने शराब के विरोध में लोकमत को उभारा, उन्होंने कहा—वेश्या और सुरापान दोनों ही त्याज्य हैं। वेश्या धन का और सुरा परिवार का हरण करके मनुष्य को ऐसा बना देती हैं कि उसका मूल्य शून्य जितना भी नहीं रह जाता। मनुष्य समाज के कल्याण के लिये नैतिक तथा सामाजिक दृष्टि से इस अभिशाप का अन्त होना ही चाहिये। उन्होंने मनुष्यों को सम्बोधन करते हुए कहा कि मनुष्यो! तुम सिंह के सम्मुख जाते हुए भयभीत न होना वह पराक्रम की परीक्षा है। तुम तलवार के नीचे शिर झुकाने से भयभीत न होना यह बलिदान की कसौटी है। तुम पर्वत शिखर से तालाब में कूद पड़ने से भयभीत न होना वह तप साधना है। तुम दहकती हुई अग्नि ज्वालाओं से विचलित न होना वह स्वर्णपरीक्षा है।

परन्तु सुरा देवी से सदैव भयभीत रहना, क्योंकि यह पाप और अनाचारों की जननी है।

उन्होंने राजाओं को चेतावनी दी कि जिस राजा के राज्य में सुरा देवी आदर पावेगी, वह राज्य काल वेदि पर नष्ट होगा वहाँ न औषधि उपजेगी, न अनाज होगा, न वृद्धि होगी, यह महाहिंसा है।

कौटिल्य ने भी अपने समय में मद्य को वन्द करा दिया था और मद्य की दूकानों पर ऋतुओं के अनुकूल भोजन रखवा दि येथे। भोजन पात्रों को सुगन्धित फूलों से ढकवा दिया था। जो व्यक्ति उस भोजन को करता था वह मद्य को छोड़ देता था। उस समय सुरा-पान बन्द हो गया था। यह निषेध सैंकड़ों वर्षों तक रहा। ६२६ ई० में चीनी यात्री हुआनस्याङ्ग भारत आया और १६ वर्ष तक भारत में रहा, उस समय मद्यपान भारत में न था, यहाँ तक कि औरङ्गजेव के समय में भी सुरापान न था। प्रसिद्ध फ्रान्सीसी डाक्टर वर्नियर ने जो औरङ्गजेव के समय भारत में आया था और पर्याप्त समय तक भारत में ठहरा था उसने लिखा है कि दिल्ली में शराब की एक भी दूकान न थी।

अङ्गरेज भारत में आये। वेस्टइण्डिया कम्पनी के कर्मचारी शराब पीते थे। कम्पनी ने मद्यपान को प्रोत्साहन दिया, दिन प्रतिदिन प्रचार शराब का बढ़ने लगा। ताड़ी के वृक्षों पर टेक्स लगा दिया गया। शराब बनाने और बेचने के लिये ठेके दिये जाने लगे। जिससे ठेकेदार शराब का प्रचार करें। कम्पनी के इस प्रोत्साहन का भारी प्रभाव पड़ा। इस प्रभाव को देखते हुए एक बार स्व० केशवचंद्रसेन ने कहा था कि १० शिक्षित बङ्गालियों में से ९ छिपकर शराब पीते हैं। सन् १८८८ ई० में लन्दन के हाऊस आफ कामन्स में शराब पर बहस हुई, तो मिस्टर केनी ने भारतवासियों का पक्ष लेते हुए अङ्गरेज सरकार की नीति की तीव्र आलोचना की थी। उन्होंने शराब के प्रचार सम्बन्धी सरकार की

दूषित नीति के सम्बन्ध में कहा था कि यदि सरकार अपनी आय को प्रति दशवें वर्ष दुगुणी करने की वर्त्तमान नीति को स्थिर रक्खेगी तो भारत ३० वर्ष में पृथ्वी-तल पर एक पक्का शराबी देश हो जायेगा।

शराब से पाचक शक्ति नष्ट हो जाती है। नीचे से शरीर पीला पड़ने लगता है परन्तु देखने में चेहरा लाल दिखाई देता है। सनक और दीवानापन (पागलपन) को लाती है। श्वास और दमे की बीमारी को उत्पन्न करती है। कलेजे गुर्दे तथा आमाशय और रक्तस्नायुओं को भीतर ही भीतर घुला देने वाली है। अस्वाभाविक रीति से रोग-जन्तुओं को शरीर के भीतर प्रविष्ट कर देती है। जिससे शरीर के अवयव और ज्ञानतन्तु बिगड़ जाते हैं निमोनियां श्वास, तपेदिक, शोष आदि संघातक रोग उत्पन्न होने लगते हैं और पीढ़ियों तक चलते रहते हैं। आक्सीजन के प्रचार को रोक कर चर्बी को बढ़ाती है। नसों और पुट्ठों की छोटी सेलों को नष्ट करके उनका बढ़ना रोक देती है।

योरोप वाले भी शराब के दुष्परिणामों का अनुभव करने लगे हैं। वहाँ के अस्पतालों में शराब का औषधि के रूप में अस्पतालों में अधिकता से प्रयोग होता था। चीर फाड़ के उपरान्त प्रायः अस्पतालों में बराण्डी हृदय की उत्तेजना के लिये प्रयोग में लाई जाती थी, परन्तु अब इस का प्रयोग वन्द कर दिया है।

आस्ट्रेलिया में सन् १८९१ में एक सहस्र पौण्ड से अधिक की शराब एक अस्पताल में प्रयोग में लाई गयी थी। उसी अस्पताल में १९१४ ई० में ४ पौण्ड मूल्य की शराब प्रयोग में लाई गयी।

अमेरिका के प्रसिद्ध चिकित्सक तथा मेडीसन रिसर्च शन एशोसियेशन के प्रधान श्री डा० हार्वी वेली ने शराब के विषय में अन्वेषण किया है। उन्होंने एक मत से स्वीकार किया है कि शराब कोई पौष्टिक पदार्थ नहीं है। यह एक निरा विषैला पदार्थ है। इसलिये ह्विसकी और ब्राण्डी दोनों ही औषधि की श्रेणी से अलग कर दी गयी हैं।

प्रसिद्ध डाक्टर लेथेवे की परिभाषा में "जो खाद्य पदार्थ जीवित शरीर की नसों की चेतन शक्ति को नष्ट करता है अथवा जीवन का ह्रास करता है" वह विष है।

पर्याप्त समय हो गया ब्रिटेन और भारत के डाक्टरों ने मिलकर निम्न-विज्ञप्ति निकाली थी।

१—वैज्ञानिक दृष्टि से यह निश्चय हो गया है कि शराब कोकीन अफीम और अन्य-मादक द्रव्य विष हैं।

२—भारत जैसे गर्म देश में इनका थोड़ा भी प्रयोग स्थाई रूप में हानिकारक है।

३—बहुत दशाओं में शराब सन्तान के लिये हानिकारक है।

४—प्लेग मलेरिया और क्षय को रोकने में शराब व्यर्थ है।

५—यही बात अन्य नशों के सम्बन्ध में भी कही जा सकती है।

"यथा राजा तथा प्रजा" के सिद्धान्त के अनुसार राजा पर अपने तथा प्रजा के सब प्रकार के रक्षण का उत्तरदायित्व होता है। अलाउद्दीन खिलजी ने जब अपनी अवनति और गिरावट का कारण शराब ही का अनुभव किया तो उसने सब के सामने अपनी शराब से भरी हुई सुराही को भूमि पर फेंक दिया और महल के समस्त मूल्यवान् प्याले तथा सुराहियों को सबके सामने लुढ़का दिया और शराब बन्दी का नियम लागू कर दिया। पीने वाले को कड़ा दण्ड दिलवाया। यहाँ तक कि भूमि में गड्ढे खुदवा कर शराब न छोड़ने वालों को गड़वा दिया। परिणाम सामने है, मद्यपान मिट गया था। आज भी हमारी सरकार के कर्मचारी और जनता के प्रतिनिधि धारा सभाओं तथा लोक सभा के सदस्य यह समझें कि शराब बड़ी बुरी वस्तु है, देश के उत्थान में शराब बाधक है, तो तत्काल शराब बन्द हो सकती है। कतिपय प्रान्तों ने विचार किया है। वे बधाई के पात्र हैं। शराब संसार के गुरुराज भारत के माथे पर कलंक

राम, कृष्ण, दयानन्द और गांधी के नाम को धब्बा लगाने वाली शराब है। इसका जितनी भी शीघ्र वहिष्कार हो श्रेयस्कर होगा *

तम्बाकू

तम्बाकू के पौदे का वर्णन हमारे प्राचीन ग्रन्थों में नहीं मिलता। कहा जाता है कि तम्बाकू पीने की प्रथा पहले चीन में थी। परन्तु अनुसन्धान करने पर प्रतीत हुआ कि चीन में पहिले यह प्रथा नहीं थी; इसलिये भारत ही क्या ? समस्त एशिया में तम्बाकू का नाम न था। और एशिया ही क्या ? समस्त संसार में तम्बाकू का किसी को ज्ञान न था।

तम्बाकू की खेती सर्वप्रथम अमेरिका में प्रारम्भ हुई। सन् १६०७ ई० में जेम्सटाऊन विरगिनिया कोलोनी में तम्बाकू बोया गया। आठ वर्ष तक इसका विस्तार किया गया और १३ वर्ष के उपरान्त सन १६२० ई० में तम्बाकू व्यापार की एक महत्वपूर्ण वस्तु बन गयी। उस समय यह अद्भुत सी वस्तु प्रतीत होती थी। व्यापारिक दृष्टि से इसका भारी प्रचार किया गया। समाचार पत्रों में इसका विज्ञापन किया गया। नवीन समाचार पत्र इसके प्रचार के लिये निकाले गये। विक्रय साहित्य बंटवाया गया। परिणाम सामने है, तम्बाकू संसार में सर्वत्र फैल गया।

तम्बाकू का सबसे बड़ा प्रचारक जार्ज वाशिंगटन हिल था। इसने करोड़ों रुपये तम्बाकू के विज्ञापन पर स्वाहा कर दिये। सुप्रसिद्ध लेखक माइक गोल्ड ने जार्ज वाशिंगटन हिल के विषय में "इस विलक्षण बुद्धि वाले सिग्रेट के पक्षपाती ने अपने देश के लिये एक लाख झूठ बोले" नाम के लेख में लिखा है कि जार्जवाशिंगटन हिल एक मदोन्मत्त अद्भुत लड़का था।

---

*अधिक ज्ञान के लिये हमारी "पापों की जड़ अर्थात् शराब' पुस्तक पढ़ें, जो पृथक् प्रकाशित की हुई है। मूल्य ।-)

सन् १९१७ ई० में उसने अमेरिका को विश्वास दिलाया और कहा कि देश का स्वास्थ्य, धन और प्रसन्नता केवल सिग्रेट व्यवहार और उसी के व्यापार पर निर्भर है और वह चालाक लड़का अपने इस युक्ति-पूर्वक कार्य में बहुत अधिक सफल हुआ। क्योंकि अमेरिका में ही सिग्रेट की खपत प्रतिवर्ष तीन अरब रुपये से बढ़कर तीन सौ अरब तक बढ़ गयी।

इसी प्रकार जार्ज वाशिंगटन हिल ने स्त्रियों में भी तम्बाकू का भारी प्रचार किया। अविवाहित लड़कियों या उन विवाहित लड़कियों के लिये जो अपने पतियों से पृथक् रहना चाहती थीं उन सब में हिल ने यह नारा लगाया कि प्रियतम पति के बिना किसी भी छाप की सिग्रेट को पीने से आनन्द का अधिक भास होगा और स्वास्थ्य ओर सौंदर्य भी बना रहेगा। पहले स्त्रियां तम्बाकू के व्यसन से दूर रहती थीं, परन्तु हिल की चाल सफल हुई। स्त्रियां भी तम्बाकू का प्रयोग करने लगीं। परिणाम यह हुआ कि स्त्रियां भी विभिन्न प्रकार के रोगों से ग्रस्त रहने लगीं।

वैफैलों विश्वविद्यालय द्वारा दिए गये डाक्टरों के एक सहभोज में जौन्स हो पार्कन्स के श्री डा० विलियम रेन होफ ने बतलाया कि स्त्रियों में फुफ्फुस के कैंसर या मर्कट के रोग के पीड़ित पर्याप्त रोगियों की वृद्धि हुई है। और भविष्य में पर्याप्त दिखाई देती है। क्योंकि इधर इस स्थान में स्त्रियाँ भी तम्बाकू का पर्याप्त यथेष्ट व्यवहार करने लग गयी हैं।

तम्बाकू महा नशीली वस्तु है मानव के लिये यह महाहलाहल विष है, परन्तु मनुष्य इसकी ओर ध्यान नहीं देता। तम्बाकू में—

१—निकोटाईन २—प्रुसिक एसिड
३—कार्बन मोनोक साईड ४—पीरो डाईन
५—एमोनिया ६—कार्बोलिक एसिड
७—सल्फेटन हाईडरोजन ८—मैथीला माईन

९—मार्शसगे	१०--निकोलाईन
११-ल्यूरी डाइन	१२—कोली डाईन
१३—पारेवोडाईन	१४—कोरी डाईन
१५—रूपी डाईन	१६—वीरो डाईन
१७—पाई रोल	१८--फीर्मिक बोलडीहाईड
१९—फरफरोल	

यह १९ विष हैं। इनमें चार पांच तो महा भयङ्कर विष हैं।

डाक्टर गाथ का कहना है कि निकोटाईन इतना भयानक विष है कि इसकी एक बूंद भी उदर में पहुंच जाय तो तत्क्षण मनुष्य का प्राणान्त हो जाये। प्रयोग करके देखा गया है कि निकोटाईन की आधी बूंद से बिल्ली और एक बूंद से कुत्ता मर गया और आठ बूंदों से एक घोड़ा केवल आठ घंटों में मर गया।

"मेलसेन्स" का कथन है कि सवा तोले तम्बाकू के धुएं में इतना निकोटाईन है कि जिससे मनुष्य का प्राणान्त हो सकता है।

तम्बाकू का धुंआ गले की नसों से होकर मस्तिष्क और जिगर की ओर फैल जाता है मस्तिष्क में गर्मी को उत्पन्न कर देता है, स्मरण शक्ति नष्ट हो जाती है। पढ़ने को मन नहीं चाहता। पीने वाले को मस्तिष्क ज्वर हो जाता है। जब तक धुंआ मस्तिष्क में न जाये—आराम नहीं पड़ता। डा० गोर्जस का कथन है कि तम्बाकू अध्ययन का बन्द द्वार है। तम्बाकू पीने वाले विद्यार्थी और अध्यापकों का ड्राइङ्ग खींचते समय हाथ कांपने लगता है। दृष्टि में भी महान् अन्तर हो जाता है। जिस कमी को ऐनक लगा कर भी पूरा नहीं किया जा सकता। ऐनक चाहे दो लगा ली जायें परन्तु उतना नहीं दीख पाता। रोगों की अभिवृद्धि हो रही है। मृत्यु की संख्या बढ़ रही है। केवल एकवर्ष की अवस्था में ही २५ प्रतिशत बालक कराल काल के कवल बन रहे हैं। शेष ७५ बालक भी १०० वर्ष तक की आयु तक पहुंच जाते हैं यह बात भी

नहीं है। इनमें से भी केवल ३५ प्रतिशत ही बालक ऐसे हैं जो ३० वर्ष तक की आयु तक पहुँचते है। कहीं पर क्षय रोग है, तो किसी को कैंसर हो गया है। कोई अन्धा हो गया है तो कोई ऐनक लगा रहा है।

विद्यार्थियों का स्वास्थ्य बिगड़ना तो एक कलंक है विद्यार्थी जीवन तो मस्ती का जीवन है। प्रथम अवस्था में ही रोगों का शिकार होना मृत्यु को निमन्त्र देना हे। यदि हमारे विद्यार्थी सुख सम्पन्नता का जीवन व्यतीत करना चाहते हैं, यदि वह भावी भारत की उज्ज्वलता के प्रतीक बनना चाहते हैं तो तम्बाकू से दूर रहें। इसे हलाहल विष समझें। हलाहल विष ही नहीं उससे भी अधिक घातक, क्योंकि विष तो तत्क्षण प्राण ले लेता है, और यह व्यक्ति को सड़ा सड़ा कर मारता है। स्कूल के ४०० छात्रों की परीक्षा ली गई, जिनमें २०० छात्र सिग्रेट बीड़ी पीने वाले थे और २०० छात्र तम्बाकू का सेवन नहीं करते थे। परीक्षा में निम्न परिणाम निकला—

रोग	सिग्रेट पीने वाले	सिगरेट न पीने वाले
१. धैर्यहीन	१४	१
२. ऊँचा सुनना	१६	१
३. स्मरणशक्ति का ह्रास	१२	१
४. बुरी आदतें	१३	२
५. ओछे व्यवहार	१३	१
६. शारीरिक निर्बलता	१३	२
७. चरित्र हीनता	१४	०
८. मानसिक दुर्बलता	१५	१
९. गुण्डापन	१६	०
१०. रात्रिगामी	१५	१
११ वस्त्रों की मलीनता	१२	४
१२. गन्दे	१२	१
१३. कार्यपराङ्मुख	१०	०

१४. निम्नश्रेणी वाले	२८	३
१५. कोई उन्नति नहीं	७८	२
१६. अधिक आयु वाले	१८	२
१७. असत्यवादी	९	०
१८. कामचोर	१७	०
१९. धीरे धीरे बोलनेवाले	१८	६

ऊपरलिखित उन्नीस दोषों में सिग्रेट पीनेवाले छात्रों की भारी संख्या है और न पीने वाले छात्रों की संख्या नगण्य है। यह थोड़ी सी संख्या भी इसलिए समझिये कि इनके माता पिता सिग्रेट पीते होंगे।

ज० रिचर्डसन का कथन है कि जिनके माता-पिता तम्बाकू का सेवन करते हैं उनकी सन्तान अवश्य ही मानसिक और शारीरिक दुर्बलताओं का शिकार होगी।

एक प्रतिष्ठित चिकित्सक की सम्मति है कि मैंने आज तक एक भी ऐसा तम्बाकू सेवी माता-पिता नहीं देखा जिसकी सन्तान का स्नायु मण्डल निर्बल न हो, उनका मस्तिष्क भी दुर्बल होता है।
मस्तिष्क में निर्बलता उसमें विभिन्न प्रकार के रोग, अनिद्रा, आँखों के आगे तिरमिरे से दिखाई देना, अन्धापन, हृदय की धड़कन, कार्य में निरुत्साह, आलस्य, मुखदर्द दान्तों का गिरना, अपचन, गठिया का दर्द, गले के रोग, कान में फोड़े आदि अनेक रोगों की देन तम्बाकू ही है। यकृत, मूत्राशय के रोग विभिन्न प्रकार के हो जाते हैं। फ्रांस के सुप्रसिद्ध डाक्टर जी० सेन ने ९ से १५ वर्ष तक की आयु वाले अम्वाकू सिग्रेट बीड़ी आदि का धूम्रपान करने वाले बालकों का निरीक्षण किया, इन बच्चों का रक्त प्रवाह क्षीण हो चुका था और हृदय का रोग हो चुका था, पाचनशक्ति बिगड़ गई थी और इन्हें अलकोहल (मद्य) पीने की इच्छा होती थी, बारी का ज्वर आने लग गया था, रक्त के लाल परमाणु नष्ट हो गये थे। नासिका से रक्त गिरता था, रात्रि को भरपूर निद्रा नहीं आती थी और मुंह का स्वाद बिगड़ गया था। डाक्टर ने इन

बच्चों से तम्बाकू छुड़ाया और वे केवल ६ मास के उपरान्त स्वस्थ हो गये।

प्रो० रोफ ने म्युनिग्रायर्स के कैंसर इन्स्टीच्यूट में हजारों रोगियों की परीक्षा करके बतलाया कि इनमें बहुत ही बड़ी संख्या में फेफड़े गले मुँह और श्वास नाली के कैंसर के रोगी ८० प्रतिशत तम्बाकू का प्रयोग करते थे।

तम्बाकू का प्रभाव सन्तान की उत्पत्ति पर भी पड़ता है। परिणाम-स्वरूप तम्बाकू सेवी पुरुष के वीर्य के सन्तान उत्पत्ति करने वाले कीटाणु मरे हुए पाये गये हैं। कितने ही विचारशील पुरुषों का अभिमत है कि तम्बाकू शराब से अधिक हानिकर है।

अमेरिका के एक प्रसिद्ध विद्वान् का कथन है कि यदि शैतान की ओर से घोषित किया जाये कि मानव जाति को जो वस्तु सबसे अधिक हानि पहुंचाती है वह कौनसी है, उसे पारितोषिक दिया जायेगा, तो यह अधिक सम्भव है कि तम्बाकू शराब को हरा दे।

जिस पदार्थ को पशु भी न खाये उसका सेवन मनुष्य करे यह लज्जास्पद है। मानव विवेक से काम ले। *

चाय

तम्बाकू के उपरान्त यदि किसी वस्तु का अधिक प्रचार हुआ है तो वह पदार्थ चाय ही है। चाय भारत ही क्या समस्त संसार का उत्तम पेय पदार्थ बना हुआ है। स्टेशनों की दीवारों पर, सार्वजनिक चौराहों पर, अस्पतालों और दुकानों पर, बस मोटर और ट्राम्बों पर, तथा समाचार पत्रों के पृष्ठों पर "चाय भारत का सर्वोत्तम पेय" शीर्षक विज्ञापन लिखा रहता है। किसान, मजदूर, राजा, रंक, दुकानदार, स्त्री, पुरुष,

* विशेष ज्ञान के लिए हमारी "हमारा शत्रु अर्थात् तम्बाकू" पुस्तक पढ़ें। मूल्य ≈)॥

बाल, वृद्ध इत्यादि सब को चाय पीने से स्फूर्ति आती है। चाय गर्मी में ठण्डक तथा सर्दी में गर्मी पहुँचाती है। ज्वर को रोकती है। बुढ़ापे को दूर भगाती है, शरीर में नव-जीवन का सचार करती है थकावट को दूर करती है। मस्तिष्क को ताजा करती है। इत्यादि अनेक प्रकार की असत्य बातों का प्रचार किया जाता है।

लाखों रुपये प्रचार तथा विज्ञापन पर व्यय किये जाते हैं, विक्रय-साहित्य बांटा जाता है। गांव-गांव तथा कस्बों और शहरों मे ग्रामोफ़ोन पर गाने सुना-सुनाकर चाय का प्रचार करते हैं। चाय बनाना सिखाते हैं। प्रचार समितियां चाय बनाकर प्याले बिना मूल्य के पिलाती हैं। इसी प्रकार बाजे बजाकर चाय का विज्ञापन किया जाता है। चाय का प्रचार नमूने की चाय बिना मूल्य के देकर चाय पीने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है।

चाय का वर्णन हमारे प्राचीन साहित्य में नहीं मिलता है। कहा जाता है कि चाय की जन्मभूमि चीन है। भारत में भी चाय, आसाम बंगाल, बिहार, मद्रास, पंजाब, उत्तर प्रदेश, मैसूर, त्रावणकोर, कोचीन में उत्पन्न होती है। भारत और लंका संसार में ९० प्रतिशत उत्पन्न करने वाले देश हैं। भारत में अंग्रेज ने ही चाय की उत्पत्ति को प्रोत्सा-दिया था। ईस्टइण्डिया कम्पनी ने चाय के सारे बागों को अपने हाथ में ले लिया था। आज भी चाय का धन्धा विदेशी पूँजीपतियों के हाथों में है। भारत प्रतिवर्ष २५ करोड़ रुपये की चाय विदेशों मुख्यतः ब्रिटेन, को भेजता है। लगभग ३६ करोड़ की जनसंख्या वाले भारत में चाय की कितनी खपत होती होगी इसका अनुमान ही लगाया जा सकता है।

ईस्टइण्डिया कम्पनी ने लगभग १ सेर चाय सन् १६६४ ई० में इंगलैण्ड के तत्कालीन सम्राट् चार्ल्स द्वितीय को भेंट की थी। महाराणी कैथरीन को यह चाय बहुत ही पसन्द आई। परिणाम स्वरूप इङ्गलैण्ड में इसका शीघ्र ही प्रचार हो गया।

चीन में चाय का प्रचार बहुत पहले से था परन्तु योरोप में इसका प्रचार सतरहवीं और अठारहवीं शताब्दी में हुआ। तदुपरान्त इसका प्रचार बढ़ता ही जाता है। विज्ञापन के युग में अभी और भी इसका प्रचार बढ़ेगा ही। भारत के ग्रामों में भी चाय दूध के स्थान पर स्वागत समारोह पर दी जाने लगी है सहभोज और सहपान के स्थान पर 'टी पार्टी' नाम लोक-विख्यात हो चला है।

"दुग्धं वै बलम्" "दूध ही बल है" पर विश्वास करने वाला भारतीय चाय के पीछे दौड़ा जा रहा है। वास्तव में दूध के अभाव में ही चाय ने शिर उभारा है। नगरनिवासी यह समझते हैं कि हमें तो विशुद्ध दूध प्राप्त होना कठिन है जो प्राप्त होता है वह क्रीम निकला हुआ दूध पानी होता है। उसमें भी ऊपर का पानी मिला होगा, वह भी पर्याप्त महंगा पड़ता है। एक चाय का कप एक आने में आता है उतने दूध के लिए चार आने व्यय करने पड़ते हैं और वह भी विशुद्ध नहीं होता। चाय से थोड़े समय के लिए मस्तिष्क में चेतनता तो आती है, इसलिये चाय पीने लगे हैं। ग्रामीण भी नगर वालों का अनुकरण करने लगे हैं। विवाह आदि समारोहों पर दूध के लिए क्यों पैसे व्यय किये जायें। थोड़ी चाय से ही काम चलाते हैं। परन्तु वह यह नहीं समझते कि चाय पीकर हमें अपने स्वास्थ्य से खिलवाड़ कर रहे हैं।

चाय एक प्रकार से वृक्षों की सूखी हुई पत्तियां होती हैं। यह पत्तियां झाड़ी पर लगती हैं। चाय उष्ण कटिबन्ध की पैदावार है। इसकी पैदावार के लिये ढालू भूमि तथा अधिक गर्मी तथा तथा अधिक वर्षा की आवश्यकता होती है। भारत के पहाड़ी प्रदेश जहाँ पर वर्षा अधिक होती है, भूमि ढालू है, चाय बहुत अधिक उत्पन्न होती है। इसकी झाड़ियाँ पाँच सात फीट ऊँची होती हैं। एक बार लगाने पर चार-पाँच वर्ष में चाय की पत्तियां आने लगती है और पच्चीस तीस वर्ष तक लगातार चाय की पत्तियां आती रहती हैं। मजदूरों की पत्तियां तोड़कर छाया में सुखाने तथा कड़ाही में

भूनने के लिये बड़ी आवश्यता पड़ती है। जहां पर मजदूर न हों चाय की पैदावार अधिक नहीं की जा सकती।

चाय की पत्तियाँ विभिन्न प्रकार की होती हैं; लुशाई और कच्छार की पत्तियां एक फीट लम्बी होती हैं। आसाम की चाय की पत्तियां ६ इंच तक लम्बी होती हैं। चाय मादक द्रव्य है। इसके पीने से हल्का नशा होता है। तीन विष होते हैं—

थीन, टेनिन, वोलेटाइन तेल-इनमें से थीन एक तीव्र क्षार है। ज्ञान तन्तुओं के संगठन पर इसका बहुत ही उत्तेजक और विषैला प्रभाव पड़ता है। चाय के पीने से जो एक हल्का सा आनन्द प्रतीत होता है वह इसी क्षार का प्रभाव है।

टेनिन एक तीव्र कब्ज [अजीर्ण] करने वाला पदार्थ है। जिससे पाचन शक्ति बिल्कुल नष्ट हो जाती है। उदर में विभिन्न प्रकार के विकार उत्पन्न हो जाते हैं। नसों का सूझ जाना। रक्त का इकट्ठा हो जाना आदि। पुनः आपरेशन की आवश्यकता पड़ने लगती है।

वोलेटाइन तेल में निद्रा को नष्ट कर देने की शक्ति है। जिसके कारण से नेत्रों के अनेकों रोग हो जाते हैं। दूध घी के प्रयोग के समय में भारत में ऐसे व्यक्ति उत्पन्न हुए हैं जिन्होंने १०० वर्ष से अधिक आयु का उपभोग किया है और आंखों की ज्योति ठीक अवस्था में रही है। कभी आँखें दुखी भी नहीं हैं। परन्तु चाय के समय पांच-पांच छः-छः वर्ष की अवस्था वाले बालकों की आंखों पर चश्मे [उपनेत्र] फिट करने पड़ते हैं। यह सब चाय महाराणी की कृपा कही जा सकती है।

कहा जाता है कि बुढ़ापे में चाय स्फूर्ति को लाती है। परन्तु यह केवल भ्रांति है। यह विक्रेताओं का झूठा प्रचार है। वृद्धावस्था में चाय पीने वालों को निद्रानाश, कम्पन, मस्तिष्क की गड़बड़ और हृदय की धड़कन आदि रोग हो जाते हैं।

कहा जाता है कि चाय में गर्म पानी तो पेट में जाता है जो लाभकर होता है। परन्तु पानी के साथ विष भी तो जाता है जो नशा

करता है और विभिन्न प्रकार के रोगों को उत्पन्न करता है । इन विष-मय नशे को उत्पन्न करने वाले पेय पदार्थों में ही मानव की आयु का ह्रास हो रहा है ।

चाय भी ऐसा ही पदार्थ है जिसकी आदत पड़ जाती है । आज घर-घर में चाय के पात्र मिलेंगे, लाखों रुपये चाय के प्लाटों पर व्यय हो रहा है । आदत ऐसी पड़ती है कि दो आने प्रतिदिन कमाने वाला मजदूर भी जब तक एक प्याला चाय का नहीं पी लेता शान्ति नहीं होती ।

बुद्धि और स्वास्थ्य को नष्ट करने वाले पदार्थों का प्रयोग एकदम बन्द कर देना चाहिये । झूठे विज्ञापनों के प्रचार की ओर सरकार का ध्यान भी जाना चाहिये, वास्तविकता के विपरीत विज्ञापन नहीं होना चाहिये ।

चाय के साथ-साथ कोको, कहवा, काफी का भी प्रचार है । यह चाय से अधिक नशा करते हैं और चाय की तरह व्यवहार में लाये जाते हैं ।

कोको में एक क्षार थियोक्रोमाइन होता है.यह हृदय की धड़कन और मस्तिष्क की शक्ति पर बुरा प्रभाव डालता है ।

कहवे में काफीन नामक एक विष और अधिक होता है जो ७५% होता है यह कड़वा विष है । यह हृदय गति को सुस्त कर देता है ।

राष्ट्रपिता महात्मा गांधी के शब्दों में "यह पदार्थ राष्ट्र को डुबाने के लिये काफी उद्योग कर रहा है इसने सहस्रों स्त्री पुरुषों की क्षुधा उड़ादी है । यह गरीबों का फालतू खर्च है ।"

——

अफीम–गाञ्जा, सुलफा आदि

अफीम भी एक मादक द्रव्य है। भारत में यह पर्याप्त रूप में उत्पन्न होती थी, भारत लगभग सात आठ करोड़ रुपये की अफीम चीन को भेजता था, किन्तु चीन से समझौता हो जाने के कारण अफीम भेजना बन्द होगया है, इसलिए अफीम की उत्पत्ति को प्रोत्साहन नहीं रहा है, पुनरपि उत्तरप्रदेश, बिहार, बङ्गाल और मध्यभारत के मालवा प्रदेश के राज्यों में थोड़ी-सी उत्पन्न होती है।

अफीम के सेवन से अजीर्णता बढ़ती है; पाचन शक्ति नष्ट हो जाती है, श्वास रोगों, दमा आदि को उत्पन्न करती है। बुद्धि को मन्द करती है। मस्तिष्क की शक्ति को नष्ट करती है और चिड़चिड़ेपन को उत्पन्न करती है। शरीर को सुखाती है।

तम्बाकू का सेवन बुरा है, परन्तु मनुष्य उसे छोड़ना चाहे तो छोड़ सकता है, परन्तु अफीमची का अफीम छोड़ना बड़ा कठिन है। साधारण और सरल काम नहीं है। अफीम खाने की आदत पड़ जाने पर बुरी दशा हो जाती है। जब तक अफीम न मिल जाये तबतक संसार में कुछ नहीं सुहाता। अफीमची के स्नायुमण्डल सदा के लिए निर्जीव हो जाते हैं। अफीम मस्तिष्क को मन्द करके ज्ञान-तन्तुओं को मूर्छित कर देती है। जब मस्तिष्क चेतनाहीन हो जाता है, तब श्रवण-शक्ति स्वरेन्द्रिय और दृष्टि पर भी उसका बुरा प्रभाव पड़ता है।

यदि कोई व्यक्ति ३ माशा अफीम प्रतिदिन खाता हो और उसे ३ माशा के स्थान पर २ माशा अफीम दे दी जाये तो वह और एक माशा या एक माशा से अधिक लेने के लिये छटपटायेगा। यदि चार माशा अफीम दे दी जाये तो बड़े चाव से खाजायेगा। हाँ, यदि बिल्कुल ही बन्द करदी जाए एक माशा भी न दी जाये तो हताश होगा और बेचैन हो जायेगा।

कहा जाता है कि अफीम बच्चों को शक्ति प्रदान करती है, युवकों

को नष्ट करती है और बुड्ढों को सहारा देती है। परन्तु यह सब बातें बुद्धि से परे की हैं। अधिकतर स्त्रियां जो खेतों या कारखानों में काम करती हैं वे अपने बच्चों को अफीम देकर सुला देती हैं, अफीम के नशे बच्चा दो चार घण्टे तक चुपचाप पड़ा रहता है। परन्तु परिणाम बड़ा घातक होता है। अधिकतर बच्चों के जिगर खराब हो जाते हैं, बच्चे सूख जाते हैं और वह विभिन्न रोगों के कारण अकाल में ही कराल काल कवल बन जाते हैं। उपरोक्त बड़ी भयानक बुरी प्रथा है। बुद्धिमती स्त्रियों को इससे दूर रहना चाहिए।

यह ठीक है कि किन्हीं रोगों में अफीम औषध का काम देती है। बढ़ते हुए सांघातिक लक्षणों को रोकती है। विशेषकर दर्द की वेदना को दूर करने में सहायक वस्तु है।

पूर्वीय देशों में अफीम का प्रचार बढ़ने का कारण पश्चिमी-देशों के व्यापारी ही हैं। इन्होंने पूर्वीय देशों में अफीम आदि मादक द्रव्यों का व्यवसाय करके इनके महत्व को बढ़ा दिया है। पुनरपि अफीम की अधिक बढ़ोतरी का कारण अफीमचियों का संघ ही है। अफीमची लोग परस्पर में इसका प्रचार करते हैं। अफीम की आदत नहीं छुटती यह बात तो नहीं है, कोई छोड़ना चाहे तो छोड़ सकता है। परन्तु अफीम छोड़ने के लिए बड़ी भारी मानसिक शक्ति की आवश्यकता है।

अफीमची किसी बात को निश्चयपूर्वक नहीं कह सकता, उसकी शक्ति नष्ट हो जाती है। ब्रिटिश सरकार यदि अपनी सेना में किसी को अफीम का सेवन करते देख लेती थी तो उसे तत्काल नौकरी से हटा देती थी, क्योंकि उसकी सेवा संदिग्ध समझी जाती थी।

अफीम के साथ ही साथ गांजा, सुल्फा आदि भी नशा उत्पन्न करने वाले पदार्थ हैं। इन सब से दूर रहना चाहिए। यह सब मनुष्य के लिए अभक्ष्य और अपेय पदार्थ हैं।

मीठा और मिठाई

ईख की खेती भारत में प्राचीन काल से चली आई है, भारत में गन्ना और गन्ने का रस दैनिक प्रयोग में लिया जाता है। आज कल देशी गन्ने के अतिरिक्त कई प्रकार के बीज बना लिये गये हैं। परन्तु इन सब में देशी गन्ना ही अच्छा होता है। अन्य सब प्रकार के गन्नों का रस प्रायः वायुकारक ही सिद्ध हुआ है। अतः देशी गन्ने को चूसने और रस पीने के काम में लिया जा सकता है।

गन्ने से ही गुड़, शक्कर खाण्ड और चीनी तैयार की जाती है। गांवों में गुड़ और शक्कर का व्यवहार बहुत अधिक होता है। चीनी की मिलों का देश में प्रचार होने लगा है। शहरों में चीनी अधिकतया प्रयोग में लाई जाती है।

गुड़ और शक्कर में उष्णता अधिक होने से ब्रह्मचारी और स्वास्थ्य प्रेमियों को इनका प्रयोग नहीं करना चाहिये। देशी गन्ने को चूसने के काम में ब्रह्मचारी ले सकते हैं। खांड और चीनी अपेक्षाकृत गर्म नहीं होतीं, अतः इनका प्रयोग गृहस्थ लोग साधारण रूप में कर सकते हैं। इनसे भी अच्छा मीठा मिश्री का होता है।

चाहे किसी प्रकार का भी मीठा हो बहुत थोड़ी मात्रा में भोजन के रूप में ग्रहण करना चाहिये। मीठे का अधिक प्रयोग करने से पेट और दांतों की अनेक प्रकार की बीमारियाँ पैदा होजाती हैं। इनका प्रभाव तात्कालिक मालूम नहीं होता परन्तु अधिक आयु में स्पष्ट प्रतीत होता है। ५० वर्ष की आयु से ऊपर गुड़, और शक्कर का प्रयोग साधारण रूप में किया जा सकता है। जिन पदार्थों के खाने से उष्णता उत्पन्न होवे उन पदार्थों का ग्रहण ब्रह्मचारी लोग भूल कर भी न करें।

बाजारों में अनेक प्रकार की मिठाइयाँ तैयार की जाती हैं जो कि स्वास्थ्य के लिये अत्यन्त हानिकर होती हैं। राह चलते लोग मिठाइयों की सजी हुई दुकानों को देखकर खरीदते और खा लेते हैं परन्तु इसका

कुपरिणाम रोगों वे रूप में भोगना पड़ता है। गृहस्थ लोग विवाह संस्कार ग्रादि विशेष ग्रवसरों पर घरों में भी मिठाइयां तैयार करवाते ग्रौर खाते हैं। यद्यपि बाजारू मिठाई से यह मिठाई शुद्ध ग्रौर ग्रच्छी होती है परन्तु इस का प्रयोग भी ग्रल्प मात्रा में करना चाहिये। खमीरा उठाकर जो मिठाई बनाई जाती हैं उनका खाना तो स्वास्थ्य को उत्तर देना ही समझें।

मिठाइयों का लोभ लवण की भांति व्यापक तो नहीं है परन्तु ग्रवसर होने पर ग्रधिक मात्रा में मिठाई को खा लेने से हानि की कम सम्भावना नहीं होती।

मधु (शहद) का मीठा ग्रौषधियों का सार होने से ग्राह्य है, परन्तु यह भी उचित मात्रा में चाहिये ग्रौर सर्वदा नहीं। ऐसे ही खजूर ग्रादि से भी मीठा बनता है जो कि ग्रन्य मीठों की भाँति ही प्रयोग में लेना ठीक होता है।

सार यह है कि ब्रह्मचारियों ग्रौर स्वास्थ्य के ग्रभिलाषियों को इसके लोभ से बचना चाहिये।

उपसंहार

बुद्धि ग्रौर विवेक से काम लेना मानव का धर्म है, जो-जो पदार्थ सात्विक लाभकारी ग्रौर भक्ष्य हैं उनका ही सेवन करना चाहिये। शेष सभी हानिकारक पदार्थों का सर्वथा त्याग कर देना चाहिए। जिससे शरीर हृष्ट-पुष्ट होकर मानव ग्रपने चरमलक्ष्य मोक्ष या ईश्वर तक पहुँचने में समर्थ हो सके। मानवीय देह की इसी में सफलता है।

अवश्य पढ़िये

१. राष्ट्र निर्माण में गुरुकुल का स्थान (भाग १)

इसके लेखक मुनि देवराज जी विद्यावाचस्पति गुरुकुल काङ्गड़ी के उन स्नातकों में से हैं जिन पर भारत को अभिमान है। इसमें अनुभवी लेखक ने राष्ट्र निर्माण का चित्रण इतना सुन्दर किया है कि पुस्तक को समाप्त किये बिना छोड़ने को मन नहीं चाहता। कम्यूनिज्म के बढ़ते हुए प्रवाह को रोकने का सर्वोत्तम हल इसमें पढ़िये और पढ़िये आदर्श राष्ट्र की सुन्दर रूपरेखा। मूल्य केवल ।।)

२. विरजानन्द चरित

सर्वविध क्रान्तिकारी स्वामी विरजानन्द जी का यह अनुपम जीवन स्वामी वेदानन्द जी महाराज ने लिखा है। इसमें ऐसी अनेक घटनायें मिलेंगी जो अब तक किसी भी जीवन चरित में नहीं आई हैं। पृष्ठ २००, बढ़िया कागज, सुन्दर छपाई। फिर भी मूल्य १।।) मात्र।

३. व्यायामसन्देश

आचार्य भगवानूदेव जी की वह उत्कृष्ट रचना है जिसकी पर्याप्त समय से व्यायाम प्रेमी सज्जन चातक की भांति बाट देख रहे थे। इस प्रकार की उत्तम सामग्री एकत्र किसी भी पुस्तक में न मिलेगी। साथ ही सचित्र होने के नाते इसकी शोभा द्विगुणित हो उठी है। मूल्य १)

४. आसनों के व्यायाम (सचित्र)

ब्र० वेदव्रत जी ने इस पुस्तक में तीन दर्जन आसनों का परिचय, करने की विधि और लाभ का अति सरल भाषा में वर्णन किया है। प्रत्येक आसन के साथ-साथ चित्र होने के कारण विषय को समझने में कुछ भी कठिनता नहीं होती। इसमें केवल मुख्य-मुख्य आसनों पर ही प्रकाश डाला गया है। मूल्य ।।) मात्र।

५. सन्ध्या-अष्टाङ्गयोग

श्री स्वामी आत्मानन्द जी महाराज ने सन्ध्या की वैज्ञानिक ढङ्ग से आध्यात्मिक व्याख्या की है जो बड़ी ही रोचक और सारगर्भित है। अध्यात्म पिपासु महानुभाव एक-एक प्रति अवश्य ही मंगवावें। बढ़िया कागज पर सुन्दर छपाई और पक्की सुनहरी जिल्द के २०० पृष्ठ के गुटके का मूल्य केवल ।।।)।

आचार्य भगवान्देव जी द्वारा लिखित पुस्तकें:—

१. ब्रह्मचर्य के साधन पांचों भाग	१।।।=)	६. स्वप्नदोष की चिकित्सा	=)।।
२. ब्रह्मचर्यामृत	=)।।	७. व्यायाम का महत्त्व	≡)
३. तम्बाकू का नशा	।=)	८. नेत्र रक्षा	≡)
४. पापों की जड़ शराब	।–)	९. बिच्छू विष चिकित्सा	=)
५. बाल विवाह से हानियां	–)	१०. रामराज्य कैसे हो ?	≡)

इनके अतिरिक्त मूल वेद, वेदभाष्य, गीता, उपनिषद्, महर्षि दयानन्द कृत सभी ग्रन्थ, महापुरुषों के जीवन चरित्र, सन्ध्या-हवन, ब्रह्मचर्य, सदाचार सम्बन्धी धार्मिक ग्रन्थ, आर्यकुमार परिषद् द्वारा संचालित १. सिद्धान्त सरोज, २. सिद्धान्त रत्न, ३. सिद्धान्त भास्कर, ४. सिद्धान्त शास्त्री, ५. सिद्धान्त वाचस्पति परीक्षाओं की पाठ्य पुस्तकें और विरजानन्द संस्कृत परिषद् देहली द्वारा संचालित १. संस्कृत सुमन, २. संस्कृत विनोद, ३. संस्कृत विज्ञ और ४. संस्कृत प्रवीण परीक्षाओं की पाठ्य पुस्तकें इत्यादि सभी ग्रन्थ हमारे यहाँ उचित मूल्य से मिलते हैं। विशेष जानकारी के लिये पत्र व्यवहार करें।

विश्वम्भर वैदिक पुस्तकालय—गुरुकुल झज्जर, जि० रोहतक

सूचीपत्र

आर्य आयुर्वैदिक रसायनशाला (रजि०)

गुरुकुल झज्जर (रोहतक)

उद्देश्य एवं विशेषतायें—

१. शुद्ध शास्त्रीय एवं प्रामाणिक औषधियों द्वारा जनता की सेवा और आयुर्वेद का प्रचार करना हमारा मुख्य उद्देश्य है।

२. मंहगाई की ओर ध्यान न देकर सभी जड़ी-बूटियां ताजा शुद्ध पवित्र ही औषधनिर्माणार्थ प्रयुक्त की जाती हैं। अतः रोग पर उनका पूरा-पूरा प्रभाव पड़ता है।

३. आसव-अरिष्ट, रस, भस्मादि जितनी -पुरानी हों उतनी ही श्रेष्ठ होती हैं। इनका हमारे यहां पुराना सग्रह (स्टोक) विद्यमान रहता है।

४. औषधियों द्वारा जो थोड़ा बहुत लाभ होता है वह किसी व्यक्ति विशेष की जेब में न जाकर धर्मार्थ औषधालय एवं गुरुकुल के पवित्र कार्य में व्यय होता है। जिससे सहस्रों निर्धन रोगी स्वास्थ्य प्राप्ति करते हैं।

५. पत्र व्यवहार द्वारा भी रोगी को प्रत्येक रोग के विषय में बिना फीस उचित परामर्श दिया जाता है। पत्रोत्तर के लिए जवाबी पत्र आना आवश्यक है।

इत्यादि विशेषताओं को देखते हुये आशा है कि प्रत्येक आयुर्वेद प्रेमी हमारी रसायनशाला को हमेशा याद रख अपने धन का सदुपयोग करेंगे।

निवेदक—

अध्यक्ष—आर्य आयुर्वैदिक रसायनशाला
गुरुकुल झज्जर रोहतक।

रसायनशाला गुरुकुल झज्जर की औषधियां मंगाने के नियम—

१. इससे पूर्व के सब सूचीपत्र रद्द समझे जायें।

२. औषधियां वी. पी. द्वारा या नकद मूल्य प्राप्त होने पर ही भेजी जाती हैं। उधार का नियम नहीं है।

३. डाक-व्यय एवं पैकिंग खर्च भी ग्राहक को देने होंगे।

४. हम औषधियां बड़ी सावधानी के साथ पैक करके भेजते हैं, अतः रास्ते के नुकसान के हम जिम्मेवार नहीं।

५. ।) से कम की वी० पी० नहीं भेजी जाती। इस अवस्था में कम माल मंगाने वालों को आर्डर के साथ टिकटों द्वारा मूल्य तथा डाक-व्यय आदि भेजना चाहिये।

६. ग्राहक अपना नाम, ग्राम, डाकघर जिला तथा रेलवे से दवा मंगानी हो तो रेलवे स्टेशन आदि स्पष्ट लिखें जिससे माल पहुँचने में किसी प्रकार की गड़बड़ी न हो।

७. औषधियाँ सीधी रसायनशाला से मँगाने से पूर्व आप यह देख लें कि कहीं समीप हमारा एजेण्ट तो नहीं है। यदि समीप के एजेण्ट से औषधी ली जाये तो डाक-खर्च आदि की बचत हो जाती है।

८. आजकल डाकखर्च इस प्रकार है—

ऽ॥ सेर तक ॥।≡), ऽ१ सेर तक १।≡): इसके अतिरिक्त पैकिंग व्यय पृथक् है। अतः सेर से अधिक का आर्डर दें तो समीप के रेलवे स्टेशन का नाम अवश्य लिखें। रेलवे द्वारा मंगाने से खर्च बहुत कम पड़ता है।

९. वी० पी० मंगाने वाले सज्जनों को चौथाई मूल्य पहले पेशगी भेजना चाहिए अथवा पूरा मूल्य डाक-व्ययादि पूर्व मनीआर्डर द्वारा

आने पर रजिस्टर्ड पारसल द्वारा ग्राहक के पास सुरक्षित औषधि भेज दी जाती है।

१०. यदि पत्र डाले डेढ़ सप्ताह हो जाए और माल अथवा कोई उत्तर न मिले तो समझना चाहिए कि या तो पत्र नहीं मिला अथवा पत्र पर पता साफ नहीं था। ऐसी अवस्था में दुबारा पत्र डालना चाहिए।

११. ग्राहकों से सविनय प्रार्थना है कि वे आर्डर देकर पोस्ट या रेलवे पार्सल आने पर लेने से इनकार न करें। इससे गुरुकुल की व्यर्थ हानि होती है। बिल आदि में भूल प्रतीत हो तो पार्सल छुड़ा लेना चाहिये। बाद में लिखने पर भूल सुधार दी जाएगी।

१२. समस्त पत्र-व्यवहार हिन्दी भाषा में ही निम्न पते पर करें।

अध्यक्ष—

आर्य आयुर्वेदिक रसायनशाला गुरुकुल झज्जर (रोहतक)

एजेन्सी नियम

१. कोई भी सज्जन १००) रु० की नकद एक साथ औषधियां लेने पर एजेण्ट बन सकता है। एजेण्टों को २५ प्रतिशत कमीशन दिया जाता है।

२. १०००) का माल एक साथ लेने पर ३० रु० प्रतिशत कमीशन देते हैं तथा पेटेण्ट औषधियों पर ३३⅓ प्रतिशत कमीशन दिया जाता है।

३. मुक्ता, स्वर्ण, रजत आदि भस्मों तथा स्वर्णमालती वसन्त पर २५ प्रतिशत से अधिक कमीशन नहीं दिया जाता तथा च्यवनप्राश का थोक भाव ६) सेर है। २० सेर च्यवनप्राश इकट्ठा लेने पर ही च्यवनप्राश पर २५ रु० प्रतिशत कमीशन दिया जाता है।

४. एजेण्ट को मालगाड़ी का पूरा किराया तथा सवारी गाड़ी का आधा किराया रसायनशाला की तरफ से दिया जाएगा। एजेण्ट को

साफ-साफ लिखना चाहिए कि माल सवारी गाड़ी से मँगाना है अथवा मालगाड़ी से ।

५. माल बड़ी सावधानी के साथ भेजा जाता है, मार्ग की टूट-फूट के जिम्मेवार हम नहीं होंगे ।

६. एजेण्टों को कैलेण्डर, विज्ञापन, सूचीपत्र आदि प्रचार सामग्री भी साथ भेजी जाती है ।

७. धर्मार्थ औषधालय एवं आयुर्वेदिक डिस्पेन्सरियों के लिए विशेष सुविधायें दी जाती हैं । विशेष जानकारी के लिए पत्र व्यवहार करें ।

यदि आपके कस्बे या शहर में हमारी एजेन्सी नहीं हो तो हमें तुरन्त ऐजेन्सी के लिए लिखें और धन यश लाभ करें । एजेण्टों की सब जगह आवश्यकता है ।

पत्र व्यवहार का पता—

अध्यक्ष—आर्य आयुर्वेदिक रसायनशाला

गुरुकुल झज्जर (रोहतक)

———

हमारे कारखाने में यज्ञ तथा पूजा आदि का सर्व प्रकार का सामान तैयार किया जाता है ।

मिर्माता

सीताराम आर्य एण्ड संज़

१७६ लाजपतराय मार्कीट, देहली

पेटेण्ट औषधियाँ

१. नेत्र ज्योति सुर्मा—सुर्मे तो बाजार में पर्याप्त मात्रा में मिल जाते हैं परन्तु इतना लाभप्रद और सस्ता सुर्मा मिलना कठिन ही नहीं असम्भव है। इसके लगाने से आंखों के सब रोग जैसे आँखों में पानी बहना, खुजली, लाली, जाला, फोला, नजर की कमजोरी आदि विकार दूर होते हैं तथा बुढ़ापे तक आंखों की रक्षा करता है। दुःखती आँखों में भी इसका प्रयोग अत्यन्त लाभप्रद है। मूल्य ।।) शीशी

२. नेत्रज्योति सुर्मा विशेष—कुकरे, फोले, रोहे, जाले आदि में विशेष लाभप्रद है। मूल्य १) शीशी

सेवनविधि—सलाई को शुद्ध जल से धोकर पोंछ लें। फिर सुर्मे में भर कर झाड़ कर लगायें तथा थोड़ी मात्रा में लगायें। प्रातः सूर्योदय से पूर्व तथा सायं सोते समय लगाना चाहिये। लाल मिर्च खटाई आदि का सेवन न करें।

३. नेत्रामृत—लाली कड़क, धुन्ध, ढलकवा, रोहे तथा भयंकरता से दुखती आँखों के लिये जादू भरा विचित्र योग है।

बड़ी शीशी ।।=) छोटी ।=)

सेवन विधि—ड्रोपर से बूँद बूँद डालें।

४. बलदामृत—ताजा अंगूरों के स्वरस से तैयार की हुई सुमधुर टानिक—हृदय, उदर, एवं मस्तिष्क रोगों में रामबाण है। श्वास, कास, यक्ष्मा, तथा फेफड़ों की निर्बलता दूर करके अतीव बल देती है, पीने में अत्यन्त मीठी व रसायन है। मस्तिष्क का कार्य करने वाले तथा विद्यार्थियों के लिये अत्यन्त लाभदायक है।

मूल्य बड़ी शीशी ५) छोटी २)

सेवन विधि—भोजनोपरान्त २ तोले दवा में बराबर का जल मिला प्रातः सायं सेवन करें।

५. ज्वरामृत—प्रत्येक प्रकार के ज्वर की अत्युत्तम औषध है। नए, पुराने, बिगड़े हुए मलेरिया, विषमज्वर में यह अमृत का काम करती है। चढ़े बुखार में भी इसे दे सकते हैं।

मूल्य बड़ी शीशी ५) छोटी २)

सेवन विधि—१ से दो तोले तक बराबर का गर्म जल मिलाकर दिन में दो तीन बार।

६. बालरोगामृत—बालकों के हरे पीले दस्त, अपच, अजीर्ण तथा दांत निकलते समय के सभी रोग दूर करके बालकों को मोटा ताजा बनाता है। मीठा होने के कारण बच्चे चाव से पीते हैं।

मूल्य बड़ी शीशी ५) छोटी २)

सेवन विधि—१०, १५ बूंद दूध या जल में मिलाकर खाली पेट सेवन करायें।

७. बालरोगामृत रस—बालकों के प्रत्येक रोगों में अत्यन्त लाभप्रद सिद्ध हुआ है। मूल्य ३) तोला

सेवन विधि—½ रत्ती से २ रत्ती तक अवस्थानुसार शहद में मिलाकर चटायें।

८. सूखियारोगामृत रस—जिन गृहस्थों के बच्चे सूख सूख कर मरते हैं उनके लिए यह अमृत का काम करता है।

मूल्य ३) तोला

सेवन विधि—½ रत्ती से २ रत्ती तक अवस्थानुसार शहद में मिलाकर चटायें।

९. सूखियारोगामृत तैल—सूखिया रोग में मालिश के लिए है।

मूल्य ३) आध पाव

सेवन विधि—हल्के हाथ से मालिश करें।

१०. व्रणामृत—भयंकर फोड़े, फुन्सी गले सड़े घाव तथा नासूर (सरह) की प्रसिद्ध औषधि है। मूल्य १) शीशी

सेवन विधि—फोड़े या घाव को नीम के पानी से सेक और धोकर मरहम को कपड़े पर लगाकर घाव आदि पर चिपका दें। फोड़े को पकाने के लिये शुष्क सेन्धे नमक की पोटली से सेक करें।

११. पाचनामृत—मन्दाग्नि, अरुचि, अजीर्ण, पेट का फूलना, भारीपन, शूल, जी मचलना आदि पेट के सभी रोगों को दूर करती है। जिगर व तिल्ली की महौषधि है।

मूल्य बड़ी शी० ५) छोटी २)

सेवन विधि—२ तोले तक बराबर का जल मिला भोजनोपरान्त सुबह शाम सेवन करें।

१२. रक्तपित्तामृत—शरीर के मुख, नासिका गुदा आदि किसी भी मार्ग से तथा साँप के काटने, बवासीर तथा अन्य किसी भी रोग के कारण कितनी ही अधिक मात्रा में खून गिरता हो उसे बन्द करता है। रक्तपित्त की अचूक औषध है। मूल्य ४) शीशी

सेवन विधि--२ तोले दवा बराबर का जल मिलाकर दोनों समय भोजनोपरान्त अथवा आवश्यकतानुसार यथासमय।

१३. स्वप्नदोषामृत रस—स्वप्नदोष से हताश युवकों के लिये अत्युत्तम है। प्रमेह तथा वीर्य सम्बन्धी समस्त रोगों को समूल नष्ट करती है।

मूल्य बड़ी शी० १ तोला ५) आधी २।।=)

१४. स्वप्नदोषामृत चूर्ण—उपरोक्त रोग में।

मूल्य १) छटांक

सेवन विधि--रस की एक एक गोली तथा चूर्ण को एक माशे से तीन माशे तक प्रातः सायं दूध वा जल के स थ लेना चाहिये। बिना शादी हुए युवक को जल से ही लेना चाहिए। इस दवा के सेवन काल में कब्ज न होने दें। जो युवक निर्बल व वीर्यहीन हों उन्हें दूध से लेना चाहिए। खटाई, कच्चा मीठा, मिर्च लहसुन, प्याज आदि उष्ण वस्तुओं से परहेज रक्खें।

१५ प्रसूतामृत—यह प्रसूता स्त्री (जच्चा) के सभी रोग, ज्वर. कास, अतिसार (दस्त) आदि सब रोगों को समूल नष्ट करके प्रसूता की निर्बलता को दूर करके बल प्रदान करती है ।

सेवनविधि—२ तोले तक दोनों समय भोजन के बाद बराबर का जल मिला कर ।

१६. स्त्रीरोगामृत—स्त्रियों के प्रत्येक रोग में राम बाण है। रक्त व श्वेत प्रदर तथा मासिक धर्म विकार पर अत्यन्त लाभप्रद है। प्रसूता रोग भी नष्ट होते हैं ।

मू० ५) पौण्ड

सेवनविधि—२ तोले भोजनोपरान्त सुबह शाम बराबर का जल मिला कर ।

१७. कर्णरोगामृत—कान से पीप, आना, बहरापन, कर्ण पीड़ा आदि रोगों को समूल नष्ट करता है । प्रति दिन के सेवन से कानों के सभी रोगों की निवृत्ति होती है ।

मूल्य १) शीशी

सेवनविधि—एक दो बून्द गर्म करके कान में डालें ।

१८. पामामृत—यह खुजली की प्रसिद्ध औषधि है । प्रत्येक चर्म रोगों पर अत्यन्त लाभप्रद है ।

१९. दाद नाशक गोलियां—ये गोलियां प्रत्येक प्रकार के दाद को समूल नष्ट करती हैं ।

मू० ॥) तोला

सेवनविधि—पत्थर पर जल से घिस कर लगायें ।

२०. अर्शरोगामृत—यह दवा बड़े परिश्रम के पश्चात् तैयार की गई है । अर्शरोग (बवासीर) खूनी हो या बादी की प्रत्ये प्रकार की बवासीर में रामबाण सिद्ध हुई है । बवासीर की इससे बढ़कर कोई औषधि नहीं है । खून आने को तो इसकी कुछ मात्रा ही बन्द कर देती हैं ।

मूल्य एक मास के लिये १०)

सेवनविधि—एक से दो गोली तक प्रातः सायं धारोष्ण दूध के साथ सेवन करें। यदि कब्ज के कारण मल त्यागते समय खून आता हो तो गोली लेते समय १ तोले से २ तोले तक ईसबगोल के साथ सेवन करें।

२१. शीतपित्तामृत—यह शीतपित्त (छपाकी) पित्त निकलने के रोगों को दूर करती है। पुरानी से पुरानी छपाकी इससे समूल नष्ट होती है। मू० एक मास के लिये ५)

सेवन विधि—२ रत्ती से ४ रत्ती तक शहद में मिलाकर चाटें।

२२. नपुंसक संजीवनामृत—स्वप्नदोषादि रोगों तथा अन्य अप्राकृतिक कारणों से जो पुरुष नपुंसक (नामर्द) हो चुके हैं उनके लिये यह औषधि बहुत लाभदायक है। पुनः पुरुषत्व प्रदान करती है।

मूल्य पीने की दवा ५) तथा रस ३) तोला

२३. नपुंसक संजीवन तिला—(कस्तूरी मिश्रित) यह तिला अत्यन्त परिश्रम से तैयार किया गया है। नपुंसकों के लिए यह अमृत का काम करता है।

मूल्य १०) तोला, आधा तोला ५॥)

सेवन विधि—मूत्रेन्द्रिय के अगले सुपारी भाग व सीवन को छोड़कर १ रत्ती दवा लेकर मालिश करें।

२४. दन्त रक्षक मंजन—दांतों से खून व पीप का आना, दांतों का हिलना, कृमि रोग, दन्त पीड़ा, आदि दांतों के सब रोग दूर करके दांतों को मोती के समान चमकाता है। मूल्य ।।) शीशी

विशेष मंजन १) शीशी

सेवनविधि—सुबह शाम दातुन के समान प्रयोग करें।

२५. दन्त रक्षक तैल—दांतों तथा मुख के सभी रोग दूर करता है। मुख तथा जिह्वा आदि के छाले भी इससे शीघ्र नष्ट होते हैं। दन्त पीड़ा आदि लगाते ही शांत हो जाती हैं। मूल्य ।।) शीशी

सेवनविधि–रुई के फाये को शलाका में लगाकर तैल में भिगो पीड़ा आदि के स्थान पर लगावें ।

२६. संजीवनी तैल—इतिहास प्रसिद्ध संजीवनी बूटी से बड़े परिश्रम से तैय्यार किया गया है। यह यथा नाम तथा गुण है। कटे फटे एवं जले हुये पर अत्यन्त गुणकारी है। बहते हुये खून को लगाते ही बन्द करता है। अन्दर की चोट की भी उत्तम औषधि है। जादू भरा प्रभाव रखती है। मूल्य बड़ी शीशी ऽ= की ५) नमूना ।।=)

सेवनविधि—फाये से घाव आदि पर बार बार लगाये। जल से बचाये रक्खें।

२७. स्वास्थ्यवर्धक चाय—यह चाय स्वदेशी, ताजी एवं शुद्ध जड़ी बूटियों से तैयार की गई है। वर्तमान चाय की भाँति यह नींद और भूख को न मार कर खांसी, जुकाम, श्वास, नजला, सिरदर्द, खुश्की, अजीर्ण, थकान आदि को दूर करती है।

मूल्य ।–) छटांक

सेवनविधि–१ सेर उबलते जल में १ तोला तक इसे डालकर आवश्यकतानुसार दुग्ध चीनी आदि मिलाकर पीयें।

(अष्टवर्ग युक्त)

च्यवनप्राश—शास्त्रोक्त विधि से तैय्यार किया हुआ स्वादिष्ठ सुमधुर और दिव्य रसायन (टानिक) है, इसका सेवन प्रत्येक ऋतु में, स्त्री, पुरुष, बालक व बूढ़े सब के लिये अत्यन्त लाभदायक है। पुरानी खांसी, जुकाम, नजला, गले का बैठना, दमा, तपेदिक तथा सभी हृदय रोगों की अद्वितीय औषध है। स्वप्नदोष, प्रमेह, धातुक्षीणता अन्य सब प्रकार की निर्बलता और बुढ़ापे को इसका निरन्तर सेवन समूल नष्ट करता है। निर्बल को बलवान् और बूढ़े को जवान बनाने की अद्वितीय औषध है। च्यवन ऋषि इसी रसायन के सेवन से बूढ़े से जवान होगये थे। यह आयुर्वेद का प्रसिद्ध औषध है।

मूल्य २) पाव, ३।।।) आध सेर, ७) सेर।

सेवनविधि–प्रातः सायं एक तोला च्यवनप्राश चाट कर ऊपर से गौ अथवा बकरी का दूध पीना चाहिये।

कुष्माण्डावलेह—यह अवलेह पित्त प्रकृति वालों के लिये अमृत सम कार्य करता है। रक्तपित्त का रोगी तो इसके सेवन करते ही स्वस्थ व नीरोग हो जाता है। खून के बहने को तुरन्त बन्द कर देता है। नकसीर के लिये बहुत उपयोगी है। साथ ही पाचक व दीपक है।

मूल्य २) पाव, ७) सेर

सेवनविधि–६ मासे दवा दोनों समय गौ दुग्ध से लें।

कण्टकारि अवलेह—खांसी, दमा, आदि छाती के रोगों के लिये विशेष उपयोगी है।

मूल्य २) पाव

सेवनविधि—३ मासे से एक तोला तक गरम दूध वा जल के साथ दिन में दो बार लें।

कुटजावलेह—खून के दस्त, पुराने दस्त, और खूनी बवासीर के लिये अत्यन्त उपयोगी है।

मूल्य २।) पाव

सेवनविधि—३ मासे से १ तोले तक दिन में दो बार मट्ठे के साथ लें।

घृत प्रकरण

हमारी रसायनशाला में प्रत्येक घृत शुद्ध गोघृत से बनाया जाता है। तथा अत्यन्त सावधानी परिश्रम से शास्त्र विधि से मन्दी-मन्दी अग्नि द्वारा सिद्ध किया जाता है। जिसमें कई घृत तो पच्चीस-पच्चीस तीस-तीस दिन में बनते हैं। अतः सर्वोत्तम हैं। हम बलपूर्वक कह सकते हैं कि ऐसे उत्तम घृत किसी रसायनशाला के नहीं हैं।

ब्राह्मी घृत

इसके सेवन से कुष्ठ (कोढ़) मृगी (हिस्टेरिया) मस्तिष्क की निर्बलता, चक्कर आना, याद किये हुए पाठ का भूल जाना, रक्खी हुई वस्तु याद न रहना आदि दोषों को जड़ से नष्ट कर देता है। और जिसकी स्मरणशक्ति सर्वथा नष्ट हो चुकी हो उसके लिये श्रुतिधर अर्थात् एक बार सुन लेने पर फिर कभी न भूलने वाला बना देता है। स्कूल के विद्यार्थी, दफ्तर के बाबू और वकील आदि मस्तिष्क का काम करने वालों के लिये अत्यन्त लाभदायक है। स्वप्नदोष, सब प्रकार के धातु प्रमेह को दूर करता है। इसके सेवन से स्मरणशक्ति खूब बढ़ती है।

मूल्य आधा पाव ४), एक सेर ३२)

सेवनविधि—६ माशे से १ तोले तक गौ दूध में डाल कर अथवा मिश्री मिलाकर प्रात सायं सेवन करें।

त्रिफलादि घृत

यह घृत आंखों के लिये अत्युत्तम है, इसकी जितनी प्रशंसा करें थोड़ी है। यह आंखों के समस्त रोगों के लिये रामबाण है। इसके सेवन से नेत्रों का कोई रोग नहीं रहता। इससे रतोंधी, आंखों की खुजली, पानी जाना, धुंध, जाला, इत्यादि सब रोग दूर होते हैं। आंखें निर्मल होकर चमकने लगती हैं। सौ वर्ष तक नेत्र ज्योति नवयुवकों के समान बनी रहती है। मोतियाबिन्द में भी लाभदायक है। आंखों के छोटे बड़े सब रोगों पर हितकारी है।

मूल्य ४) आध पाव, ३२) सेर

सेवनविधि—ऊपर वाले की तरह।

फलघृत

यह स्त्रियों के गर्भाशय के सभी रोगों को दूर करता है। जिन स्त्रियों को गर्भ नहीं ठहरता या ठहर कर गिर जाता है या सन्तान निर्बल होती है, उनके लिये अत्युत्तम है। स्त्रियों के शरीर या कमर

के दर्द के लिये बहुत उत्तम है स्त्रियों के आर्तवदोष तथा पुरुषों के वीर्यदोष दूर करता है। जिनके बच्चे मर जाते हैं उन गृहस्थों को इसका सेवन करना चाहिये। जिनके कन्यायें ही होती हैं इसके सेवन से पुत्र उत्पन्न होता है। इसका अनुभव तो सेवन करके ही किया जाता है। संतान रूपी फल का देने वाला यथा–नाम तथा-गुणकारी है। प्रत्यक्ष में प्रमाण क्या। सेवन करें और फल प्राप्त करें।

मूल्य ४) आधा पाव, ३२) सेर

सेवनविधि–प्रातः सायं ६ माशे से एक तोला गौदुग्ध से।

महाबांसादि घृत

वह घृत रक्तपित्त, खांसी, स्वरभेद, हलीमक, गुल्म रोगों में उत्तम है। रक्तपित्त (शरीर के किसी भी अंग से खून निकलना) रोग के लिये तो यह एक मात्र अचूक औषध है। हमने इसको अनेक रोगियों पर अनुभव किया है। हमारे एक ब्रह्मचारी को नकसीर में किसी प्रकार की औषधि से लाभ नहीं हुआ, उसके लिये भा इस घृत ने अमृत का काम किया। अब उसकी नकसीर बन्द है।

मूल्य ५) आधा पाव, ४०) सेर

सेवनविधि—६ माशे से १ तोला तक प्रातः सायं गौ दुग्ध से।

अमृत घृत

यह घृत सव प्रकार के विष स्थावर (संखियादि) जंगम (सर्पबिच्छू-विषादि) को दूर करता है। अपस्मार, उन्माद, क्षय, उदरविकार, पाण्डु, प्लीहा, कामला, हनुस्तम्भ, आदि रोगों में विशेष लाभकारी है। विष-नाश करने में तो अमृत का काम करता है। यह मृत सदृश पुरुषों को भी जीवन प्रदान करता है। यह सर्प विष की अचूक और सर्वोत्तम औषध है। अतः इसे अमृत कहा है। यह सव विषों के नाशक घृतों में श्रेष्ठ है। मूल्य ५) आध पाव, ४०) सेर

सेवनविधि—१ तोले से १ छटांक तक आवश्यकतानुसार गोदुग्ध से।

बृहत्शतावरी घृत

(रक्तपित्त) शरीर के किसी भी अंग से खून निकलता, शिर या किसी भी अंग में जलन होना, मूत्र का लगकर आना, और धातुवों की क्षीणतादि रोगों के लिये यह घृत अत्युत्तम है। हृदय रोगों को नष्ट करके पुरुषत्व को बढ़ाता है। मूल्य ४) आधा पाव, ३२) सेर

सेवनविधि—६ माशे से १ तोला प्रातः सायं गोदुग्ध से।

बृहत्कण्टकारि घृत

इसके सेवन से सब प्रकार की खांसी, हिचकी, श्वास, कफरोगादि दूर होते हैं। दमे के रोगियों के लिये भी लाभदायक है। अनेक रोगियों पर अनुभूत घृत है। मूल्य ४) आध पाव, ३२) सेर

सेवनविधि—६ माशे से १ तोला तक प्रातः सायं गोदुग्ध से।

बृहत्पंचगव्य घृत

अपस्मार अर्थात् मृगी जिसकी चिकित्सा डाक्टरों के पास कुछ भी नहीं है। इसको समूल नष्ट करने के लिये आयुर्वेद का प्रसिद्ध बृहत्पंच-गव्य घृत जादू के समान प्रभाव रखता है। सब प्रकार की अपस्मार (मृगी) इससे निश्चय से दूर होती है। इस घृत में गाय के गोबर का रस, गाय का दूध, गाय की दही, तथा गाय का पुराना घी, और गाय का मूत्र तथा दशमूलादि औषधियां पड़ती हैं। इसके अतिरिक्त मूर्छा, अपतन्त्रक, उन्माद, चौथैया ज्वर आदि रोग भी नष्ट होते हैं।

मूल्य ४) आधा पाव, ३२) सेर

सेवनविधि—प्रातः सायं ३ माशे से ६ मासे तक गौ के दूध के साथ सेवन करें।

सुकुमार कुमारक घृत

पेशाव का कष्ट से आना, कब्ज, कमरदर्द योनिशूल आदि के लिये उत्तम है। मूल्य ४) आध पाव, ३२) सेर

सेवनविधि—प्रातः सांय ३ माशे से ६ माशे तक गौ के दूध के साथ सेवन करें।

तैल प्रकरण

हम उत्तम तिलों का तेल स्वयं निकलवा कर सभी तेल बड़े परिश्रम से सिद्ध करते हैं, अतः गुणों में अत्युत्तम होते हैं।

केश रक्षक तैल—इसके प्रयोग से बालों का गिरना, अकाल में पकना तथा गंज आदि रोग दूर होते हैं। केशों को बढ़ाता व मुलायम रखता है। मूल्य ४) आधा पाव

ब्राह्मी आंवला तैल—मस्तिष्क की निर्बलता व उष्णता को दूर करता है। बालों को काला करता है। मृगी, पागलपन, हिस्टेरिया आदि में भी इसका प्रयोग हितकर है। मूल्म ४) पाव

बृहत्कासीसादि तैल—बवासीर के मस्सों को समूल नष्ट करता है। भगन्दर, गुदापाक तथा घाव नासूर आदि के लिये अत्यन्त उपयोगी है। मूल्य ४) आध पाव

प्रयोगविधि--दिन में दो एक बार लगाना चाहिये। गहरे घाव में बत्ती बनाकर अन्दर भर देना चाहिये।

महानारायण तैल—पक्षाघात, अर्धांग (लक़वा) शरीर के किसी भाग का खराब हो जाना, गठिया तथा सब तरह के वायु रोगों की उत्तम औषधि है। आभ्यन्तरिक चोट पर अत्युत्तम है। मूल्य ४) आध पाव

प्रयोगविधि—रोगी के अंग पर दिन में दो-तीन बार मलना चाहिये और चिकित्सक के आदेशानुसार पीना चाहिये।

नारायण तैल—उपरोक्त गुण हैं। मू० ३) आध पाव

महालाक्षादि तैल—पुराने बुखार तथा क्षय रोग में इस तेल की मालिश से ज्वर तथा जलन दूर होती है। मोतीझारादि रोगों की निर्बलता इससे दूर होती है। कमजोर बच्चे इसकी मालिश से हृष्ट-पुष्ट बनते हैं। मूल्य ३) आध पाव

प्रयोगविधि—सारे शरीर पर तैल मलकर रमा दें। ज्वर की अधिकता में भी मालिश करनी चाहिये।

महामरिच्यादि तैल—खाज, फोड़े, फुन्सी तथा दाद इत्यादि के लिये प्रसिद्ध औषध है। मू० ३) आध पाव

प्रयोगविधि—रोगी अंग पर मले।

महाबलादि तैल—दुबले शरीर को पुष्ट करता। सातों धातुओं को बढ़ाता है। कास, श्वास, राजयक्ष्मा, दाह और पुराने ज्वर में उपयोगी है। ३) आध पाव

प्रयोगविधि—सारे शरीर पर मालिश करें।

वातनाशक तैत—यह वात रोगी के दर्द उपशमन के लिये अत्यन्त हितकर है। मूल्य ३) आध पाव

प्रयोगविधि—दर्द स्थान पर मालिश करें।

विषगर्भ तैल—यह तैल शारीरिक दर्दों के लिये बहुत लाभदायक है। मूल्य ४) पाव

प्रयोगविधि—दर्द स्थान पर मालिश कर सेक करें।

रस व गुटिका

अग्निकुमार रस—बदहज्मी दस्त और पेट फूलने तथा मुख में पानी भरना इत्यादि के लिये उपयोगी है। मूल्य ।।।) तोला

प्रयोगविधि—२ से ४ रत्ती दिन में दो-तीन बार गरम जल से लें।

अम्लपित्तारि रस—अम्लपित्त के लिये अत्यन्त उपयोगी है। खट्टे डकार आना, छाती व गले में जलन होना, वमन आना इत्यादि पर शीघ्र लाभ करता है। मूल्य ।।) तोला

प्रयोगविधि—१-१ गोली प्रातः सायं गरम जल से लें।

आनन्द भैरव रस—ज्वर तथा दस्तों में इसका उपयोग किया जाता है। मूल्य ।।=) तोला

प्रयोगविधि—१ गोली दिन में दो-तीन बार अदरक के रस के साथ। दस्तों में चावलों के धोवन के पानी के साथ दें।

अजीर्ण कण्टक रस--अजीर्ण, बादी, हैजा इत्यादि में लाभप्रद है। मूल्य ।।।=) तोला

प्रयोगविधि--२ से ४ रत्ती प्रातः सायं जल से।

इच्छाभेदी रस (बृहत्)—यह तेज जुलाब की औषध है। कब्जी होने पर इससे दस्त लेने चाहियें। मूल्य ।।=) तोला

प्रयोगविधि--दो या तीन गोली ठण्डे पानी के साथ लेनी चाहियें। बीच-बीच में अनारदाने का जल पीते रहें। जब बन्द करने हों गर्म जल पीना चाहिये।

उदर सुधा रस--पेट के प्रत्येक प्रकार के रोग पर अमृत का काम करता है। पेट का कोई रोग नहीं रहने पाता। पेट दर्द में भी आराम करता है। मू० ३) तोला

प्रयोगविधि—२ से ४ रत्ती तक आवश्यकतानुसार गर्म जल से लें।

एकांग वीर रस—यह वात और वातश्लेष्म प्रधान, पक्षाघात, अर्दित, धनुर्वात, अर्धाङ्ग वात, गृध्रसी आदि रोगों को दूर करता है। मू० ५) तोला

प्रयोगविधि—१ से २ गोली दिन में तीन बार रास्नादि क्वाथ से अथवा गर्म जल से।

कस्तूरी भैरव रस (बृहत्)—तीव्र वायु का वेग, उग्र सन्निपात और नाड़ी कमजोर होने पर शीघ्र लाभ करता है। मूल्य २४) तोला

प्रयोगविधि—१ गोली अदरक के रस के साथ और शहद के साथ दिन में दो-तीन बार।

कृमि मुद्‌गर रस—पेट के कीड़ों को नष्ट करता है।

मू० ।।=) तोला

प्रयोगविधि—१ से २ रत्ती गर्म जल से लें।

कण्ठरोगारि रस—प्रत्येक कण्ठ रोग में उपयोगी है। गले को साफ करता है। मू० ।।) तोला

प्रयोगविधि—गोली को मुख में डाल कर चूसें।

कासारि रस—काली खांसी के लिये अत्यन्त हितकर है।

मू० ।।) तोला

प्रयोगविधि—१ से २ रत्ती शहद से चाटें।

कालान्तक रस—कफकास के लिये हितकर है। मू० २) तोला।

प्रयोगविधि—१ गोली गर्म जल से लें।

कासान्तक वटी—प्रत्येक प्रकार के कास (खांसी) रोगों पर हितकर है। मू० १) तोला

प्रयोगविधि—१-१ गोली दिन में दो-तीन बार गर्म जल से लें।

गंगाधर रस—दस्त, ग्रहणी, अतिसार में अत्यन्त उपयोगी है।

मू० २।।) तोला

प्रयोगविधि—१, २ गोली चावल के धोवन के जल से।

चन्द्रोदय वर्ति—आंख के रोगों की उत्तम औषधि है।

मू० ।।) तोला

प्रयोगविधि—एक रत्ती वर्ति को बकरी के दूध में घिस कर दोनों समय आंखों में लगायें।

चन्द्रप्रभा वटी—शिलाजीत एवम् लौह भस्म आदि से युक्त है। बवासीर, खून की कमी, कमजोरी तथा प्रमेह की प्रसिद्ध औषधि है। शरीर की सुस्ती दूर करती है। मू० १) तोला

प्रयोगविधि—प्रातः-सायं एक-एक गोली दूध के साथ लें। बवासीर में अभयारिष्ट या मट्ठे के साथ लेनी चाहिये।

चन्द्रकला रस—प्रमेह की उत्तम औषधि है। मूत्र में दाह होने पर विशेष लाभकारी है। मू० १।।) तोला

प्रयोगविधि—१-१ गोली सुबह-शाम शहद के साथ लें।

नवायस लौह—जिगर की कमजोरी, कामला, प्रमेह और पुराने बुखार में इसका सेवन किया जाता है। इससे जिगर की कमजोरी दूर होती है, खून एवम् भूख की वृद्धि होती है। मू० १।) तोला

प्रयोगविधि—२, ३ रत्ती शहद में मिला कर चाटें।

पंचामृत लौह मण्डूर—संग्रहणी, खून की कमी तथा शोध रोग के लिये उत्तम औषध है। मू० १।।) तोला

प्रयोगविधि—२ से ४ रत्ती तक सुबह-शाम शहद से चाटें।

पुनर्नवा मण्डूर—पाण्डु रोग, बवासीर, विषम ज्वर की उत्तम औषधि है। मू० १।) तोला

प्रयोगविधि—दो रत्ती प्रातः सायं जल से।

मरीच्यादि वटी—इसके सेवन से सभी प्रकार के कास रोग (खांसी) नष्ट होते हैं। मू० १।।=) छटांक

प्रयोगविधि—गोली को मुँह में रख कर चूसते रहें।

महाज्वराकुंश—सब प्रकार के ज्वरों में लाभकारी है। मू० ।।=) तोला

महाशंखवटी—अग्निमांद्य, पेट का फूलना, पेट दर्द, आंव के दस्त आना तथा खट्टे डकारों के लिये अत्यन्त लाभप्रद है। मू० ।।=) तोला

प्रयोगविधि—भोजन के बाद या दर्द की अवस्था में नीम्बू के रस वा गरम पानी के साथ एक-एक गोली दिन में तीन-चार बार लें।

मृत्युञ्जय रस—चढ़े ज्वर को उतारने लिये बहुत उपयोगी है। मूल्य ।।=) तो०, विशेष २) तोला

प्रयोगविधि—प्रति दो घण्टे के बाद एक एक गोली अदरक के रस या शहद के साथ लें। दिन में छः से अधिक न लें। बच्चों तथा गर्भिणी स्त्रियों के लिए आधी मात्रा है।

योगराज गुग्गुल (वृहत्) वायु के रोगों पर उत्तम है, जोड़ों का दर्द, गठिया, वाय, कमर दर्द, हाथ पैर के कम्पनादि के लिये अत्युत्तम है।

मूल्य २।।) तोला

प्रयोगविधि—एक से दो गोली प्रातः सायं गर्म दूध अथवा रास्नादि क्वाथ के साथ लें।

त्रयोदशाङ्गगुग्गुल—वात व्याधि की उत्कृष्ट औषध है। प्रत्येक प्रकार के वाय, अर्धाङ्ग, गठिया आदि रोगों को दूर करता है।

मूल्य २) तोला

प्रयोगविधि—१ या २ गोली सुबह शाम दूध से।

लक्ष्मीविलास रस—सब प्रकार के वात श्लेष के विकारों को दूर करता है। जुकाम, खांसी, हृदय की निर्बलता और सिर दर्द के लिये बहुत लाभदायक है।

मूल्य १।।।) तोला

प्रयोगविधि—१ से २ गोली आवश्यकतानुसार गर्म दूध के साथ लें।

मूर्च्छादिनस्य–मूर्च्छादि के लिये नस्य (सुंघाना) दिया जाता है।

मूल्य २) तोला

रक्तपित्तारि रस—रक्तपित्त की उत्कृष्ट औषधि है।

मूल्य २) तोला

प्रयोगविधि—१ या १ गोली जल से दें।

रक्तपित्तारि लौह—इसका भी उपयोग रक्तपित्त में अत्यन्त लाभप्रद है।

मूल्य २।।) तोला

वातारिरस–वात रोग व प्रत्येक प्रकार के वायु के दर्दों के लिये अत्यन्त हितकारी है।

मूल्य २) तोला

प्रयोगविधि–१-१ गोली सुबह शाम दूध से लें। इसके सेवन काल में घी दूध का पर्याप्व मात्रा में सेवन करें।

श्वासकुठार रस–दमे के लिये उत्तम औषधि है। मूर्च्छा, प्रतिश्याय में नस्य भी दिया जाता है। मूल्य ।॥) तोला

प्रयोगविधि—१ से २ रत्ती शहद के साथ लें।

श्वासरोगादिरस—यह रस हमने विशेष परिश्रम से तैयार किया है। दमे के लिये अत्युत्तम औषधि है। शतप्रतिशत अनुभूत है। मूल्य ३) तोला

प्रयोगविधि–१ से २ रत्ती शहद से लें।

हिक्कान्तक रस–यह हिक्का (हिचकी) रोग में दिया जाता है। मूल्य २) तोला

प्रयोगविधि—१ से २ रत्ती शहद से चाटें।

हिस्टीरियान्तक वटी—यह स्त्रियों के अपतन्त्रक (हिस्टीरिया) रोग के लिये रामबाण है। अपस्मार, वातविकार आदि में अत्युत्तम है। केसर कस्तूरी आदि कीमती औषधियों के योग से तैयार की गई है। मूल्य १०) तोला

प्रयोगविधि–१ गोली सुबह शाम दूध से।

वातकुलान्तक रस—इसके सेवन से अपस्मार, मूर्च्छा, वातव्याधि आदि रोग नष्ट होते हैं। मूल्य १५) तोला

प्रयोगविधि—आधी से एक रत्ती प्रातः सायं शहद से खायें।

स्वर्णमालती वसन्त—मलेरिया, पुराने बुखार तथा क्षय रोग के लिये बहुत उपयोगी है। मूल्य २४) तोला

प्रयोगविधि—१ रत्ती शहद में मिला कर लें।

वासावलेह—दमा, पुरानी खांसी ज्वर तथा तपेदिक में बहुत लाभप्रद है। मूल्य २।) पाव

प्रयोगविधि—१ तोला प्रातः सायं दूध से।

सुपारी पाक—प्रमेह और स्त्रियों के श्वेत व रक्तप्रदर रोग की अत्युत्तम औषधि है। इसके सेवन से धातु का पतलापन और प्रदर दूर होता है। शरीर को पुनः शक्तिशाली बनाता है। मूल्य ३) पाव

प्रयोगविधि—१—१ तोला दूध से प्रातः सायम्।

विजयापाक--यह पाक खांसी जुकाम नजला इत्यादि को दूर करता। अत्यन्त क्षुधा वर्धक (भूख बढ़ाने वाला) है। यह पेट की सब वीमारियों को दूर करता है तथा नपुंसकों के लिये भी अनुपम लाभकारी है।

मूल्य ३) पाव

सेवन विधि-३ मासे से ६ मासे तक अवस्थानुसार सेवन करें।

भस्म प्रकरण

अभ्रक भस्म-यह उत्तम रसायन है। खांसी, दमा, क्षय आदि रोगों में तथा निर्बलता में विशेष रूप से दी जाती है। मूल्य ३) तोला

प्रयोगबिधि—दो रत्ती प्रातः सायं शहद से।

कुरङ्ग श्रृंग भस्म-पसलियों के दर्द के लिये बहुत लाभदायक है।

मूल्य ३) तोला

प्रयोग विधि-१ से २ रत्ती प्रातः सायं शहद से।

गोदन्ती हरताल भस्म-खांसी और बुखार के लिये बहुत उत्तम है।

मूल्य ।-) तोला

प्रयोग विधि-२ से ४ रत्ती गर्म जल से लें।

ताम्र भस्म-बुखार, खांसी तथा दमे के लिये विशेष उपयोगी हैं।

मूल्य ।-) तोला

प्रयोग विधि-आधी से १ रत्ती तक दिन में एक बार शहद से लें।

प्रवाल भस्म—स्वप्न दोष, खांसी, दमा, क्षय-रोग में बहुत लाभदायक है।

मूल्य १।।) तोला

प्रयोगविधि—२ से ४ रत्ती तक दिन में दो बार सितोपलादि चूर्ण में शहद मिलाकर चाटें।

प्रवाल भस्म–(चन्द्रपुटी) प्रमेह, कास, तथा उष्णता को दूर करने के लिये विशेष रूप से तैयार की गई है। मूल्य ४) तोला

प्रयोगविधि–२ रत्ती मक्खन और मिश्री से।

बंग भस्म–प्रमेह की प्रसिद्ध औषधि है। धातु सम्बन्धी प्रत्येक रोग में हितकर है। मूल्य ३) तोला

प्रयोग विधि–एक से तीन रत्ती तक शहद, मक्खन या मलाई के साथ लेनी चाहिये।

मुक्ता भस्म–खांसी, क्षय, दमा तथा निर्बलता में उपयोगी है। उष्णता कम करती है। हृदय को शक्ति देती है।

मूल्य ८) माशा, ९०) तोला

प्रयोगविधि–आधी रत्ती दिन में दो बार मक्खन या मलाई के साथ।

मण्डूर भस्म— जिगर की खराबी, पित्त की अधिकता, ख़ून की कमी, पाण्डु व कामला आदि की विशेष औषधि है।

मूल्य ।।≈) तोला

प्रयोगविधि—१ से ४ रत्ती दोनों समय भोजन के बाद शहद से लें।

मुक्ता शुक्ति भस्म—क्षय, संग्रहणी के लिये अत्युत्तम है।

मूल्य १) तोला

प्रयोग विधि—२ रत्ती दोनों समय शहद से लें।

रौप्यमाक्षिक भस्म—पाण्डु, प्रमेह, बवासीर शोथ, नेत्ररोग तथा शरीर की कमजोरी को दूर करती है।

प्रयोगविधि—२ रत्ती दिन में दो बार शहद से।

लोह भस्म—जिगर की कमजोरी, ख़ून की कमी, हृद्रोग, क्षय था साधारण निर्बलता के लिये अत्युत्तम है।

मूल्य २।।) तोला, उत्तम ३) तोला।

वराट भस्म—भूख न लगना, दस्त, पेट दर्द आदि के लिये उत्तम है। मूल्य ।-) तोला

प्रयोगविधि–२ से ४ रत्ती नींबू के रस से।

स्वर्णमाक्षिक भस्म–प्रमेह, पाण्डु, हृदय की निर्बलता और गण्डमाला में उपयोगी है। मूल्य १॥) तोला

प्रयोगविधि–१ से २ रत्ती दिन में दो बार शहद से।

शंख भस्म–पेट का दर्द, आंव, खट्टे डकार आदि के लिये विशेष हितकर है। मूल्य ।-) तोला

हजरूलयहूद भस्म—पथरी रोग की प्रारम्भिक अवस्था में देने से पथरी को गलाकर बहा देती है। पेशाब साफ लाती है। मूत्रकृच्छ्र, पेशाब के जलन को दूर करती है। मूल्य १) तोला।

प्रयोगविधि—२ रत्ती दिन में दो बार शहद से।

चूर्ण प्रकरण

अश्वगन्धादि चूर्ण—स्वप्नदोष, इन्द्रिय दुर्बलता तथा धातु बढ़ाने में अत्यन्त हितकर व पुष्टिकारक है। मूल्य १) छटांक।

प्रयोगविधि—१ माशे से ३ माशे तक की मात्रा में जल अथवा दूध से लें।

अम्लपित्तारि चूर्ण—अम्लपित्त के लिये उत्तम है। छाती व गले में जलन, खट्टे डकार आना इत्यादि के लिए उपयोगी है। मूल्य ॥=) छटांक।

प्रयोगविधि—२ से ३ माशे तक चूर्ण ताजा जल से।

गंगाधरचूर्ण—अतिसार दस्तों को बन्द करता है, पाचनशक्ति को बढ़ाता है। मूल्य ॥=) छटांक।

प्रयोगविधि—दिन में दो तीन बार मट्ठे के साथ २ से ३ माशे की मात्रा में।

त्रिफलादि चूर्ण--यह चूर्ण पेट को नियमित रखता है। मन्दाग्नि मलबंध, पुराने दस्त, पेट दर्द में बहुत बरता जाता है। नेत्रों के लिए हितकारी है। मूल्य ।।) छटांक

प्रयोगविधि—३ से ६ माशे तक प्रातः पानी या दूध के साथ। रात को सोने से पूर्व लें।

लवंगादि चूर्ण—क्षयरोग, अरुचि, अजीर्ण, अतिसार, व खांसी के लिए देना चाहिये। मूल्य १।) छटांक।

प्रयोगविधि—तीन माशे चूर्ण पानी या बकरी के दूध के साथ दें।

लवणभास्कर चूर्ण—अग्निमांद्य के लिये यह प्रसिद्ध चूर्ण है। इसके सेवन से भूख लगने लगती है। अरुचि दूर होती है तथा दस्त साफ होता है। मूल्य ।।=) छटांक।

प्रयोगविधि—तीन माशे तक जल, नींबू के रस या मट्ठे के साथ भोजनोपरान्त लेना चाहिए।

सितोपलादि चूर्ण—खाँसी, क्षय, पुराने बुखार और हाजमे की निर्बलता दूर करने के लिये उत्तम औषधि है।

मूल्य उत्ताम २) छटांक, साधारण १।=) छटांक।

प्रयोगविधि—डेढ़ से ३ माशा चूर्ण प्रातः सायं दोनों समय तीन माशा शहद और ६ माशा घी से चाटना चाहिये।

सुदर्शन चूर्ण--जिगर, तिल्ली, मलेरिया ज्वर के लिये बहुत लाभदायक है। मूल्य ।।-) छटांक।

प्रयोगविधि—डेढ माशा चूर्ण दिन में दो बार गर्म जल से लेना चाहिए।

हिंग्वष्टक चूर्ण—अपचन, दस्तों का आना, वायुगोला, पेट का अफरना, तथा पेट दर्द आदि के लिये उत्ताम है।

मूल्य १।) छटांक, उत्तम २) छटांक

प्रयोगविधि--डेढ माशा चूर्ण भोजन के बाद अथवा आवश्यकतानुसार गर्म जल से लें।

सारस्वत चूर्ण—यह चूर्ण मृगी तथा पागलपन के लिए अत्यन्त उपयोगी है। बुद्धि को बढ़ाता है। दिमागी काम करने वालों के लिये उत्तम है।

मूल्य ।।।) छटांक।

प्रयोगविधि—एक एक माशा प्रातः सायं दोनों समय गौ के दूध के साथ लें।

आसव-अरिष्ट

आसवारिष्ट १ तोले से २ तोले की मात्रा में समान जल मिलाकर दोनों समय भोजन के आध घण्टा बाद पीना चाहिये।

अभयारिष्ट—यह जिगर की बीमारियों तथा कब्ज को हटाता है। बवासीर के मस्सों को सुखाता है। मूल्य २) पौंड।

अशोकारिष्ट—स्त्रियों के श्वेतप्रदर और सब प्रकार के योनिरोगों की उत्तम औषधि है। इससे गर्भाशय सन्तान के योग्य होता है। मासिक-धर्म विकार में अत्यन्त उपयोगी है। मूल्य २) पौंड।

अश्वगन्धारिष्ट—मूर्छा, उन्माद, पागलपन, साधारण निर्बलता, ज्ञान तन्तुओं की निर्बलता और वायु की बीमारियों में अत्युत्तम है।

मूल्य २।) पौंड, मधु से निर्मित ३।) पौंड।

अर्जुनारिष्ट—इसका सेवन हृदय के रोगों में बहुत लाभदायक है।

मूल्य २) पौंड।

अहिफेनासव—अतिसार, शूल, व हैजे में अत्यन्त हितकर है।

मूल्य १।।) औंस।

प्रयोगविधि—१० से २० बूंद तक जल में मिलाकर आवश्यकतानुसार दें।

कनकासव—दमा और खांसी के लिये बहुत उपयोगी है।

मूल्य २) पौंड।

कुटजारिष्ट—संग्रहणी या पुराने दस्तों के लिए बहुत अच्छा है। पाचनशक्ति को बढ़ाकर दस्तों को रोकता है। मूल्य २) पौंड।

कुमार्यासव—जिगर के रोगों के लिये विशेष उपयोगी है : कब्ज, वायुगोला, बवासीर की उत्तम औषधि है। स्त्रियों के मासिकधर्म के लिए लाभप्रद है। मूल्य २॥) पौंड, मधु से निर्मित ३॥) पौंड।

काकमाच्यासव—जलोदर की प्रसिद्ध औषधि है। मू० ३) पौंड।

खदिरारिष्ट—कुष्ठ व त्वचा की बीमारियों के लिये बहुत उत्तम है। अत्यन्त रक्तशोधक है। मूल्य २) पौंड, मधु से निर्मित ३) पौंड।

गण्डिकाद्रोणासव—अर्श, भगन्दर, ग्रहणी, मेदरोग (मोटापा) और प्रमेह नाशक है। यह उत्तम अग्निदीपक और भूख को बढ़ाने वाला है। मूल्य ३॥) पौंड

कालिन्दासव—यकृत की कमजोरी के लिये बहुत अच्छा है। पाचक व रोचक है। रक्तपित्त को भी दूर करता है। मूल्य ३) पौंड।

कदम्बारिष्ट—सब प्रकार के बुखारों को दूर करके शक्ति प्रदान करता है। मलेरिया की उत्तम औषधि है। मूल्य ३) पौंड।

उदरसुधासव—पेट के प्रत्येक रोग के लिये रामबाण है। पेट दर्द तो देते ही बन्द हो जाता है। मूल्य १) औंस।

प्रयोगविधि—१०--१५ बूंद आवश्यकतानुसार जल से दें।

गन्धकारिष्ट—दस्त, वमन, मू० १) औंस तथा हैजे के लिये अत्यन्त हितकर है।

प्रयोगविधि—१०--१५ बूंद जल से

गोक्षुरासव—सब प्रकार के मूत्र सम्बन्धी दोष दूर करता है। प्रमेह के लिये अत्यन्त हितकर एवं बलवर्धक है। मूल्य ३) पौण्ड

कासमर्दासव—प्रत्येक विष उपद्रव से बचाता है तथा रक्त शोधक है। मूल्य ५) पौण्ड

दशमूलारिष्ट—खांसी, मन्दाग्नि, इन्द्रिय दुर्बलता के लिये उत्तम है। स्त्रियों के प्रसूत रोग को दूर करता है। बलवीर्यवर्धक है।

मूल्य ३) पौण्ड, कस्तूरी युक्त ४) पौण्ड

द्राक्षासव—पुरानी खांसी, तपेदिक, भूख न लगना, कब्ज, थकावट तथा कमजोरी को दूर करके शरीर को शक्तिशाली बनाता है।

मूल्य २।) पौण्ड

दाडिमासव—अजीर्ण, अग्निमांद्य, खून की कमी, घबराहट, जी मिचलाना आदि दूर करता है। पाचकशक्ति को ठीक करते हुये बल की वृद्धि करता है। मूल्य २) पौण्ड

दन्त्यरिष्ट—बवासीर, कृमि उदावर्त, ग्रहणी और कृमि रोग नाशक है। मूल्य २) पौण्ड

रोहितकारिष्ट—यकृत्-प्लीहा-(जिगर-तिल्ली) वायु गोला, आदि उदर रोगों में लाभदायक है। मूल्य २) पौण्ड

लोहासव—जिगर व तिल्ली के विकार व ज्वर के कारण पाण्डु रोग होने पर यह विशेष लाभदायक है। रक्त की वृद्धि करता है।

मूल्य २) पौण्ड

लक्ष्म्यरिष्ट—रज का बन्द होना, रज का कष्ट से आना, गर्भाशय शोथ नाशक है। प्रसव के समय यदि बालक शीघ्र पैदा न होता हो तो दो तोले अरिष्ट में १ रत्ती केसर मिलाकर पिलाने से शीघ्र ही बालक पैदा हो जाता है। मूल्य ५) पौण्ड

भृङ्गराजासव—दमा, खांसी, निर्बलता व बुढापा नाशक है।

मूल्य ३) पौण्ड

मधुमेहासव—मधुमेह की एक मात्र अचूक औषधि है।

मूल्य ५) पौण्ड,

पारिभद्रासव—इसका सेवन खून की खराबी, अर्थात् खाज खुजली, दाद, चम्बल, इत्यादि प्रत्येक चर्म रोगों के लिये अत्यन्त उपयोगी है। मूल्य २) पौण्ड।

बावच्यासव—श्वेतकुष्ठ की अत्युत्तम औषधि है। मूल्य ३) पौण्ड

सारस्वतारिष्ट—दिमाग का थकना तथा बात भूल जाना, गला

बैठना आदि रोग दूर होते हैं। स्मृति तथा नेत्रज्योति बढ़ती है। दिमागी काम करने वालों के लिये बहुत उत्तम है बुद्धिवर्धक है। मूल्य ३) पौण्ड

सारिवाद्यासव--खून की खराबी की सर्वोत्तम दवा है। स्वप्नदोष, प्रमेह दूर होकर धातु पुष्ट करता है। फोड़ा, फुन्सी व त्वचा के सभी रोग दूर होते हैं। स्त्रियों के आर्तव सम्बन्धी रोग दूर करता है। जिगर ठीक काम करने लगता है। मूल्य २) पौण्ड, मधु से निर्मित ३) पौण्ड।

वासासव—क्षय की खांसी, सूखी पुरानी खांसी श्वास और रक्त-पित्त के लिये उत्तम है। मूल्य २) पौण्ड

शिरीषारिष्ट--स्थावर (संखिया आदि) जंगम (सर्पविच्छु) विष नाशक है तथा रक्तशोधक है। मूल्य ५) पौंड

चन्दनासव--प्रमेह, पेशाब की जलन कड़क, पथरी आदि में गुण कारक है। पित्तशामक और पुष्टि कारक है। मूल्य २) पौंड

पुनर्नवारिष्ट--यह शोथ, उदररोग, प्लीहावृद्धि, अम्लपित्त, बढ़े हुए जिगर, गुल्म आदि रोगों को नष्ट करता है। इसका प्रभाव हृदय, वृक्क और यकृत पर विशेष होता है। मूल्य २) पौंड।

भिन्न-भिन्न स्थानों पर हमारी एजेन्सियाँ

१. गुरुकुल फार्मेसी रेलवे रोड रोहतक।
२. नवजीवन संचारक कम्पनी, आर्यसमाज मन्दिर, सीताराम बाजार देहली।
३. श्री पं० राजपाल जी शास्त्री, आरोग्य निकेतन, गढ़मुक्तेश्वर (चौपला) - जिला मेरठ।
४. श्री मातूराम जी आर्य—मार्केट रोड, डालमिया दादरी जि० महेन्द्रगढ़ (पेप्सू)
५. कविराज श्री ब्र० ब्रह्मदेव जी वैद्य, अटेलीमण्डी नारनौल (पेप्सू)
६. श्री म. रघुवीर सिंह जी बोडा, एलम - जिला मुजफ्फरनगर।

७. श्री म. जोखीराम जी आर्य, आर्यसमाज मन्दिर लुहारु, जिला हिसार।

८. श्री म. शिवनारायण जी प्रधान पंचगामा, पोस्ट बाढडा, जिला महेन्द्रगढ़ (पेप्सू)

९. श्री वैद्य कर्मवीर जी आर्य औषधालय नरेला, देहली।

१०. श्री मा. जगराम आर्य, मातनहेल - रोहतक।

११. श्री मा. हरकेराम जी बी. ए., ठीठ - रोहतक।

१२. श्री म. हरफूलसिंह जी, भदानी - रोहतक।

१३. श्री मा.दरियावसिंह जी, ढाकला - रोहतक।

१४. श्री म. फतहसिंह जी, रैया - रोहतक।

१५. श्री मा. दलीपसिंह जी, लूलोढ, गोरिवा - रोहतक।

१६. श्री म. अतरसिंह जी, माजरा, जहाजगढ़ - रोहतक।

१७. श्री म. प्यारेलाल जी आर्य, भापड़ौदा - रोहतक।

१८. श्री म. खुशीराम जी, आसौदा - रोहतक।

१९. श्री म. परशुराम जी, जनरल मर्चेण्ट, झज्जर - रोहतक।

२०. श्री भद्रवीर आर्य C/O सुबेदादार मोमनसिंहजी, जुगलान - हिसार।

२१. श्री जमादार भरतसिंह जी, अधिष्ठाता दयानन्द ब्राह्म महाविद्यालय नूरनखेड़ा (बुटाना) रोहतक।

२२. श्री सम्राट् प्रेस. पहाड़ी धीरज - देहली।

२३. श्री गोर्धनसिंह जी वैद्य, अलीपुर - सूबा देहली।

२४. श्री म. समेराम जी आर्य, अटायल - जिला रोहतक।

२५. मास्टर हरकेराम जी खातीवास डालमिया दादरी - जि०महेन्द्रगढ़।

संकेत—एजेन्सी, के लिए पत्रव्यवहार करें। एजेन्टों की आवश्यकता है।

निर्माता—आर्य आयुर्वेदिक रसायनशाला (रजि०)

गुरुकुल झज्जर (रोहतक)

ओ३म्

वैदिक साहित्य सदन

आर्यसमाज मन्दिर, सीताराम बाज़ार, देहली

का—

—सूची पत्र—

हमारे यहाँ से अपनी प्रकाशित पुस्तकों के अतिरिक्त वैदिक यन्त्रालय अजमेर, गुरुकुल कांगड़ी, आर्य-साहित्य मंडल अजमेर, आर्य-प्रकाशन मंडल, राजपाल एण्ड सन्ज, गोविन्दराम हासानन्द, कलाप्रेस प्रयाग, सस्ता साहित्य मण्डल, सार्वदेशिक सभा, राजकमल प्रकाशन, प्रादेशिक सभा एवं छात्र हितकारी पुस्तक माला आदि की सब पुस्तकें आदेशानुसार प्राप्त हो सकती हैं। भारतवर्षीय आर्यकुमार परिषद् तथा विरजानन्द संस्कृत परिषद् की एवं रत्न, भूषण, प्रभाकर तथा साहित्यरत्न आदि परीक्षाओं की समस्त पुस्तकें भी उचित मूल्य पर मिलती हैं।

१ मई, १६५५

विशेष सूचना

(१) आदेश देते समय अपना नाम, पता, डाकखाना एवं रेलवे स्टेशन आदि पूरा और स्पष्ट अक्षरों में देने की कृपा करें।

(२) २) से कम की वी० पी० भेजने का नियम नहीं है। इसलिये कम से कम २) का आर्डर भेजें। वी० पी० से मंगाने में आपका अधिक व्यय होगा। अतः आप २) से कम की पुस्तकों के लिए तो अवश्य ही, तथा अधिक रुपयों की पुस्तकों के लिए भी पुस्तकों के मूल्य के अतिरिक्त, जितने रुपयों की पुस्तकें मंगानी हों उतने ही आनों में, अपनी इच्छानुसार रजिस्ट्री डाक से मंगाने के लिए ॥) अन्यथा साधारण डाक से मंगाने के लिए =) जोड़कर डाक एवं बंधाई आदि के लिए भेजें।

उदाहरण—यदि ३) की पुस्तकें मंगानी हों तो ३)+≡)+॥) अथवा =) यदि रजिस्ट्री से पुस्तकें मंगानी हों तो कुल ३॥≡) अन्यथा ३।–) भेजें।

कमीशन की दर (हमारे प्रकाशनों पर)

१. ५) से कम की पुस्तकों पर साधारण व्यक्ति				×
५)	”	”	संस्था	१२॥) प्रतिशत
५)	”	”	दुकानदार	२०) ”
२. ५) से १०) से कम की पुस्तकों पर साधारण व्यक्ति				६।) ”
१०) से २०)	”	”	”	१२॥) ”
५) से २०)	”	”	संस्था	१२॥) ”
५) से २०)	”	”	दुकानदार	२०) ”
३. २०) से १००)	”	”	सबको	२५) ”
. १००)” ३००)	”	”	”	३०) ”

॥ ओ३म् ॥

वैदिक साहित्य सदन

आर्य समाज मन्दिर, बाजार सीताराम, देहली।

प्रिय महोदय, नमस्ते,

आपकी सेवा में अपने यहाँ मिलने वाले साहित्य की नवीनतम सूची भेजी जा रही है। आप देखेंगे कि प्रत्येक पुस्तक सामयिक, निर्माणकारी तथा जीवनोपयोगी है। हमारे साहित्य में बल है, ओज है और है गिरे हुए युवकों को उत्साह और आशा-सन्देश देने की शक्ति। साथ ही साथ यह पुस्तकें अपेक्ष-कृत सस्ती भी हैं। यही कारण है कि अनक व्यक्तियों, संस्थाओं तथा पत्र-पत्रिकाओं ने इनको प्रशंसा में पत्र अथवा समालोचनायें लिखी हैं। धन सम्पन्न अथवा उदार हृदय व्यक्ति इन्हें खरीद कर मुफ्त प्रचारार्थ बंटवा भी रहे हैं और इस प्रकार सात्विक दान का यश प्राप्त कर रहे हैं।

२. पुस्तकों पर हम पर्याप्त कमीशन भी दे रहे हैं। जो दुकान-दार भाई हम से न्यून से न्यून २०) की पुस्तकें खरीदेंगे उनके नाम का विज्ञापन हम समाचार पत्रों में करायेंगे।

३. हमें आशा ही नहीं पूर्ण विश्वास है कि आप इनमें से कुछ पस्तकें अवश्य पसन्द करेंगे और अपना आदेश शीघ्र भेजने की कृपा करेंगे तथा अपने साथियों को भी साहित्य खरीदने के लिए प्रेरित करेंगे।

४. आर्डर से पूव विशेष सूचना अवश्य पढ़ लेने की कृपा करें।

—भवदीय
व्यवस्थापक

प्रशंसा

अपने साहित्य की प्रशंसा हम स्वयं नहीं करते। वास्तविक प्रशंसा वह है जो दूसरे करें। हमारे साहित्य की उपयोगिता इसी से सिद्ध है कि—

१—राजस्थान सरकार ने हमारी निम्न पुस्तकों को राजस्थान इन्टर कालिज तक की शिक्षण संस्थाओं और पुस्तकालयों के उपयोगार्थ स्वीकृत किया है।—

(१) मनोविज्ञान तथा शिवसंकल्प २॥)
(२) महर्षि दयानन्द और महात्मा गान्धी २)
(३) विदेशों में एक साल २।)
(४) ब्रह्मचर्य के साधन (१-२ भाग) ।~)
(५) पापों की जड़ शराब ।~) =)॥
(६) हमारा शत्रु तम्बाकू का नशा ।=) =)॥
(७) व्यायाम का महत्व ≡)
(८) नेत्ररक्षा ≡)
(६) दन्तरक्षा ≡)

२—उत्तर प्रदेशीय सरकार ने पंचायत पुस्तकालयों के उपयोगार्थ निम्नलिखित पुस्तकें स्वीकृत की हैं :—

(१) नेत्ररक्षा ≡)
(२) दन्तरक्षा ≡)
(४) पापों की जड़ शराब ।~) =)॥
(३) हमारा शत्रु तम्बाकू का नशा ।=) =)॥

३—निम्न पुस्तकें भारतवर्षीय आर्यकुमार परिषद् की धार्मिक परीक्षाओं के पाठ्यक्रम में निर्धारित हैं।—

(१) आदर्श ब्रह्मचारी ।)
(२) वैदिक गीता ३)
(३) व्यायाम का महत्व ≡)
(४) ब्रह्मचर्यामृत बाल सं०।=) साधारण =)॥
(५) महर्षि दयानन्द और महात्मा गान्धी २)

(६) संस्कृत कथा मंजरी ।-) (७) मनोविज्ञान तथा शिवसंकल्प २॥)

४—निम्न पुस्तकें विरजानन्द संस्कृत परिषद् की परीक्षाओं में निर्धारित हैं—

१. वैदिक गीता ३)
२. संस्कृतांकुर १।)
३. संस्कृत कथा मंजरी ।-)
४. ब्रह्मचर्यशतकम् ॥=)
५. स्वामी विरजानन्द १॥)
६. संस्कृत क्यों पढ़ें ? ।=)
७. रामराज्य कैसे हो ? ≡)
८. संस्कृत वाङ्मय का संक्षिप्त परिचय ॥)
९. ब्रह्मचर्यामृत बाल सं० ।=)
१०. विदेशों में एक साल २।)
११. ब्रह्मचर्य के साधन १,२,३,४,५,६,७,८,९, भाग
१२. आर्य सिद्धान्तदीप १।)
१३. व्यायाम सन्देश १)
१४. श्रुति सूक्ति शती ≡)
१५. वैदिक धर्म परिचय ॥=)
१६. छात्रोपयोगी विचार माला ॥=)
१७. पंचमहायज्ञ विधि ≡)
१८. तम्बाकू का नशा =)॥
१९. पापों की जड़ शराब =)॥
२०. व्यायाम का महत्व ≡)

५—हमारी निम्न पुस्तकों को ब्रह्मचर्य शिक्षण समिति ने अपने शिविर में स्वाध्यार्थ निर्धारित किया है—

(१) ब्रह्मचर्यामृत =)॥ (२) वैदिक सत्संग पद्धति ।=)

६—हमने अपने जीवन के साढ़े पांच साल (दीपावली सं० २००६ से बैसाखी २०११ तक) के अल्पकाल में ही (१,९७,४०० लगभग दो लाख) छोटी बड़ी पुस्तकों का प्रकाशन किया है तथा चार के तीसरे, और आठ प्रकाशनों के द्वितीय संस्करण प्रकाशित किये हैं। अब तक हमने ५६ छोटी बड़ी पुस्तकों को प्रकाशित किया है। हमारे प्रकाशनों की लोक-

प्रियता का इससे बढ़कर प्रमाण नहीं हो सकता, आप भी हमारे साहित्य से स्वयं लाभ उठाइये तथा अपने इष्ट मित्रों को भी लाभान्वित होने की प्रेरणा दीजिये।

हम आपको विश्वास दिलाते हैं कि आप हमारे व्यवहार से अवश्य सन्तुष्ट होंगे। अपना आर्डर सर्वप्रथम हमें ही भेज कर सेवा का अवसर दीजिये।

हमारे द्वारा प्रकाशित साहित्य

(एक दृष्टि में)

१. ब्रह्मचर्यामृत
साधारण संस्करण =)॥
बाल संस्करण ।=)
२. आदर्श ब्रह्मचारी ।)
३. कन्या और ब्रह्मचर्य ≡)
४. ब्रह्मचर्य के साधन—
भाग १-२ –)॥
भाग ३ [दन्त रक्षा] ≡)
भाग ४ [व्यायाम सन्देश] १)
भाग ५ [स्नानादि] ।=)
भाग ६ [प्राणायाम] छपेगा
भाग ७ [सत्संग] छपेगा
भाग ८ [स्वाध्याय] छपेगा
भाग ९ [भोजन] ॥=)
भाग १० [निद्रा] छपेगा
भाग ११ [सामान्य] छपेगा
५. ब्रह्मचर्य शतकम् ॥=)
६. व्यायाम का महत्व ≡)
७. आसनों के व्यायाम ॥)
८. सदाचार पंजिका ॥)
९. स्वप्नदोष और उसकी चिकित्सा =)॥
१०. पापों की जड़ शराब—
साधारण संस्करण =)॥
बाल संस्करण ।–)
११. तम्बाकू का नशा—
साधारण संस्करण =)॥
बाल संस्करण ।–)
१२. हित की बातें –)॥
१३. बाल विवाह से हानियां –)
१४. बिच्छु विष चिकित्सा =)
१५. चकबन्दी कानून ॥)
१६. संस्कृत कथा मंजरी ।–)
१७. संस्कृतांकुर १।)
१८. श्रुतिसुधा ≡)
१९. श्रुति सूक्ति शती ≡)
२०. हम संस्कृत क्यों पढ़ें ? ।=)
२१. संस्कृत वाङ्मय का संक्षिप्त परिचय ॥)
२२. स्वा० आत्मानन्द की सं० जीवनी –)
२३. महर्षि दयानन्द का कार्य –
२४. स्वामी दयानन्द और महात्मा गांधी २)
२५. दयानन्द और गोरक्षा –)॥
२६. स्वा० विरजानन्द जीवन १॥)
२७. स्वामी श्रद्धानन्द)॥

२८. आर्यसमाज की आवश्यकता (छोटी) ―)

२९. आर्यसमाज की आवश्यकता (बड़ी) ।)

३०. आर्यसमाज के नियमोपनियम =)

३१, वैदिक सन्ध्या पद्धति ―)

३२. वैदिक सन्ध्या हवन पद्धति ≡)

३३. वैदिक सत्संग पद्धति ।=)

३४. कर्तव्यदर्पण ॥=)

३५. पंचमहायज्ञ विधि ≡)

३६. वैदिक गीता ३)

३७. पंजाब की भाषा लिपि ―)

३८. दृष्टान्तमंजरी २)

३९. आर्य कुमार गीतांजलि
भाग १ ≡)
भाग २ ≡)

४०. क्या हम आर्य हैं ? ―)

४१. नेत्ररक्षा ≡)

४२. रामराज्य कैसे हो ? ≡)

४३. आर्य सिद्धान्त दीप १।)

४४. वैदिक धर्म परिचय ॥=)

४५. मनोविज्ञान तथा शिवसंकल्प २॥)

४६. आर्योद्देश्य रत्नमाला ―)

४७. विदेशों में एक साल २।)

४८. छात्रोपयोगी विचार माला मूल्य ॥=)

४९. काशमीर यात्रा (छपेगी)

हमारे प्रमुख प्रकाशनों का संक्षिप्त परिचय

१. स्वामी विरजानन्द मूल्य १॥)

ले० श्री स्वामी वेदानन्द जी महाराज

अनेक वर्ष हुए श्री पं० देवेन्द्रनाथ जी ने महर्षि दयानन्द के गुरु स्वामी विरजानन्द का जीवन चरित्र लिखा था। उसे समाप्त हुए भी कई वर्ष बीत गये। तब से महर्षि दयानन्द के गुरु स्वामी विरजानन्द जी महाराज के जीवन चरित्र की बड़ी मांग थी। इसी मांग को दृष्टि में रखते हुए स्वामी जी महाराज का यह

प्रामाणिक जीवन चरित्र लिखा गया है। इस में स्वामी जी सम्बन्धी अनेक ऐसी नवीन घटनाओं को दे दिया गया है जिन का पता बहुत से भाइयों को अभी तक नहीं था।

२. दृष्टान्त मञ्जरी मूल्य २)

ले० पं० जगत्कुमार शास्त्री

इसमें अनेक महापुरुषों की जीवनियों से ११४ घटनायें दी गई हैं जिनका पाठ पाठकों में सत्य, न्याय प्रियता, साहस, परिश्रम मनोबल, देशभक्ति, समाज प्रेम, सेवा, धैर्य आदि गुणों का संचार करेगा। विद्यार्थियों के लाभार्थ यह मोटे अक्षरों में छापी गई है। प्रत्येक लेखक, व्याख्याता तथा अध्यापक के पास इसकी एक प्रति अवश्य रहनी चाहिए।

३. व्यायाम संदेश मू० १)

ले० आचार्य भगवान्देव

इसमें व्यायाम सम्बन्धी अनेक आवश्यक बातें यथा—व्यायाम क्यों करें, कब करें, कौनसा करें, कैसा करें, देशी या विदेशी व्यायामों की तुलना एवं उनके हानि लाभ दिये गए हैं। आसन, दण्ड, बैठक के फोटो—चित्र होने के कारण इसकी उपयोगिता और भी बढ़ गई है।

४. आसनों के व्यायाम

ले० भाष्याचार्य श्री वेदव्रत, गुरुकुल झज्जर

इसमें तीन दर्जन से अधिक आसनों का परिचय, उनके करने की विधि एवं लाभ समझाये गये हैं। प्रत्येक आसन का फोटो चित्र इस पुस्तक की अपनी विशेषता है।

५. आर्य सिद्धान्त दीप मू० १।)

ले० पं० मदनमोहन विद्यासागर

आर्य सिद्धान्तों पर अपने ही ढंग की अनोखी पुस्तक है।

आर्य सिद्धान्तो का वास्तविक स्वरूप एवं परिचय जानने के लिए इसका स्वाध्याय अत्यन्त आवश्यक है। इसकी एक प्रति प्रत्येक समाज, कुमारसभा, लेखक एवं व्याख्याता के पास अवश्य होनी चाहिए। पुस्तक क्या है, गागर में सागर भरने की कहावत को सिद्ध करती है।

६. चकबन्दी कानून मू० ।।)

लें० चौ० बलवन्तसिंह एम० एल० ए०

इसमें चकबन्दी के साथ, चकबन्दी कैसे होगी, चकबन्दी का कानून इत्यादि अनेक विषय अत्यन्त सरल भाषा में समझाये गये हैं। प्रत्येक किसान, जमींदार एवं वकील को इसके स्वाध्याय से लाभ उठाना चाहिए।

७. संस्कृत वाङ्मय का संक्षिप्त परिचय मू० ।।)

ले० श्री पंडित जगदेवसिंह जी 'सिद्धांती'

भू० पू० आचार्य गुरुकुल किरठल

वेदों से लेकर आज तक के प्रसिद्ध संस्कृत ग्रंथों के निर्माण का समय, लेखक का नाम तथा उन का विषय इत्यादि इस में दिए गये हैं। यह संस्कृत पाठशालाओं एवं परीक्षाओं के पाठ्यक्रम में लगाने योग्य अनुपम पुस्तक है। इसकी विशेषता इसी से सिद्ध है कि यह 'विरजानन्द संस्कृत परिषद्' की संस्कृत परीक्षाओं में निर्धारित है।

८. सदाचार पञ्चिका मू० ।।)

लेखक शारदा 'प्रभाकर'

यह डायरी आपके जीवन को अवश्य ही उच्च एवं नियमित बनाने में सहायता देगी। इसकी विशेषता यह भी है कि यह आपको डायरी का काम भी देगी तथा जिस तारीख से भी आप इसका

उपयोग आरम्भ करेंगे तभी से आगे एक वर्ष के लिए काम देगी।

९. संस्कृत क्यों पढ़ें ? मू० ।=)

ले० स्वामी वेदानन्द सरस्वती

ऐसे उच्चकोटि के विद्वान् की लेखनी से लिखी यह पुस्तिका संस्कृत भाषा के महत्व को समझाने के लिए अत्यन्त उपयोगी सिद्ध होगी। प्रत्येक संस्कृत प्रेमी को इसका प्रचार करना चाहिये।

१०. मनोविज्ञान तथा शिवसंकल्प (सजिल्द) मू० २॥)

ले० स्वामी आत्मानन्द सरस्वती

योग मार्ग के पथिकों और विद्यार्थियों के लिए अत्यन्त उपयोगी ग्रन्थ है। पहला संस्करण हाथों-हाथ समाप्त हो गया था। इस दूसरे संस्करण की भी थोड़ी सी प्रतियाँ शेष रह गई हैं। शीघ्र मंगाइए, अन्यथा कहीं ऐसा न हो कि आपको पश्चात्ताप करना पड़े।

११. महर्षि दयानन्द और महात्मा गांधी मू० २) सजिल्द

ले० पं० धर्मदेव विद्यामार्तण्ड

इस युग में दो ऐसे महापुरुष हुए हैं जिनकी धार्मिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक और सामाजिक विचारधारा ने इस युग का निर्माण किया है। अनेक अङ्गों में जहाँ ये दो महापुरुष—ऋषि दयानन्द और महात्मा गांधी—एकमत थे, वहां कुछ एक बातों में उनका परस्पर भेद भी था। उन दोनों के विचारों की समता एवं भेद को जाने बिना वर्तमान राजनीति को समझना कठिन है। इसमें इन दोनों महात्माओं के धर्म, समाज, तत्वज्ञान तथा राजनीति विषयक विचारों की निष्पक्ष रूप से तुलना की गई है। इसका महत्व इसी से जाना जा सकता है कि यह भारतवर्षीय आर्यकुमारपरिषद् की परीक्षाओं के पाठ्य-क्रम में निर्धारित है।

१२.पूर्वी अफ्रीका और मारीशस में भारतीय संघर्ष
ले० स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी महाराज मू० २।)

अनेक चित्रों से आभूषित इस पुस्तक में श्री स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी महाराज द्वारा की गई मारीशस, टांगानीका, केनिया, यूगैंडा आदि देशों की यात्रा का विशद विवरण सरल एवं रोचक भाषा में दिया गया है। इन देशों की धार्मिक राजनीतिक, सामाजिक अवस्था, यहां पर भारतीय संस्कृति का प्रचार एवं उसकी रक्षार्थ किये गये संघर्ष का वर्णन दिया गया है। एक बार आरम्भ कर देने पर पुस्तक छोड़ने को जी नहीं चाहता।

१३. ब्रह्मचर्य रक्षा के साधन
ले० आचार्य भगवान्देव

ब्रह्मचर्य रक्षा के साधनों को भली भांति समझने के लिये आचार्य भगवान् देव जी ने यह लेखमाला आरम्भ की है, जो कि ग्यारह भागों में समाप्त होगी। इसके प्रथम एवं द्वितीय (संयुक्त भाग) में प्रातः जागरण, चक्षुः-स्नान उषः-पान तथा शौच आदि के महत्व तथा प्रकार, तृतीय भाग में दांतों की उपयोगिता तथा उनके पुष्ट बनाने की विधि, चतुर्थ में व्यायाम तथा पंचम भाग में स्नान का समय, स्थान एवं वास्तविक विधि और संध्या की उपयोगिता तथा यज्ञ आदि, नवें भाग में भोजन पर सप्रमाण प्रकाश डाला गया है। मूल्य क्रमशः ।-), ≡), १), ।=) और ॥=) हैं। शेष भाग भी शीघ्र ही प्रकाशित होंगे।

१४. वैदिक गीता—(सजिल्द) मू० ३)
ले० स्वा० आत्मानन्द जी महाराज

परिवर्धित एवं संशोधित तृतीय संस्करण, सुन्दर दुरंगी छपाई। आज तक गीता के कितने ही भाष्य हो चुके हैं। किन्तु

किसी भी विद्वान् का आज तक यह साहस नहीं हो सका था कि गीता-रत्न पर आई हुई रेत मिट्टी को अपनी तीक्ष्ण लेखनी से दूर करे और उसके शुद्ध और उज्वल स्वरूप को जनता के सम्मुख रखे। यह श्रेय: पुस्तक के लेखक स्वामी आत्मानन्द जी महाराज को ही प्राप्त है कि उन्होंने इस काम को इतनी सफलतापूर्वक पूरा किया है। गीता एवं कृष्ण भक्तों के लिये यह अनोखा ग्रन्थ है।

१५. संस्कृतांकुर—मू० १।)

ले०—स्वामी वेदानंद जी 'तीर्थ'

यह संस्कृत सीखने वालों के लिये अपूर्व पुस्तक है जो इस प्रकार लिखी गई है कि साधारण सा पढ़ा लिखा व्यक्ति भी बिना किसी विशेष सहायता के संस्कृत सीख सकता है। इसमें रटन्त की भी विशेष आवश्यकता नहीं पड़ती। स्कूलों के आठवीं श्रेणी के विद्यार्थियों के लिये अत्यन्त लाभदायक है।

१६. संस्कृत कथा मंजरी—मू० ।−)

लेखक स्वामी वेदानन्द जी

इसमें अनेक ऐतिहासिक कथायें अत्यन्त सरल संस्कृत भाषा में दी हैं जिनसे साधारण संस्कृत जानने वाला भी लाभ उठा सकता है। छोटे बच्चों को संस्कृत का अभ्यास कराने के लिये यह अत्युपयोगी है।

१७. ब्रह्मचर्य शतकम्—मू० ।।=)

लेखक आचार्य मेधाव्रत जी

इस में ब्रह्मचर्य सम्बन्धी १०० वेदमन्त्रों का सुन्दर सरल संस्कृत श्लोकों में स्वतन्त्र अनुवाद किया गया है। श्लोकों की भाषा अतिरोचक है। उनका साथ साथ हिन्दी अनुवाद भी

दिया गयाहै । ब्रह्मचर्य प्रेमियों को इन्हें कंठस्थ करके समय समय पर गाते रहना चाहिये ।

१८. वैदिक सत्संग पद्धति

मूल्य ।=) इस में अर्थ सहित सन्ध्या के मन्त्र, हवनमन्त्र, आर्यपर्वों एवं संस्कारों को मनाने का ढंग, वैदिक साहित्य, आर्यसमाज के सत्संग के नियम आदि २५ विषयों का समावेश है ।

१६--वैदिक धर्म परिचय

ले० पं० जगदेवसिंह शास्त्री 'सिद्धान्ती' मूल्य ।।=)

इस पुस्तक में प्रश्नोत्तर के रूप में वैदिक धर्म के गूढ़ रहस्यों को सरलतया समझाया गया है । छोटे बालकों एवं साधारण व्यक्तियों के बहुत लाभ की पुस्तक है । वैदिक धर्म के विषय में सरलता से सब बातों की जानकारी के लिये इसे अवश्य पढ़ना चाहिये ।

२०--छात्रोपयोगी विचारमाला

ले० पं० जगदेवसिंह जी शास्त्री सिद्धान्ती मूल्य ।।=)

इस पुस्तक में छात्रों के लिये ईश्वर, संस्कृति, नमस्ते, राष्ट्रभाषा, आर्य, विद्या, आर्य समाज की आवश्यकता, आर्यकुमार सभा की आवश्यकता, शिष्टाचार, धैर्य, सत्य, अहिंसा, स्वदेशभक्ति, सामाजिक कुरीतियां, नियन्त्रण, सिनेमा इत्यादि विषयों पर प्रकाश डाला गया है । छात्रों के लिये अत्यन्त उपयोगी पुस्तक है ।

हमारे द्वारा विशेष प्रचारित साहित्य

१—हितैषी की गीता मू० ।।।)

इसमें भगवद् गीता के श्लोकों का सुन्दर एवं सरस हिन्दी दोहों में अनुवाद है । अक्षर मोटे और सरल होने के कारण यह

सर्व साधारण के लिये और भी अधिक उपयोगी हो गई है।

२—कृषि विज्ञान—मू० ।।।)

ले०--प्रि० शिवसिंह जी एम०ए०—इसमें खेती-बाड़ी सम्बन्धी बहुत सी आवश्यक बातों का वर्णन किया गया है। प्रत्येक व्यक्ति को इसे पढ़कर लाभ उठाना चाहिये।

३—राष्ट्रनिर्माण में गुरुकुल का स्थान

लेखक श्री मुनिदेवराज जी विद्यावाचस्पति. मूल्य ।), इस पुस्तक में गुरुकुल क्या है, गुरुकुल का उद्देश्य क्या है? गुरुकुल आश्रम जीवन का लक्ष्य क्या है? तथा वर्तमानकाल में किसी के आगे हाथ पसारे बिना गुरुकुल कैसे चलाया जा सकता है? इत्यादि विषयों पर प्रकाश डाला गया है।

४—दयानन्द दिव्य दर्शन

लेखक श्री देवेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय, मूल्य ।।), इसमें महर्षि दयानन्द जी के समस्त कार्यों पर विशेष महत्वपूर्ण प्रकाश डाला गया है। पुस्तक पठनीय एवं मननीय है। इसमें लेखक ने महर्षि के प्रति अपने हृदयोद्‌गार प्रकट किये हैं।

५--भारतीय संस्कृति के तीन प्रतीक, मूल्य ।।)

लेखक श्री राजेन्द्र जी, यह तीन प्रतीक 'ओ३म', 'आर्य' और 'नमस्ते' हैं। इस पुस्तक में इन तीन विषयों का विस्तृत स्पष्टीकरण किया गया है। इसमें बताया गया है कि यह तीन प्रतीक न केवल सांस्कृतिक अपितु राष्ट्रीय दृष्टिकोण से भी विशेष महत्व रखते हैं।

६--आदर्श नारीधर्म शिक्षा मूल्य ४)

लेखक पं० ब्रजमोहन जी नागर, लेखक ने अपने इस अमूल्य ग्रन्थ में विवाहित स्त्री-पुरुषों के लिये उपयोगी शिक्षाओं का भंडार भर दिया है। गृहस्थ का कोई ऐसा विषय नहीं है जिस पर लेखक

१४८ सुधारक रजि० नं० ई० पी० ५०

पता

ग्राहक संख्या ४४२
सेवा में श्री— जगदीशचन्द्र जी विद्यार्थी C/
मु० मुरारी ब्रादर्स
पो० कमला नगर देहली
जि०

ने प्रकाश न डाला हो। गृहस्थ की महिमा को जानने तथा अपने कर्तव्यों को समझने के लिये स्त्री पुरुषों को इस पुस्तक का अवश्य पाठ करना चाहिये ।

७--ब्रह्मचर्य ही जीवन है मूल्य १।।)

लेखक स्वामी शिवानन्द जी, ब्रह्मचर्य के प्रत्येक विषयों के दृष्टिकोण से यह पुस्तक उत्तम है। भाषा अत्यन्त सरल है जिससे विद्यार्थियों की समझ में सरलता से आ जाती है। अब तक इसके अनेक संस्करण निकल चुके हैं।

८--महर्षि दयानन्द मूल्य ।।=)

ले० श्री पं० अखिलेश शर्मा। यह एक उच्चकोटि की रचना है जिसकी शैली महाकवि भूषण कृत "शिवाबावनी" के समान है। छन्दों के साथ-साथ सरल हिन्दी टीका भी दे दी गई है। कागज अत्युत्तम एवं मुख्यपृष्ठ कलापूर्ण बहुरंगा है।

९--मनुस्मृति मूल्य ५)

इस प्रसिद्ध ग्रन्थ की सरल भाषा में टीका की गई है जिससे सर्वसाधारण भी लाभ उठा सके। इसका अध्ययन प्रत्येक व्यक्ति को धर्म समझ कर अवश्य करना चाहिये।

वैदिक साहित्य सदन

आर्यसमाज मन्दिर, सीताराम बाजार, देहली ६।

प्रकाशक आचार्य भगवान्देव गुरुकुल झज्जर ने सम्राट् प्रेस, पहाड़ी धीरज देहली में मुद्रक जगदेवसिंह शास्त्री, सिद्धान्ती के प्रबन्ध से छपवाया।

ल झज्जर (रोहतक) का सचित्र मासिक पत्र

सुधारक

पुनन्तु मा देवजनाः।

वर्ष ३	गुरुकुल झज्जर (रोहतक) आश्विन-कार्तिक सं० २०१२	वार्षिक मूल्य २)
अङ्क १-२	सितम्बर-अक्टूबर १९५५—दयानन्दाब्द १३१	इस अङ्क का ।।)

* सत्सङ्ग-स्वाध्याय विशेषाङ्क *

सर्वशास्त्र - निष्णात वेदमूर्त्ति संन्यासि-प्रवर

पूज्य स्वामी वेदानन्द जी सरस्वती

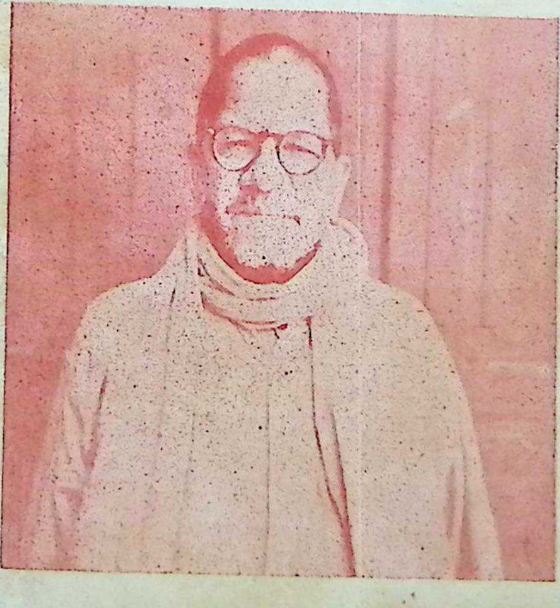

आप वेद, ब्राह्मण, उपनिषद् दर्शन, व्याकरण, निरुक्त, विज्ञान और इतिहास आदि सर्वशास्त्रों तथा अनेक भाषाओं के पारंगत विद्वान् हैं। आप ने अनेक उत्तमोत्तम ग्रन्थों का प्रणयन किया है। विरजानन्द वैदिक संस्थान पो० खेड़ा खुर्द (देहली) के आप संचालक हैं।

विषय-सूची

सत्सङ्ग

१ सम्पादकीय — ३
२ वेदोपदेश — ५
३ वेद में दुष्टों की सङ्गति का निषेध — ७
४ वेद में सत्सङ्ग करने का विधान — ८
५ सत्सङ्ग का अर्थ — १०
६ सत्सङ्ग-महिमा — १०
७ कुसङ्ग-दोष — १२
८ शिक्षा और कुसङ्ग — १६
९ सत्सङ्ग-लाभ — २३
१० सङ्ग किस का करना चाहिये — २७
११ कुसङ्ग के आधुनिक स्रोत सिनेमा, सरकस, रामलीला, स्वाङ्ग, नाच-गानादि — ३१

स्वाध्याय

१२ स्वाध्याय की आवश्यकता — ३७
१३ स्वाध्याय का अर्थ — ४२
१४ स्वाध्याय की महिमा — ४४
१५ स्वाध्याय का फल — ४७
१६ स्वाध्याय का क्रम — ५१
१७ स्वाध्याय और श्रावणी-पर्व — ५३
१८ स्वाध्याय और ब्रह्मचर्य — ५५
१९ स्वाध्याय किस का करें और क्यों ? — ५६
२० आर्ष ग्रन्थों का महत्त्व — ६०
२१ उपसंहार — ६१

विज्ञापन दर

	पूरा पृष्ठ	आधा पृष्ठ	चौथाई पृष्ठ
एक बार	१६)	९)	५)
तीन बार	४०)	२४)	१३)
छः बार	७५)	४५)	२५)
१ वर्ष तक	१३०)	७५)	४५)

टाईटिल अन्तिम १५% अधिक।
,, तृतीय १०% अधिक
विशेषांक में सवाया। कम से कम ४)

संस्थापक व सम्पादक—ब्र० भगवान्देव आचार्य गुरुकुल झज्जर, रोहतक
व्यवस्थापक—भाष्याचार्य ब्र० वेदव्रत सिद्धान्तवाचस्पति,
सह-सम्पादक—पं० विश्वप्रिय शास्त्री साहित्यरत्न,
सह-व्यवस्थापक—भाष्याचार्य ब्र० सुदर्शनदेव सिद्धान्तवाचस्पति

सम्पादकीय--

शुद्ध विचार, सात्विक आहार, व्यायाम, प्राणायाम, सत्सङ्ग, स्वाध्याय तथा ईश्वर भक्ति ; ब्रह्मचर्य पालन करने के लिये इनका श्रद्धा-पूर्वक अनुष्ठान करना चाहिये। वीर्यरक्षा के ये मुख्य साधन हैं, इनका श्रद्धा-पूर्वक नियमित रूप से पालन करने वाला व्यक्ति ही ब्रह्मचारी रह सकता है, अन्यथा ब्रह्मचर्य का पालन करना या वीर्यरक्षा कर ऊर्ध्वरेता बन सकना असम्भव है।

पाठकवृन्द ! समय-समय पर उपरिलिखित साधनों पर हम प्रकाश डालते रहे हैं तथा इस प्रस्तुत अङ्क में भी इन्हीं साधनों में से "सत्सङ्ग" और "स्वाध्याय" इन दो साधनों पर विशेष प्रकाश डाला गया है। सामान्व दृष्टि से यह अङ्क सभी नर-नारियों के लिये अत्युपयोगी है ; किन्तु नवयुवक विद्यार्थी, ब्रह्मचारी तथा ब्रह्मचारिणियों के लिये तो विशेषतया लिखा ही गया है। अतः उनको इसका बार बार स्वाध्याय कर विशेष लाभ उठाना चाहिये।

प्रायः ऐसा देखा जाता है कि उत्तम तथा अधम विद्यार्थियों या सज्जन और दुर्जनों में दलबन्धी(पार्टीबाजी)हो जाया करती है। कुछ भावुक नवयुवक किसी महापुरुष के सत्सङ्ग से अथवा उत्तम ग्रन्थों के स्वाध्याय से कल्याण मार्ग पर चलना प्रारम्भ कर देते हैं, किन्तु दुष्ट नीच साथियों के दबाव से वे पुनः उसी पाप-पङ्क में फंस जाते हैं। क्योंकि जब कोई उन्नति करता है, सन्मार्ग पर चलता, है। तब निकृष्ट व्यक्ति उसकी उन्नति को सहन न कर सकने के कारण उसे पतित करने का यत्न करते हैं। चाणक्य ने कहा है—

मूर्खाणां पण्डिता द्वेष्या निर्धनानां महाधनाः।
व्रतिनः पापशीलानामसतीनां कुलाङ्गनाः॥

मूर्ख सदा विद्वानों से, निर्धन धनवानों से पापी=दुराचारी सदाचारी पुरुषों से और कुलटा=दुश्चरित्र स्त्रियाँ पतिव्रताओं

से सर्वदा द्वेष करती हैं। ये दुरात्मा स्वयं गड्ढे में से निकल नहीं सकते और दूसरे सदाचारी व्यक्तियों की उन्नति भी इन्हें सहन नहीं होती, अतएव सदा जलते-भुनते रहते हैं तथा उनको भी अपने साथ मिलाने का, पतति करने का भरसक प्रयत्न करते हैं। किन्तु पुरुषसिंह वे ही हैं जो इन दुरात्माओं का प्रतिवाद करते हुए अपने लक्ष्य पर पहुंच जाते हैं। धीर वे ही हैं जो आपत्ति-काल में भी अडिग रहते हैं, जिनका चित्त विकार उपस्थित होने पर भी अपने लक्ष्य से कभी विचलित नहीं होता। कहा भी है–

"विकारहेतौ सति विक्रियन्ते येषां न चेतांसि त एव धीराः"

इसलिये हे कल्याण मार्ग के पथिक ! तू श्रद्धा से, धीरता से, वीरता से अपने पथ पर चलते जाना, सब विघ्न बाधाओं को छिन्न-भिन्न करते हुए आगे ही आगे बढ़ते जाना, एक दिन तेरे लक्ष्य की पूर्ति अवश्य होगी, आनन्दमय कल्याणकारी प्रभु की प्राप्ति होगी, और तू निहाल हो जायगा, तेरी सम्पूर्ण साधनायें तथा यातनायें सफल हो जायेंगी। किन्तु कहीं मार्ग में भटक न जाना. सुख का मार्ग, प्रभु की प्राप्ति का मार्ग यही है, एक मात्र यही। "नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय"

यदि कुछ नवयुवकों के लिये भी, अन्धकार में भटकते हुए कल्याणेच्छुओं के लिये भी इस अङ्क ने प्रकाशस्तम्भ का कार्य किया तो हम अपने परिश्रम को सफल समझेंगे।

———

वेदोपदेश

पृथक् प्रायन् प्रथमा देवहूतयोऽकृण्वत श्रवस्यानि दुष्टरा ।
न ये शेकुर्यज्ञियां नावमारुहमीर्मैव ते न्यविशन्त केपयः ॥
(ऋ० १०।४४।६) (अथर्व० २०।६४।६)

(प्रथमाः) जो प्रथम कोटि के सर्वोत्तम पुरुष हैं (देवहूतयः) देवों की = दिव्य गुणों का आह्वान करने वाले हैं, जिन्होंने अपने अन्दर विद्या, ब्रह्मचर्य, सदाचार, ईश्वर भक्ति आदि श्रेष्ठ गुणों को धारण किया है ; वे (पृथक् प्रायन्) अन्य साधारण मार्ग से पृथक् ही उत्तम मार्ग से अपने-अपने कर्मानुसार जाते हैं। वे (दुष्टराः) दुष्प्रापणीय (श्रवस्यानि) ज्ञानैश्वर्यों को (अकृण्वत) प्राप्त कर लेते हैं। किन्तु (ये) जो (यज्ञियां नावं) इस उत्तम कर्म-रूपी यज्ञमयी नौका पर (आरुहं न शेकुः) नहीं चढ़ सके, अपनी निर्बलताओं के कारण शुभ कर्म नहीं कर सके (ते) वे (केपयः) कुत्सित आचरण करने वाले दुष्ट पापी जन (ईर्मा एव) यहीं इसी लोक में (न्यविशन्त) नीचे ही नीचे गिरते जाते हैं।

कल्याण चाहने वाले वन्धुओ ! इस संसार से पार कर सकने वाली नौका यज्ञमयी ही है। यज्ञ का अर्थ है "देवपूजा-सङ्गति-करण और दान।" देवपूजा—देवों के भी देव महादेव परमेश्वर की स्तुति प्रार्थना उपासना करना और उसकी आज्ञानुसार अपने जीवन को उत्तम बनाना तथा विद्वानों की, माता पिता आचर्या तथा गुरुजनों की सेवा शुश्रूषा करना और सूर्य-चन्द्रादि भौतिक देवों से भी यथोचित लाभ उठाना।

सङ्गतिकरण--वेदशास्त्रवेत्ता उत्तम विद्वान् धार्मिक पुरुषों के पास जाकर उनके सत्सङ्ग से लाभ उठाना। वेदादि सत्य शास्त्रों का स्वाध्याय करना। कुसंग से बचना।

दान—पात्र-कुपात्र, देश-काल का विचार कर श्रेष्ठ धार्मिक

स्थानों में श्रद्धा-भक्ति से यथाशक्ति दान देना।

शतपथ ब्राह्मण में कहा है—'यज्ञो वै श्रेष्ठतमं कर्म' अर्थात् जो जो श्रेष्ठ कर्म हैं वे सभी यज्ञ हैं। यदि हम इन यज्ञिय कर्मों का अनुष्ठान न करेंगे तो हम न केवल ऊपर ही नहीं उठ सकेंगे, किन्तु अपने मनुष्यत्व को भी खो बैठेंगे, हमें नीचे ही नीचे पशु-आदि निकृष्ट योनियों में जाना पड़ेगा।

देखो, बहुत से 'देव-हूति' पुरुष देवलोक, पितृलोक, ब्रह्मलोक आदि दुष्टर=दुष्प्राप्य लोकों में पहुँच गये हैं, वे मनुष्यत्व से ऊपर उठकर शुभ कर्मों द्वारा देव हो गये है, उन्होंने अपने अन्दर दिव्य गुणों को धारण किया है और 'प्रथम' उत्कृष्ट=उत्तम ज्ञानी बने हैं।

दूसरी प्रकार के वे अभागे व्यक्ति हैं जो थोड़ा सा स्वार्थ त्याग न करने के कारण, अपनी निर्बलताओं के कारण, उत्तम कर्मों को नहीं कर सके और यज्ञिय न होने के कारण संसार सागर को नहीं तर सके, अतः यहीं बन्धे पड़े हैं। ये 'केपि' कुत्सित आचरणी लोग यहाँ=इस संसार में भी नीचे ही धंसते जा रहे हैं, अब इनका ऊपर उठना कठिन हो गया है।

यदि मनुष्य योनि पाकर भी हम स्वार्थ त्याग कर उत्तम कर्म न कर सके, कुत्सिताचरणी बनकर मनुष्यत्व को भी खो बैठे, तो पुनः हमारे कल्याण का अवसर कब आयेगा। यह कौन जानता है? हम उस पाप-योनि चक्र से निकल कर कब पुनः मनुष्य योनि को प्राप्त कर सकेंगे, यह कौन बतला सकता है।

इसलिये हमें इसी जन्म में यत्न करना चाहिये कि हम उत्तम कर्म कर देव बनें, प्रभु को प्राप्त करें, कम से कम इतना अवश्य करें कि जिससे हमारा पशुत्वादि योनियों में अधः पतन तो न हो।

वेद में दुष्टों की सङ्गति का निषेध

महर्षि दयानन्द जी महाराज यजुर्वेद के भाष्य में लिखते हैं—"सब मनुष्यों को उचित है कि दुष्ट गुण और स्वभाव वाले मनुष्यों का निषेध करें, इसका उपदेश इस मन्त्र में किया है—

प्रत्युष्टँ रक्षः प्रत्युष्ट अरातयो निष्टप्तँ रक्षो निष्टप्ता अरातयः। उर्वन्तरिक्षमन्वेमि ॥ (यजुर्वेद० १/७)

पदार्थः—मुझ को चाहिये कि पुरुषार्थ के साथ (रक्षः) दुष्ट गुण और दुष्ट स्वभाव वाले मनुष्य को (प्रत्युष्टम) निश्चय करके निर्मूल करूं, तथा (अरातयः) जो राति अर्थात् दान आदि धर्म से रहित दयाहीन दुष्ट शत्रु हैं, उनको (प्रत्युष्टाः) प्रत्यक्ष निर्मूल (रक्षः) दुष्ट स्वभाव वा दुष्ट गुण विद्याविरोधी स्वार्थी मनुष्य और (निष्टप्तम) (अरातयः) छलयुक्त होके विद्या का ग्रहण वा दान से रहित दुष्ट प्राणियों को (निष्टप्ताः) निरन्तर सन्ताप युक्त करूं। इस प्रकार करके (अन्तरिक्षम्) सुख को सिद्ध करने वाले उत्तम स्थान और (उरु) अपार सुख को (अन्वेमि) प्राप्त होऊं॥

भावार्थ—ईश्वर यह आज्ञा देता है कि सब मनुष्य अपने दुष्ट स्वभाव को छोड़कर, विद्या और धर्म के उपदेश से दूसरों के भी दुष्ट स्वभाव को छुड़वाकर अविद्या अधर्म आदि के दुष्ट व्यवहारों से पृथक् करना चाहिये, तथा उनको बहुत प्रकार का ज्ञान और सुख देकर सब मनुष्यादि प्राणियों को विद्या धर्म पुरुषार्थ और नाना प्रकार के सुखों से युक्त करना चाहिये ॥"

इस मन्त्र द्वारा परमात्मा ने मनुष्य को यह उपदेश कितने स्पष्ट शब्दों में दिया है कि अपनी दुष्टता को छोड़कर श्रेष्ठ बनो। दूसरे साथियों को भी श्रेष्ठ बनाओ। यदि दूसरे हमारे निकट रहने वाले दुष्ट हैं, सदाचारी नहीं हैं, तो उनका भूल कर भी सङ्ग नहीं करना चाहिये, इसी में कल्याण है, यही उन्नति का मूल मन्त्र है।

वेद में सत्सङ्ग करने का विधान

स्वस्ति पन्थामनुचरेम सूर्याचन्द्रमसाविव। पुनर्ददताऽघ्नता जानता सङ्गमेमहि ॥ (ऋ० ५। ५१। १५॥)

(सूर्याचन्द्रमसौ इव) सूर्य और चन्द्रमा के समान हम सब स्वयं (स्वस्ति पन्थाम्) उत्तम कल्याणकारी मार्ग का (अनुचरेम) अनुसरण करें और (पुनः) तत्पश्चात् (ददता) दानी (अघ्नता) अहिंसक = प्राणिमात्र का उपकार करने वाले (जानता) ज्ञानी= विद्वान् सत्पुरुषों की (सङ्गमेमहि) सङ्गति करें, उनके वतलाये हुए मार्ग पर चलें ।

परमपिता परमात्मा ने कितना सुन्दर उपदेश दिया है कि हम नित्य प्रति नियमपूर्वक कल्याण मार्ग पर चलें, सत्यपथ से कभी विचलित न हों और इसके लिये हम दानी उदार परोपकारी विद्वान् पुरुषों का सत्सङ्ग करें ।

कल्याण मार्ग पर चलने के लिये सूर्य और चन्द्रमा की उपमा दी गई है, इससे दो शिक्षायें मिलती हैं, प्रथम यह कि हम सूर्य और चन्द्रमा की भान्ति नियमित रूप से सन्मार्ग पर चलते रहें, कभी भी इस नियम को न तोड़ें । दूसरा यह कि जिस प्रकार सूर्य और चन्द्रमा दिन-रात जनता को = प्राणिसमूह को प्रकाश का मार्ग दिखलाते हैं, अन्धकार को दूर भगाते हैं, ठीक इसी प्रकार हम भी अन्य लोगों का पथ -.दर्शन करें, अज्ञानान्धकार को ज्ञान-सूर्य बन कर नष्ट करें ।

दूरे पूर्णेन वसति दूर ऊनेन हीयते ।
महद्यक्षं भुवनस्य मध्ये तस्मै वलिं राष्ट्रभृतो भरन्ति ॥
(अथर्व-१०। ८। १५)

(पूर्णेन) पूर्ण के, उत्तम के साथ रहने से (दूरे वसति) सामान्य जनों से दूर रहता है और (ऊनेन) न्यून के=हीन के

साथ रहने से भी (दूरे हीयते) दूर गिर जाता है=पतित हो जाता है। (भुवनस्य मध्ये) सब लोक लोकान्तरों में एक (महद्‌यक्षम्) सब से बड़ा पूजनीय देव परमात्मा है (तस्मै) उसी के लिये (राष्ट्रभृतः भरन्ति) राष्ट्र को धारण करने वाले श्रेष्ठ पुरुष वलि अर्पण करते हैं।

इस मन्त्र में उत्तम तथा अधम पुरुषों के सङ्ग का वर्णन करते हुए बतलाया है कि जो श्रेष्ठ पुरुषों का सत्सङ्ग करता है, उसका सम्मान होने के कारण वह अन्य साधारण लोगों से दूर हो जाता है=ऊंचा उठ जाता है, तथा नीच व्यक्ति का सहवास करने से भी दूर गिर जाता है=पतित हो जाता है।

यद्यपि दूर तो दोनों ही होते हैं किन्तु उत्तम का सङ्ग करने वाला आदरणीय और अधम का साथी निन्दनीय होता है। इसलिये जो उत्तम पुरुष हैं वे सब से महान और पूजनीय देव परमात्मा की संगति करते हैं, उसी को स्तुति-प्रार्थना-उपासना करते हैं।

"ईश्वर आज्ञा देता है कि हे मनुष्यो तुम लोगों को विद्या के सिद्ध करणे वाले कार्यों के नियमों में विघ्नकारी दुष्ट जीवों को सदा मारना चाहिये, और सज्जनों के समागम से विद्या की वृद्धि नित्य करनी चाहिये, जिस प्रकार अनेक उद्योगों से श्रेष्ठों की हानि दुष्टों की वृद्धि न हो, सो नियम करना चाहिये, और सदा श्रेष्ठ सज्जनों का सत्कार और दुष्टों को दण्ड देने के लिये उनका वन्धन करना चाहिये।...ईश्वर की आज्ञा का पालन तथा ईश्वर की उपासना करनी चाहिये।"

(यजुर्वेद १। २६ मन्त्र भाष्य)

सत्सङ्ग का अर्थ

'सत्सङ्ग' शब्द में षष्ठी या तृतीया तत्पुरुष समास है। 'सतां-सङ्गः 'सत्सङ्गः' 'सद्भिर्वासङ्गः सत्सङ्गः' सज्जन पुरुषों का या सज्जन पुरुषों से, सङ्ग=समागम करना, सज्जन धार्मिक विद्वानों के मनोहर उपदेश सुनना और उन पर आचरण करना ब्रह्मचर्यादि उत्तम व्रतों का पालन करना, वेदादि सत्शास्त्रों का स्वाध्याय करना, सत्य बोलना, ईश्वर विश्वास, ईश्वर भक्ति, सदाचार आदि जीवनोत्थान के उत्तमोत्तम साधनों का भी सत्सङ्ग में ही समावेश समझना चाहिये। और कुसङ्ग का शब्दार्थ इससे विपरीत समझें।

सत्सङ्ग-महिमा

हमारे शास्त्र सत्सङ्ग की महिमा से भरे पड़े हैं, सभी ने सत्सङ्ग की मुक्त कण्ठ से प्रशंसा की है। वास्तव में सत्संग है ही ऐसा जिस की प्रशंसा करते करते रुकने को जी नहीं चाहता, जिह्वा नहीं थकती और लेखनी भी लिखने से नहीं रुकती। किसी कवि ने क्या ही सुन्दर कहा है—

चन्दनं शीतलं लोके चन्दनादपि चन्द्रमाः।
चन्द्रचन्दनयोर्मध्ये शीतला साधुसङ्गतिः॥

संसार में चन्दन को शीतल माना जाता है, चन्द्रमा की सौम्य किरणें तो उस से भी अधिक शीतलतर हैं, किन्तु चन्दन और चन्द्रमा से भी अधिक शीतलतम साधु-सङ्गति=साधु-महात्माओं का सत्सङ्ग है।

सत्संगः परमं तीर्थं सत्सङ्गः परमं पदम्।
तस्मात्सर्वं परित्यज्य सत्सङ्गं सततं कुरु॥

सत्संग ही परम पवित्र तीर्थ है, सत्संग ही परम पद मोक्ष का

साधन है इसलिये सब दुर्व्यसनों को छोड़ कर सर्वदा सत्संग करना चाहिये।

श्रीमच्छङ्कराचार्य जी लिखते हैं—

सत्संगत्वे निःसंगत्वं निःसंगत्वे निर्मोहत्वम्।
निर्मोहत्वे निश्चलत्वं निश्चलत्वे जीवन्मुक्तः॥

सत्संग द्वारा विवेक ज्ञान हो जाने पर मनुष्य सांसारिक पदार्थों में न फंस कर निःसंग हो जाता है और संसार में न फंसने से मोह स्वयमेव दूर हो जाता है तथा मन की स्थिरता हो जाती है। और जब मन ईश्वरभक्ति में स्थिर हो जाता है तब मनुष्य संसार सागर से तर जाता है।

मलयाचलगंन्धेन त्विन्धनं चन्दनायते।
तथा सज्जनसङ्गेन दुर्जनः सज्जनायते॥

जैसे मलयाचल चन्दन के पर्वत पर निकट का इन्धन भी चन्दन बन जाता है, उसमें भी चन्दन जैसी सुगंध आने लगती है, इसी भान्ति सज्जनों की सङ्गति से दुर्जन भी सज्जन बन जाते हैं। क्योंकि—

महाजनस्य संसर्गः कस्य नोन्नतिकारकः।
पद्मपत्रस्थितं वारि धत्ते मुक्ताफलश्रियम्॥

महापुरुषों के संसर्ग से एक तुच्छ व्यक्ति भी उन्नति कर अत्युत्तम बन जाता है, जैसे वर्षा की एक छोटी सी बूंद कमल के पत्ते के संसर्ग से मोती के सदृश दिखलाई पड़ती है। यह जल बिन्दु समुद्र की सीप में गिरने से वास्तव में मोती ही बन जाता है। किन्तु तपे हुये लोहे पर गिर जाये तो उसका नाम मात्र भी शेष नहीं रहता, समूल नष्ट हो जाता है। ठीक यही अवस्था सत्संग और कुसंग के विषय में समझें।

किसी हिन्दी के कवि ने भी कितना सुन्दर कहा है:—

सत्सङ्ग और कुसङ्ग में बड़ा अन्तरा जान।
गान्धी और लुहार की देखो बैठ दुकान ॥

आप किसी गान्धी=सुगन्धित तैल इतर आदि बेचने वाले की दुकान पर जाकर बैठेंगे तो सब कुछ सुगन्धित हो जायेगा, और पुनः एक लुहार के निकट जाकर बैठिये, वहाँ पर तप्त लोहे की चिनगारियाँ वस्त्र और शरीर को जला देंगी। सत्सङ्ग और कुसङ्ग में यही भेद है। सत्सङ्ग उन्नति के शिखर पर चढ़ा देता है और कुसंग अवनति के गर्त में गिरा देता है।

एक तुच्छ कीट भी फूल के सत्संग से बड़े बड़े राजा महाराजाओं के शिर पर पहुँच जाता है, काच=सीसा भी स्वर्ण के संग से सूर्य की भान्ति चमकने लगता है, मूर्ख भी पण्डित के संसर्ग में रहने से अति चतुर बन जाता है, निस्तेज=शूद्र भी तेजस्वी के सत्संग से स्वयं तेजसम्पन्न हो जाता है, सूर्य के सम्पक से सीसे में भी जलाने की शक्ति उत्पन्न हो जाती है और वह वस्त्रादि को जला देता है। इसीलिये नीतिकारों ने कहा है—"सतां हि संगः सकलं प्रसूते" अर्थात् सज्जन पुरुषों की संगति से सब कुछ मिल जाता है।

सत्संग की महिमा का कहाँ तब वर्णन करें, इसकी महिमा अपार है, इसीलिये किसी कवि ने दो ही शब्दों में कह दिया है,—इसे सर्वदा स्मरण रखें—

यदि सत्संगनिरतो, भविष्यसि-भविष्यसि।
अथ दुर्जनसंसर्गे, पतिष्यसि-पतिष्यसि ॥

यदि सत्संगी बनोगे तो बन जाओगे, और यदि कुसंग में पड़ जाओगे, तो पतित हो जाओगे।

कुसङ्ग दोष

अहो दुर्जनसंसर्गान्मानहानिः पदे पदे।

पावको लोहसंगेन मुद्गरैरभिहन्यते ॥

दुर्जन के संसर्ग में रहने से पद पद पर मानहानि = अपमान सहन करना पड़ता है, शुद्ध पवित्र अग्नि को भी लोहे के साथ घनों से पीटा जाता है। चने के साथ घुन भी पीसा जाता है। सीता को चुराया रावण ने किन्तु दुष्ट के संसर्ग में होने के कारण समुद्र पर सेतु बांधा गया। यह लोकोक्ति है कि—"नीचाश्रयो हि महतामपमानहेतुः" नीच का आश्रय लेने से या उसके निकट रहने से महापुरुषों का भी अपमान होता है।

सार यह है कि सम्पूर्ण दुराचार और विनाश के कारणों की जड़ कुसंगति ही है, अतः अपना कल्याण चाहने वालों को, विशेषतया ब्रह्मचारियों को कुसंग से बचना चाहिये, अर्थात् अष्टमैथुन का सर्वथा त्याग कर देना चाहिये, आँखों से कभी भद्दी वस्तु सिनेमा, रामलीला, नाटक तथा अश्लील चित्रादि को न देखें, कानों से कभी अश्लील गाना, सिनेमा रागिणी आदि न सुनें, नासिका से किसी गन्ध पर मोहित न हों, पाँवों से कुसंगति में न जायें, हाथों से किसी बुरी वस्तु को न छूयें, और मन से उपरिलिखित विषयों का कभी भूलकर भी चिन्तन न करें। तात्पर्य यह है कि पांच ज्ञानेन्द्रिय, पांच कर्मेन्द्रिय तथा ग्यारहवां मन इन पर हमारा अधिपत्य होना चाहिए तभी हम कुसंग से बच सकते हैं।

एक बार भगवान् विष्णु ने राजा बलि से पूछा कि—'तुम सज्जनों के साथ नरक में जाना पसन्द करोगे या दुर्जनों के साथ स्वर्ग में ? राजा बलि ने उत्तर दिया कि मैं सज्जनों के साथ नरक में जाना उत्तम समझता हूँ, क्योंकि जहाँ सज्जन जायेंगे वहाँ नरक भी स्वर्ग बन जायेगा और दुर्जन स्वर्ग को भी नरक बना देते हैं।" क्योंकि—

अणुरप्यसतां सङ्गः सद्गुणं हन्ति विस्तृतम्।
गुणरूपान्तरं याति तक्रयोगाद् यथा पयः॥

दुर्जनों का थोड़ा सा कुसंग भी विस्तृत गुणराशि को नष्ट कर देता है, जैसे कि थोड़े से तक्र=छाछ के संग से सैंकड़ों गुणा अधिक दूध गुण और रूप में सर्वथा भिन्न हो जाता है॥ एक रत्ती विष से सम्पूर्ण भोजन सामग्री विषाक्त हो जाती है। और जहाँ पर दुर्जन ही दुर्जन हों वहाँ पर तो स्वर्ग की कामना करना खपुष्प तथा वन्ध्यापुत्र के तुल्य ही है। किसी कवि ने कितना स्पष्ट कहा है—

आनन्दमृगदावाग्निः शीलशाखिमद्द्विजः।
ज्ञानदीपमहावायुरयं खलसमागमः॥

दुष्टों की संगति आनन्दरूपी मृग को भगाने के लिये भयङ्कर दावाग्नि=जंगल की आग का कार्य करती है, शील=सदाचार रूपी वृक्ष को उखाड़ने के लिये मदोन्मत्त हाथी का कार्य करती है और विवेक ज्ञान रूपी दीपक को बुझाने के लिये प्रचण्ड आंधी का कार्य करती है। योगारसायन में कहा है—

असत्संगाद्गुणज्ञोऽपि विषयासक्तमानसः।
अकस्मात्प्रलयं याति गीतरक्तो यथा मृगः॥

कुसंग से जब मन विषयों के विष से मुक्त हो जाता है तब गुणवान् और विद्वान् व्यक्ति भी सहसा ही मृत्यु का ग्रास बन जाते हैं जैसे कि वीणा के सुरीले राग के वशीभूत हुआ मृग=हरिण मारा जाता है।

गोस्वामी तुलसीदास ने ठीक ही कहा है—

वरु भल वास नरक कर ताता। न दुष्ट संग जनि देई विधाता॥

घोर नरक में रहना अच्छा है, किन्तु परमात्मा किसी को दुष्टों की संगति न दे। क्योंकि मनुष्य भयङ्कर से भयङ्कर विपत्ति से भी पार हो सकता है किन्तु दुष्टों के पञ्जे से छुटकारा पाना असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य है।

संसार में ऐसा कौन सा नीच कर्म है जिसको कुसंग से मनुष्य

न सीखले। दुर्जन स्वयं तो नष्ट-भ्रष्ट होता ही है किन्तु साथ-साथ अन्य अनेकों होनहार बच्चों को भी ले डूबता है।

तुलसीदास जी के शब्दों में "को न कुसंगति पाय नसाई" ऐसा कौन है जो कुसंग में पड़कर उभयतो भ्रष्ट न हो गया हो? इस कुसंग पिशाच के चक्र में आकर सहस्रों होनहार शीलसम्पन्न बालक-बालिकायें, नवयुवक और नवयुवतियाँ अपने जीवन से हाथ धो बैठीं। भयङ्कर जंगली पशुओं और सांपों के साथ रहना अच्छा है किन्तु कुसंग में पड़ना नहीं।

पं० विष्णु शर्मा पञ्चतन्त्र में लिखते हैं—

"वरं प्राणत्यागो न पुनरधमानामुपगमः"

प्राण त्याग देना अच्छा है किन्तु नीच की संगति अच्छी नहीं। क्योंकि प्राण त्यागने पर दूसरा उत्तम शरीर कर्मानुसार मिल जायेगा, किन्तु कुसंग में तो लोक परलोक दोनों ही नष्ट हो जाते हैं, यह लोक तो प्रत्यक्षरूप से है ही नष्ट-भ्रष्ट, और पाप कर्म करने से अगला जन्म भी उत्तम नही मिलता।

"जैसा संग वैसा रंग" के अनुसार सत्सङ्ग करने से मनुष्य श्रेष्ठ बन जाता है और कुसङ्ग में पड़कर अधम बन जाता है। संग का रंग अवश्य चढ़ता है, एक स्वच्छ भवन धूएँ से काला बन जाता है, काला कोयला भी अग्नि के संयोग से धधकने लगता है, लता या घास में रहनेवाला कीड़ा और जन्तु भी तत्सदृश हरे रंग का हो जाता है। कहा भी है—

असतां संगदोषेण साधवो यन्ति विक्रियाम्।
दुर्योधनप्रसंगेन भीष्मो गोहरणे गतः॥

दुर्जनों की संगति में रहने से सज्जन भी दुर्जन बन जाते हैं, उनकी भी वृत्तियां विकृत हो जाती हैं, महाभारत काल में दुष्ट दुर्योधन के संग में रहने के कारण भीष्म पितामह भी राजा विराट् की गौयें चुराने के लिये चले गये थे।

इस लिये विचार शील सत्पुरुषों ने कहा है—

"भुजगवद्वर्ज्यो बुधैर्दुर्जनः" बुद्धिमानों को चाहिये कि दुर्जन से सर्वदा सर्प की भान्ति पृथक् रहें। इनकी संगति करना तो दूर रहा, ऐसे दुष्ट पापियों के पड़ोस में रहना भी हानिप्रद है। इतना ही नहीं, राजर्षि चाणक्य ने तो दुर्जन को सप से भी भयंकर बतलाया है--

सर्पश्च दुर्जनश्चैव वरं सर्पो न दुर्जनः।
सर्पो दशति काले दुर्जनस्तु पदे पदे॥

(चाणक्य नीति)

सर्प और दुर्जन में से सर्प ही अच्छा है, क्योंकि सर्प तो जब काल आकर उपस्थित हो जाता है तब काटता है किन्तु दुर्जन तो पद पद पर प्रहार करता है। सर्प, बिच्छु आदि किसी अवयव विशेष से प्रहार करते हैं किन्तु दुर्जन का तो एक-एक अंग विष से भरा हुआ होता है—

तक्षकस्य विषं दन्ते मक्षिकायाश्च मस्तके।
वृश्चिकस्य विषं पुच्छे सर्वांगे दुर्जनस्य तत्॥

सर्प के दांत में, मक्खी के शिर में और बिच्छू के पूँछ में विष होता है किन्तु दुर्जन के सभी अंग विषाक्त हैं।

दुष्टों की मैत्री, वेश्या और लक्ष्मी ये तीन कितना ही यत्न किया जाये किन्तु स्थिर नहीं रहतीं। इसलिये विष्णुमित्र ने पञ्च तन्त्र में कहा है—

आरम्भगुर्वी क्षयिणी क्रमेण,
लघ्वी पुरा वृद्धिमती च पश्चात्।
दिनस्य पूर्वार्द्धपरार्द्धभिन्ना,
छायेव मैत्री खलसज्जनानाम्॥

अर्थात् दुर्जनों की मित्रता आरम्भ में बहुत बड़ी होती है

अर्थात् अति सुन्दर प्रतीत होती है किन्तु उत्तरोत्तर घटती ही जाती है, जैसे कि प्रातःकाल छाया बहुत बड़ी होती है किन्तु दोपहर तक कम होकर न्यूनतम रह जाती है और सज्जनों की मित्रता प्रारम्भ में नाम मात्र ही होती है किन्तु दिन प्रतिदिन बढ़ती ही जाती है। जिस प्रकार दोपहर के पश्चात् छाया उत्तरोत्तर बढ़ती जाती है।

इसलिये दुर्जनों की संगति को प्रारम्भ में फूला-फला देखकर उसमें फंसना नहीं चाहिये, अपितु उसके भावी दुष्परिणामों को विचार कर सर्वथा पृथक् ही रहना चाहिये, इसी में कल्याण है।

किसी कवि ने कुसंग के फलों का कितना उत्तम चित्र खींचा है—

पापं वर्धयते, चिनोति कुमतिं, कीर्त्यङ्गना नश्यति;
धर्मं ध्वसयति, तनोति विपदं, सम्पतिमुन्मर्दति।
नीतिं हन्ति, विनीतिमत्र कुरुते कोपं धुनीते समं,
किं वा दुर्जनसंगतिर्न कुरुते, लोक- द्वयध्वंसिनी ॥

कुसंग पाप को बढ़ाता है, बुद्धि को मलिन कर देता है, कीर्ति को नष्ट करता है, धर्म का ध्वंस कर आपत्तियों के पहाड़ खड़े कर देता है और धन सम्पत्ति न्याय आदि का लोप हो जाता है। स्वभाव, चिड़चिड़ा और क्रोधी वन जाता है, ऐसा कौनसा दुष्कर्म है जिसको कि इस लोक तथा परलोक का नाश करनेवाली कुसंगति न करवाती हो।

न व्याघ्रः क्षुधयातुरोऽपि कुपितो, नाशीविषः पन्नगो-
नारातिर्बलसत्त्वबुद्धिकलितो, मत्तः करीन्द्रो न च।
तं शक्नोति न कर्तुमत्र नृपतिः कण्ठीरवो नोद्धुरो-
दोषं दुर्जनसंगतिर्वितनुते यं देहिनां निन्दिता ॥

भूखा तथा क्रुद्ध हुआ शेर जिस कार्य को नहीं कर सकता। भयङ्कर विषधर सर्प जो हानि नहीं कर सकता और बुद्धि सेना आदि से वल सम्पन्न शत्रु तथा मदमस्त हाथी भी जो हानि नहीं पहुँचा सकता, वह भयङ्कर सर्वनाश मनुष्य का कुसङ्ग में पड़ने से हो जाता है।

कुसंग में पड़ने से धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष पुरुषार्थ चतुष्टय और लोक परलोक सब मिट्टी में मिल जाते हैं, मनुष्य जन्म पाकर भी पशु-पक्षियों से भी नीच गति हो जाती है। इसलिये कहा है—

न स्थातव्यं न गन्तव्यं क्षणमप्यधमैः सह।
पयोऽपि शौण्डिकीहस्ते मदिरां मन्यते जनः॥

अधम पुरुषों के पास एक क्षण भी उठना वैठना नहीं चाहिये, यदि कोई सज्जन पुरुष भी अकस्मात् किसी निन्दनीय स्थान पर चला जाता है तो लोग उसे भी वैसा ही समझने लगते हैं, जैसे कि कलाल (शराव वना कर बेचने वाले) के हाथ में शुद्ध पवित्र गोदुग्ध हो तव भी जनता उसे मदिरा शराब भी समझती है।

कुसंग के दो भेद हैं—प्रथम शारीरिक, द्वितीय मानसिक। शारीरिक कुसंग से पृथक् रहना सहज है, क्योंकि इसके लिये कुछ वाधायें प्रत्यक्ष रूप से हैं, अपने कुल की, माता-पिता की मान मर्यादा के भय से, या माता पिता अथवा गुरुजनों के डर से अथवा लोक लज्जा के ही कारण से ही मनुष्य प्रत्यक्ष रूप से कुछ अंशों में कुसंग से वच जाता है, चोरी से भी अवसर मिलने पर ही कर सकता है। किन्तु मानसिक कुसंग से बचना कठिन है। मनुष्य प्रतिक्षण उठता-बैठता खाता-पीता यहां तक कि शयन काल में भी स्वप्न के द्वारा अपने विचारों को दूषित

करता रहता है। गन्दी पुस्तकें पढ़ना भी मानसिक कुसंग है।

कुछ भोले भाई यह विचारते हैं कि हम शरीर से तो कुछ करते ही नहीं, गन्दी पुस्तकें पढने से अथवा अश्लील भावनाओं से हमारा क्या बिगड़ता है। किन्तु ऐसा सोचने वाले भयङ्कर भूल करते हैं। मन से या कर्म से हम जैसा शुभाशुभ विचार या क्रिया करते हैं उस की वैसी ही अमिट छाप चित्त-पट पर पड़ जाती है और पीछे वासना का रूप धारण कर सताती है। भगवान् कृष्ण ने गीता के द्वितीय अध्ययन में कहा है—

ध्यायतो विषयान् पुंसः संगस्तेपूपजायते ।
संगात् संजायते कामः कामात् क्रोधोऽपि जायते ॥
क्रोधाद्भवति सम्मोहः सम्मोहात्स्मृतिविभ्रमः ।
स्मृतिभ्रंशाद् बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति ॥

कुसंग से प्रथम मन में बुरे विचार उत्पन्न होते हैं और फिर मनुष्य का उन से संग हो जाता है अर्थात् वैसे स्थान या व्यक्ति के निकट पहुंच जाता है। संग से काम उत्पन्न होता है, किसी ने कहा भी है—"कामिनां कामिनीनाञ्च संगात् कामी भवेत्पुमान्" कामुक स्त्री-पुरुषों के संग से मनुष्य स्वयं भी कामी बन जाता है। जब उस कामना की पूर्ति नहीं होती तब क्रोध आ दबाता है और किंकर्तव्यविमूढ बना देता है, स्मरण शक्ति काम नही देती, स्मरण शक्ति के विकृत होने से बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है, जिससे सर्वनाश हो जाता है, क्योंकि सारा संसार बुद्धि का ही खेल है। "बुद्धिर्यस्य बलं तस्य" बलवान् वही है जिस की बुद्धि सुस्थित है, बुद्धि गई तो सब कुछ गया। इस लिये कुसंग से मनसा वाचा कर्मणा पृथक् रहना चाहिये।

शिक्षा और कुसङ्ग

बिना पढ़े-लिखों की अपेक्षा शिक्षित समुदाय कुसंग के चक्र

में अधिक फँसा हुआ है, इसका कारण हमारी प्रचलित शिक्षा प्रणाली है। अशिक्षित व्यक्ति अज्ञान से या कुसङ्ग से बुराइयों में फँस जाते हैं किन्तु इस शिक्षा प्रणाली में बुराइयाँ सिखलाई जाती हैं, इसीलिए हमारे शिक्षित वर्ग के आचार का स्तर नीचा होता जा रहा है।

प्राचीनकाल में आर्षपाठविधि के अनुसार बालक गुरुकुलों में माता-पिता और सांसारिक वातावरण से पृथक् जाकर ब्रह्मचर्य-पूर्वक विद्योपार्जन करते थे। सात-आठ वर्ष के बालक-बालिका को गुरुजनों के निकटतम सम्पर्क में छोड़ दिया जाता था। गुरु आचार्य का यह प्रधान कर्म था कि वह दिनरात २४ घण्टे उनके आचार-विचार का ध्यान रखता था और विद्या भी ऐसी ही पढ़ाई जाती थी जिससे लोक परलोक दोनों सुधर जाते थे, पतित होने का ब्रह्मचारी विद्यार्थी को अवसर ही नहीं मिलता था, इसीलिए यहाँ पर कपिल कणाद, जैमिनि, पतञ्जलि, और राम-कृष्ण तथा दयानन्द उत्पन्न हुए थे।

वर्तमान अनार्ष शिक्षा प्रणाली इससे सर्वथा विपरीत है, इस से मानव के स्थान पर दानव बनाये जा रहे हैं। वास्तव में इस शिक्षा प्रणाली की नींव ही लार्ड मैकाले की दूषित भावनाओं पर रखी हुई है, जिस भवन की नींव ही दूषित हो उससे आगे कल्याण की क्या आशा की जा सकती है।

चौबीस घण्टे में से केवल चार पाँच-घण्टे पाठ्य पुस्तकों के पाठ रटवाकर अध्यापक अपना कर्त्तव्य पूरा समझ लेते हैं, माता पिता को तो कोई चिन्ता करने की आवश्यकता प्रतीत नहीं होती, क्योंकि वे अपने पुत्र को स्कूल में पढ़ने के लिये भेजकर सर्वथा चिन्तामुक्त हो जाते हैं। विद्यार्थी के जीवन का ध्यान किसी को भी नहीं (सम्भवतः यह हमारे लिये छोड़ रखा हो)।

इस पाठविधि में विद्यार्थी के चरित्र निर्माण के लिये

कोई स्थान नहीं है, आचार विचार को भ्रष्ट करने के साधनों की भरमार है। कामुकता को उत्पन्न करने वाले अश्लील अनार्ष दूषित ग्रन्थ पाठ्यक्रम में रखे हुये हैं, जिनको पढ़कर ब्रह्मचारी रहना कठिन है। प्रथम तो १५ और २० वर्ष के बीच की अवस्था ही ऐसी है जिसमें न प्रकाश होता है और न ही अन्धेरा। यदि इस अवस्था में विद्यार्थी को सन्मार्ग न दिखलाया जाये तो पतित होने की आशङ्का बनी रहती है। पतित होने का दूसरा साधन है दुश्चरित्र अध्यापक और विद्यार्थियों का कुसंग तथा विचारों को गन्दा करने के लिए अश्लील अनार्ष ग्रन्थों का अध्ययन। यदि कुछ न्यूनता रह भी जाये तो उसको सहशिक्षा (नवयुवक और नवयुवतियों का एक साथ मिलकर पढ़ना) तथा सिनेमा, नाच, गान आदि पूर्ण कर देते हैं जिससे विद्यार्थी का सदाचारी रहना असम्भव है। इसीके परिणाम स्वरूप मैट्रिक करने तक ही लगभग सभी विद्यार्थियों का आचार भ्रष्ट हो जाता है, आगे चलकर कालेजों में तो एक प्रतिशत विद्यार्थी ऐसा नहीं मिल सकता जिसका ब्रह्मचर्य नष्ट न हो गया हो।

जब विद्यार्थी बी० ए० की उपाधि लेकर लुट-पिटकर आता है प्रब उसकी ठीक वही अवस्था बन जाती है जो रस निकाले हुये गन्ने की या निचोड़े हुये निम्बू की होती है। इस सम्पूर्ण दुष्परिणाम का कारण शारीरिक और मानसिक कुसंग है।

प्राचीन काल में आचार्य शिष्य को बनाया था, "तं रात्रीस्तिस्त्र उदरे बिभर्ति (अथर्व ११।५।३) वेद के आदेशानुसार शिष्य की रक्षा उसी भान्ति करता था जिस प्रकार माता गर्भावस्था में बच्चे की करती है। राम को किसने बनाया? गुरुवर वसिष्ठ ने। कृष्ण को किसने बनाया? ऋषि घोर आंगिरस ने। अर्जुन को किसने बनाया? आचार्य द्रोण ने। दयानन्द को किसने बनाया? गुरुवर विरजानन्द ने। किन्तु आज की शिक्षा प्रणाली में यह

भार गुरुओं ने अपने कन्धों से उठाकर दर्जियों पर छोड़ दि
है। इसीलिये जो जैसा चाहता है वैसा ही दो-तीन घण्टे में द
के घर जाकर बन आता है।

वेद ने ऐसे लोगों को 'ततनुष्टि' 'तनूशुभ्र' और 'कवासख'
कहा है—

"अपापशक्रस्ततनुष्टिमूहति तनूशुभ्रं मघवा यः कवासखः"
(ऋ० ५।३४।३)

जो ईश्वर भक्ति करता है, उत्तम मार्ग पर चलता है, उस
ईश्वर बढ़ाता है, शक्ति प्रदान करता है, किन्तु जो ततनुष्टि
दिन-रात विषयों में ही फँसता जाता है, तनूशुभ्र=शरीर की
सजावट बनावट में लगा रहता है और 'कवासख' अर्थात्
कुत्सित सङ्गति में रहता है जिसके मित्र तथा साथी कुत्
आचरणी हैं उसको सर्वशक्तिमान् ऐश्वर्यशाली परमात्मा (
अप ऊहति) नीचे ही नीचे गिराता रहता है, मिटा देता है, विन
कर देता है।

वर्तमान शिक्षा प्रणाली के भयङ्कर दुष्परिणामों को देख
इससे कोई भी भारतीय सन्तुष्ट नहीं है, राष्ट्रपति से लेकर
से कर्मचारी तक सभी इसकी कटु-आलोचना करते हैं। ह
सभी नेता समय समय पर कहते रहते हैं कि वर्तमान शि
प्रणाली में परिवर्तन होना चाहिये, किन्तु पता नहीं वे शुभ
कब आयेंगे जब दुराचार की जननी इस शिक्षा प्रणाली
अन्त होगा और यह अतीत शिक्षा-प्रणाली के रूप में परि
होगी। परमात्मा कृपा करे कि जिससे शीघ्र ही ये दुराचार
अड्डे तथा आचरण हीन क्लर्क बनाने के कारखाने बन्द
और फिर से वही रामायण-महाभारत कालीन आर्ष शिक्षा-प्रण
प्रचलित हो, जिससे हम भी वाल्मीकि तथा व्यास के स्वर
स्वर मिलाकर कह सकें—

"सर्वे वेदविदः शूरा सर्वे शस्त्रविशारदाः"

तथा हमारे राष्ट्रपति भी राजा अश्वपति की भान्ति निःसङ्कोच होकर कर कह सकें—

न मे स्तेनो जनपदे न कदर्यो न मद्यपः ।
नानाहिताग्निर्नायज्वा न स्वैरी स्वैरिणी कुतः ॥
(छान्दोग्योपनिषत्)

सत्सङ्ग के लाभ

तात स्वर्ग अपवर्ग सुख, धरिये तुला इक अंग ।
तुले न ताहि सकल मिलि, जो सुख लाभ सत्सङ्ग ॥

सत्संग के लाभ अपार हैं, मनुष्य माया-मोह से छूट जाता है और उसके अन्दर विवेक ज्ञान का उदय हो जाता है जिससे सत्यासत्य का निर्णय कर सकता है। सन्मार्ग पर चलने की शक्ति मिलती है, यदि आलस्य वश कुछ ढीलापन आ जाता है तो वह सत्संग से दूर हो जाता है। गिरा हुआ व्यक्ति भी सत्सङ्ग पाकर ऊंचा उठ जाता है, बड़े-बड़े डाकू भी सज्जनों की शरण में आकर सुधर जाते हैं। गोस्वामी तुलसीदास जी ने ठीक ही कहा है—"सठ सुधरहिं सत्सङ्गति पाई ।
पारस परसि कुधातु सुहाई ॥"

सत्सङ्ग के लाभों का वर्णन एक संस्कृत के कवि ने कितना सुन्दर किया है—

जाड्यं धियो हरति सिञ्चति वाचि सत्यम् ,
मानोन्नतिं दिशति पापमपाकरोति ।
चेतः प्रसादयति दिक्षु तनोति कीर्तिं
सत्संगतिः कथय किं न करोति पुंसाम् ॥

सत्संग से बुद्धि की मलिनता, मूढ़ता दूर हो जाती है, वाणी में सत्य का सिञ्चन हो जाता है अर्थात् मनुष्य झूठ को छोड़कर सत्य को ग्रहण करने लग जाता है जिससे सब पाप कर्म छूट जाते हैं, चित्त प्रसन्न रहता और संसार में उसकी कीर्ति फैल जाती है। इसलिये सत्संग से सभी शुभ गुण मनुष्य में आ जाते हैं।

सत्संग को पाकर सहस्रों भूले भटकों ने पुनः सन्मार्ग को ग्रहण किया है। ऐसे महापुरुषों के आपको अनेक उदाहरण मिलेंगे जिन्होंने केवल थोड़े से सत्संग से ही काया पलट दी है।

महर्षि दयानन्द जी ने पेशावर में सिपाही लेखराम को २५ वर्ष तक ब्रह्मचर्य पालन का उपदेश दिया था, महर्षि के ब्रह्मचर्य का उस पर ऐसा प्रभाव पड़ा कि उसने पच्चीस के स्थान में ३६ वर्ष तक ब्रह्मचर्य का पालन किया और आगे चलकर वही लेखराम धर्मवीरों की पंक्ति में अपना नाम अङ्कित करवा गया।

नास्तिक मुन्शीराम वकील बम्बई में महर्षि दयानन्द जी के सत्संग में सम्मिलित हुआ था, वह उस समय सभी धर्मों से पराङ्मुख हो चुका था किन्तु महर्षि के उपदेशों का इतना गहरा प्रभाव हुआ कि वह नास्तिक मुन्शीराम के स्थान में ईश्वर का श्रद्धालु भक्त वीर सेनानी श्रद्धानन्द बन गया।

संवत् १९४० में जब महर्षि दयानन्द जी मृत्यु शय्या पर विराजमान थे तब उनके पास पं० गुरुदत्त विद्यार्थी एम०ए० गया। वह भी पहले ईश्वर पर विश्वास नहीं रखता था किन्तु महर्षि की अन्तिम लीला को देखकर सदा के लिये सच्चा भक्त बन गया।

एक बार महर्षि दयानन्द जी को अमीचंद ने एक गाना सुनाया। उसके गाने को सुनकर ऋषि अत्यन्त प्रसन्न हुये और कहा—"अमीचंद तू है तो रत्न, किन्तु कीचड़ में पड़ा है।"

इतना कहना था कि शराबी कबाबी और वेश्यागामी अमीचंद सब पापों को छोड़कर सच्चा आर्य बन गया और अपना सम्पूर्ण जीवन आर्य समाज के प्रचार कार्य में लगा दिया।

मथुरा की घटना है, एक बार महर्षि दयानन्द जी को पतित करने के विचार से विरोधियों ने एक वेश्या को वस्त्राभूषणों से सुसज्जित कर भेजा। स्वामी जी समाधि लगाये बैठे थे, उनको देखकर वह वेश्या डर गई और वापिस लौट आई, किन्तु धूर्तों ने कुछ लोभ बढ़ाकर उसको पुनः भेजा। स्वामी जी का उस पर ऐसा प्रभाव पड़ा कि उसने सब आभूषण उतार कर रख दिये और रोने लग गई। ऋषि की समाधि खुली और आश्चर्यान्वित हुए।

अब वेश्या वेश्या नहीं रही थी, ऋषि के पांवों पर गिरी और अपना अपराध सुनाकर क्षमा याचना की तथा आगे से पवित्र जीवन व्यतीत करने का व्रत लिया। इसी प्रकार ऋषि के जीवन की और भी अनेक घटनायें हैं वे यहाँ पर विस्तार भय से नहीं लिखी जा सकतीं, उनके जीवन को पढ़कर ही सब का ज्ञान किया जा सकता है।

इसी प्रकार भगवान् बुद्ध के जीवन की भी ऐसी ही अनेक घटनायें हैं। एक बार उपदेश करते-करते वे लच्छी राज्य में जा पहुंचे, वहाँ पर 'अम्बापालिका' नाम की एक प्रसिद्ध वेश्या थी, वह भी भगवान बुद्ध के उपदेश में बन ठन कर जा पहुँची, और हाव भावों से भगवान् बुद्ध को अपने वश में करना चाहा। वे भी समझ गये कि आज की सभा में सबसे बड़ा रोगी यही है, इसी की पहले चिकित्सा करनी चाहिये।

भगवान् बुद्ध ने अपना उपदेश प्रारम्भ किया कि "यह शरीर कितना अपवित्र है, इसकी आंख से ढीड निकलती है, नाक से

सिणक निकलता है, गुँह से लार टपकती है, इसी प्रकार पायु और उपस्थेन्द्रिय से शौच (टट्टी) और पेशाब आता है, यहाँ तक कि रोम रोम से स्वेद निकलता है किन्तु भोला मानव इतने पर भी इतराता है और अपने रूप यौवन पर फूला नहीं समाता। एक दिन आयेगा यह सब कुछ मिट्टी में मिल जायेगा······ ···इत्यादि" उपदेश हो रहा था, उस वेश्या पर भगवान् बुद्ध के हार्दिक उपदेश का ऐसा प्रभाव पड़ा कि उस वेश्या का हृदय पिंघल गया और वह फूट-फूट कर रोने लगी, आंखों की स्याही से सम्पूर्ण मुख मंडल तथा वस्त्र मैले हो गये।

उपदेश के अन्त में वह वेश्या बुद्ध के पास गई और पाँवों पर गिरकर क्षमा मांगने लगी। भगवान् बुद्ध समझ गये, इसके रोग की ठीक चिकित्सा हो गई है अतः उसको 'पुत्री' शब्द से सम्बोधन कर आश्वासन दिया। और उसने भी आगे से उत्तम रीति से जीवन व्यतीत करने का व्रत लिया।

इतना ही नहीं, उसने बुद्ध को भोजन के लिये निमन्त्रण दिया और वहाँ जाकर बुद्ध ने पुनः उपदेश दिया। उपदेश में उस पूर्वोक्त वेश्या की जो सखी सहेलियाँ थीं उन्होंने भी इस पाप कर्म को छोड़ने का व्रत ग्रहण किया। तत्पश्चात् उन सहस्रों वेश्याओं ने बौद्ध धर्म की दीक्षा ली और बौद्ध भिक्षुणी बनकर भगवान् बुद्ध के उपदेशों का प्रचार किया।

इसी प्रकार एक काकुदन्त नाम का बड़ा भारी विद्वान् था, उसको अपनी विद्या का बहुत अभिमान था, वह शास्त्रार्थ में पराजित कर बुद्ध को भी अपना शिष्य बनाना चाहता था, अपने सहस्रों शिष्यों सहित हाथी पर चढ़कर एक दिन वह काकुदन्त बुद्ध के पास शास्त्रार्थ करने के लिये गया। महात्मा बुद्ध के जीवन का उस पर ऐसा प्रभाव पड़ा कि बिना ही शास्त्रार्थ किये काकुदन्त बुद्ध का शिष्य बन गया।

इसलिये कहा है कि—

सम्भाषा दर्शनं स्पर्शः कीर्त्तनं स्मरणं तथा।

पावनानि किलैतानि साधूनामिति शुश्रुमः॥

साधु-महात्माओं के साथ भाषण करना, उनके दर्शन, स्पर्श, प्रशंसा और स्मरण करना भी कल्याणकारी हैं।

सङ्ग किसका करना चाहिये ?

संसार में देखा जाता है कि जो जैसा होता है वह वैसों ही से मित्रता करता है, उन्हीं के साथ उठता-बैठता और खाता-पीता है। महाराज भर्तृहरि जी लिखते हैं—

मृगाः मृगैः सङ्गमनुव्रजन्ति,
गावश्च गोभिस्तुरगास्तुरङ्गैः।
मूर्खाश्च मूर्खैः सुधियः सुधीभिः,
समानशीलव्यसनेषु सख्यम्॥

मृग मृगों के साथ चलते हैं, गायें गायों के साथ और घोड़े घोड़ों के साथ रहते हैं, मूर्ख मूर्खों के साथ और पण्डित पण्डितों के साथ रहना पसन्द करते हैं, क्योंकि मित्रता उन्हीं की होती है जिनका आचार-विचार तथा व्यवहार मिलता है।

इसलिये बुद्धिमानों ने मनुष्य को परखने के लिये यह कसौटी बना ली है कि यदि तुम जानना चाहते हो कि देवदत्त कैसा है, तो उसके साथियों को, उससे सम्बन्ध रखने वाले यार-दोस्तों को देख लो कि वे कैसे हैं, जैसे उसके साथी भले या बुरे हैं, वैसा ही देवदत्त भी है।

यह तो हुआ स्वाभाविक प्रवृति के विषय में, किन्तु प्रयत्न से इससे विपरीत किया जाता है। एक भला मनुष्य भी दुर्जनों में

बैठ कर दुर्जन बन सकता है, इसी प्रकार दुर्जन भी सज्जनों की शरण में आकर सज्जन बन सकता है क्योंकि—

हीयते मतिस्तात हीनैः सह समागमात् ।
समैश्च समतामेति विशिष्टैश्च विशिष्टताम् ॥

अपने से हीन व्यक्ति के संग में रहने से कोई लाभ नहीं अपितु स्वयं भी हीन = नीच बन जाता है, अपने समान व्यक्ति के साथ रहने में भी कोई विशेष लाभ नहीं होता, अपने से श्रेष्ठ पुरुषों का सत्सङ्ग करने से लाभ होता है, स्वयं भी वैसा ही बन सकता है। इसलिये अपने से अधिक गुणवान् श्रेष्ठ पुरुषों तथा साधु-महात्माओं के संग में रहना चाहिये।

सबसे उत्तम सर्वशक्तिमान् परमात्मा है, उसका सत्सङ्ग = स्तुति प्रार्थना, उपासना नित्य प्रति अवश्यमेव करनी चाहिये। ईश्वर की भक्ति का फल महर्षि दयानन्द जी लिखते हैं—
"जैसे शीत से आतुर पुरुष का अग्नि के पास जाने से शीत निवृत्त हो जाता है वैसे परमेश्वर के समीप प्राप्त होने से सब दोष दुःख छूट कर परमेश्वर के गुण, कर्म, स्वभाव के सदृश जीवात्मा के गुण कर्म, स्वभाव पवित्र हो जाते हैं। इसलिये परमेश्वर की स्तुति, प्रार्थना और उपासना करनी चाहिये।"

महात्मा गांधी जी लिखते हैं—

"जब आपकी विषय-वासनायें आपको धर दबोचने की धमकी दें तब आप अपने घुटनों के बल बैठ जायें और परमात्मा से सहायता के लिये पुकार लगायें। ईश्वर का नाम हमारा अमोघ सहायक है।"

जब तक मनुष्य ईश्वर को सर्वव्यापक और सर्वशक्तिमान् जान कर उसकी भक्ति नहीं करता, ईश्वर पर विश्वास नहीं

करता, तब तक पाप करने से नहीं रुक सकता। पाप कर्म सर्वदा छिप कर ही किया जाता है और मनुष्य सब को धोखा देकर एकान्त में पाप कर बैठता है। किन्तु उस सर्वशक्तिमान् सर्व-व्यापक प्रभु से कभी कहीं नहीं छिप सकता। क्योंकि वह तो पहले ही सर्वत्र विद्यमान है। कुकर्म करते हुये जब भय, लज्जा आदि होता है तब मनुष्य इधर-उधर चहुं ओर दृष्टि दौड़ाता है, कि कहीं कोई देख तो नहीं रहा। जब कोई दृष्टिगोचर नहीं होता तो नि-शङ्क होकर पाप में प्रवृत्त हो जाता है। किन्तु उस मूढ को यह ज्ञान नहीं—"द्वौ संनिषद्य यन्मन्त्रयेते राजा तद्वेद वरुण-स्तृतीयः" (अथर्ववेद ४।१६।२) जो दो व्यक्ति मिलकर कोई गूढ मन्त्रणा करते हैं उसको तीसरा सकल ब्रह्माण्ड का स्वामी वरुण प्रभु जानता है। इसलिये कभी भी ऐसी भूल नहीं करनी चाहिये। जो दूसरों को धोखा देता है, ठगता है, वह वरुण देव के द्वारा स्वयं ठगा जाता है, वरुण अपने पाशों से उसे तत्क्षण जकड़ कर बन्दी बना लेता है और मूढ पापी को पता तक भी नहीं चलता।

ईश्वर के पश्चात् तत्कृत वेदों का तथा वेदानुकूल शास्त्र-स्मृत्यादि का स्वाध्याय द्वारा सत्सङ्ग करना चाहिये। तथा जो ऋषि, मुनि, साधु, महात्मा और आप्त पुरुष हैं उनकी सङ्गति का लाभ उठाना चाहिये।

हमने अनेक स्थानों पर साधु-सन्तों से सत्सङ्ग करने के लिये, निर्देश किया है। साधु-सन्तों से हमारा अभिप्राय वीतराग, निष्काम, स्वार्थ, छल, कपटादि से रहित महापुरुषों से है जो सर्वदा लोक कल्याण में लगे रहते हैं। आज कल ऐसे भोजन-भट्ट भी बहुत हैं जो केवल अपना उल्लू सीधा करने के लिये ही वस्त्रादि सन्यासियों के चिह्नों को धारण कर पवित्र संन्यास आश्रम को ही कलङ्कित कर रहे हैं। केवल लिङ्ग=चिन्ह विशेष धर्म का

कारण नहीं होता। मनुजी ने स्पष्ट लिखा है—"न लिङ्गं धर्म-कारणम्"

धूर्त पाखण्डियों के चक्र में नहीं आना चाहिए, ये छद्मवेषी वे ही अधम पुरुष हैं जिनके विषय में चाणक्य ने कहा है—

"वरं प्राणत्यागो न पुनरधमानामनुगमः।"

प्राण त्याग करना उत्तम है किन्तु ऐसे धूर्त्त पाखण्डी पुरुषाधमों की सङ्गति में रहना नहीं।

जो वास्तव में सच्चे साधु हैं उनका आदर, सत्कार तथा सत्सङ्ग अवश्यमेव करना चाहिये--

साधुसङ्गतयो लोके सन्मार्गस्य च दीपकाः।
हार्दान्धकारहारिण्यो भासो ज्ञानविवस्वतः॥

साधु-सन्तों का सत्सङ्ग इस संसार में सन्मार्ग को दिखलाने के लिए प्रकाश-स्तम्भ का काम करता है क्योंकि साधु-महात्माओं का सत्सङ्ग हृदयरूपी गुहा से अज्ञानान्धकर को नष्ट करने के लिये ज्ञान-सूर्य है।

महर्षि दयानन्द जी महाराज लिखते हैं--

"परमेश्वर सब मनुष्यों को आज्ञा देता है कि यज्ञ का अनुष्ठान, संग्राम[1] में शत्रुओं की पराजय, अच्छे अच्छे गुणों का ज्ञान, विद्वानों की सेवा, दुष्ट मनुष्य वा दुष्ट दोषों का त्याग……और ईश्वर की उपासना तथा विद्वानों का समागम करके और सब विद्याओं को प्राप्त होके सबके लिये सब सुखों की उत्पन्न करने वाली उन्नति सदा करनी चाहिये।" (यजुर्वेदभाष्य १-१६)

सत्सङ्ग के विषय में इस वाक्य को सर्वदा स्मरण रक्खें—

१—जीवन सङ्ग्राम में काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि शत्रुओं का पराजय करना चाहिये।

"क्षणमिह सज्जनसङ्गतिरेका
भवति भवार्णवतरणे नौका

सज्जनों का सङ्ग रूपी नौका क्षण भर में संसार सागर से पार तरने के लिये सहायक है।

कुसङ्ग के आधुनिक स्रोत—

सिनेमा, सरकस, स्वाङ्ग, रामलीला, नाच-गानादि।

आज के युग में दूषित विचारधारा का सब से अधिक प्रचार करने वाले सिनेमा (चलचित्र) ही हैं। हमारी आचार परम्परा, सभ्यता और संस्कृति पर कुठाराघात कर कामवासना का, विलासिता का तथा स्पष्ट रूप में दुराचार का दिग्दर्शन कर सम्पूर्ण वातावरण को विषय-विष से भर दिया है। इस दुष्ट पिशाच के चक्र में फंसकर लाखों-करोड़ों बालक-बालिका और नवयुवक तथा नवयुवतियाँ अपने चरित्र को भ्रष्ट कर चुके हैं और दिन-प्रतिदिन करते जा रहे हैं। इसी सिनेमा के परिणाम स्वरूप सहस्रों नर-नारियों ने अपनी अमूल्य निधि यौवन को विषयाग्नि का इन्धन बना दिया है, लाखों परिवार उजड़ गये, किन्तु दुःख है कि आज भी इस पतन के भयङ्कर साधन सिनेमा को कला के आवरण से ढका जा रहा है। वास्तव में देखा जाये तो कला का नाम देकर देश के साथ गद्दारी की जा रही है। अनेक शताब्दियों में भी विदेशी शासक हमारे चरित्र की जो हानि नहीं कर सके उसको इस कला ने कुछ ही वर्षों में कर डाला। यदि इस कला का इसी प्रकार से स्वागत होता रहेगा तो भावी नवयुवकों की आचारहीनता पराकाष्ठा पर पहुंच जायेगी और सभ्यता एवं संस्कृति को मुंह छिपाने को ठौर न मिलेगा।

भारत में सिनेमाघरों की संख्या ४००० के लगभग है, दो करोड़ (२०,००००००) व्यक्ति प्रतिदिन सिनेमा देखते हैं। अकेले देहली शहर में २७००० व्यक्ति प्रतिदिन सिनेमा देखते हैं। एक ओर वे व्यक्ति हैं जिन को पेट भर रोटी भी सुलभ नहीं और दूसरी ओर देश का ८५ करोड़ रुपया व्यभिचार के प्रचार में व्यय किया जा रहा है। हमारी इतनी बड़ी धनराशि हमारे ही विनाश में लगाई हुई है और हम बैठे-बैठे 'घर फूंक तमाशा' देखते रहते हैं।

ब्रह्मचर्य को नष्ट करने के लिये सिनेमा सब से बुरी कुसङ्गत है, अथवा यों समझें कि सिनेमा ब्रह्मचर्य का सब से प्रबल शत्रु है। देखने वाला सात जन्म में भी वीर्यरक्षा नहीं कर सकता, क्योंकि इस में कामुकता, शृङ्गार, असभ्य-परिहास, चुम्बन, आलिङ्गन, गर्जन, उत्तेजन, नग्न-नृत्य आदि की ही भरमार होती है। अधिकतर फ़िल्में नवयुवकों को यही पाठ पढ़ाती हैं कि किस भान्ति किसी भले घर की लड़की को भ्रष्ट किया जाये। पतन की इतनी पराकाष्ठा हो गई है कि फ़िल्म देखने वाले नवयुवक के पास अपनी सगी बहिन भी सुरक्षित नहीं समझी जाती।

जब किसी सिनेमा देखने वाले व्यक्ति से सिनेमा देखने के विषय में पूछा जाता है कि आप सिनेमा क्यों देखते हैं ? उत्तर में वह कहता है—सिनेमा इस युग की सर्वोत्तम कला है, जब कार्य करते-करते मन ऊब जाता है तो मन बहलाव के लिये सिनेमा अच्छा साधन है, बहुत सी फिल्में शिक्षाप्रद होती हैं जिन से उत्तमोत्तम शिक्षायें मिलती हैं, इसलिये सिनेमा देखने में हानि ही क्या है ? लोग व्यर्थ ही निन्दा करते रहते हैं, इत्यादि अनर्गल प्रलाप प्रारम्भ कर देता है।

उपरिलिखित सभी हेतु हमारे विचार से हेत्वाभास हैं। सर्व-

नाश के साधन को कला कहना या मानना ही सब से बड़ी भूल है। यदि दुर्जनतोष न्याय से इसे कला भी मान लें, तो क्या सिनेमाघर कला सिखलाने के विद्यालय हैं? वहाँ चित्र दिखलाये जाते हैं, चित्रों के सम्भाषण और हाव-भावों से किसी कल्पित या ऐतिहासिक घटना का वर्णन किया जाता है, न कला की दृष्टि से सिनेमा के कार्यकर्त्ता सिनेमा दिखलाते हैं और न ही दर्शक देखते हैं। भद्दे गाने सुनकर शृङ्गार-रस से परिपूर्ण हाव-भावों से मन में कामवासना अवश्य अङ्कुरित हो जाती है और वह ब्रह्मचारी के पतन का कारण बन जाती है।

मनोरञ्जन का साधन मानकर सिनेमा देखना भी अज्ञान है। इसको मानसिक पतन का साधन अवश्य कहा जा सकता है; मनोरञ्जन का नहीं। सिनेमा देखने से मन की थकावट दूर नहीं होती, अपितु मन और भी निर्बल हो जाता है। सिनेमा के शृङ्गार-रस से परिपूर्ण वातावरण में सदाचार की जड़ कभी नहीं जम सकती। स्वामी आत्मानन्द जी महाराज ने 'मनोविज्ञान तथा शिवसंकल्प' पुस्तक में लिखा है—"सादगी सदाचार की जननी है और शृङ्गार व्यभिचार का दूत है।"

मनोबल का साधन सदाचार है, सदाचार के अभाव में सिनेमा देखने से मनोरञ्जन नहीं होता, किन्तु मद्य के नशे की भान्ति ऐसा प्रतीत होता है, पीछे से मानसिक शक्ति का ह्रास और निर्बलता का पता लगता है।

इसके अतिरिक्त चलचित्रों के देखने से नेत्र-ज्योति मन्द हो जाती है, इसी के परिणाम-स्वरूप आज छोटे-छोटे बालक भी उपनेत्र (ऐनक) लगाये फिरते हैं। सिनेमा देखते समय सहस्रों व्यक्ति बन्द भवन के अन्दर घुसकर बैठ जाते हैं; जहाँ पर न सूर्य

का प्रकाश है और न ही शुद्ध वायु का सञ्चार, ऐसी अवस्थ
स्वास्थ्य भी चौपट हो जाता है।

लोग रात्रि के बारह बजे तक सिनेमाघरों में बैठे रहते हैं
प्रातःकाल आठ-नौ बजे तक पड़े-पड़े सोते रहते हैं, ऐसे
स्वास्थ्य-रक्षा तथा ब्रह्मचर्य-पालन तो क्या करेंगे, अपना जी
निर्वाह भी पराश्रित होकर करते हैं।

फिल्मों को शिक्षाप्रद भी नहीं कहा जा सकता, क्योंकि अ
से अच्छी फिल्म में भी साधारण जनता की वासना-तृप्ति
लिये कुछ न कुछ सामग्री अवश्य मिलेगी। यदि किसी फि
को शिक्षाप्रद भी मान लें, तब भी सिनेमा देखने का स्व
अवश्य हो जायेगा और वह पुनः सिनेमा देखने के लिये बा
करेगा। सर्वदा शिक्षाप्रद ही फिल्में दिखलाई नहीं जातीं, वि
होकर गन्दी से गन्दी फिल्म देखनी पड़ेंगी और उसका दुष्
णाम आचार-भ्रष्टता सामने है ही। मेरे पास ऐसे पत्र सर्वदा आ
रहते हैं जिनमें लुट-पिट कर भ्रष्ट हुये विद्यार्थी अपना रो
रोते हैं।

इसलिये तन, मन, धन और आत्मा सभी को चौपट क
वाले इस भयङ्कर कुसङ्ग से विद्यार्थी, ब्रह्मचारी तथा अपने अम
मानव जीवन से कुछ भी प्रीति रखने वाले व्यक्ति को सर्व
दूर रहना चाहिये।

इसी भान्ति सरकस, रासलीला, रामलीला, स्वाङ्ग, ड्रा
नाटक, नाच-गानादि भी ब्रह्मचर्य को दूषित करने वाले होने
सर्वथा त्याज्य हैं। महर्षि दयानन्द जी ने भी सत्यार्थप्रकाश
'रामलीला' को 'रांडलीला' लिखा है और साथ-साथ ना
गानादि का भी सर्वथा निषेध किया है क्योंकि ये ब्रह्मचर्यपा

औरविद्योपार्जन में बाधक हैं। कुसङ्ग ब्रह्मचर्यपालन तथा विद्या-प्राप्ति का सबसे बड़ा विघ्न है। महर्षि दयानन्द जी ब्रह्मचारी के लिये सत्यार्थप्रकाश में लिखते हैं—"जो विद्या पढ़ने-पढ़ाने के विघ्न है उनको छोड़ देवें, जैसा कुसङ्ग अर्थात् दुष्ट विषयी जनों का सङ्ग, दुष्ट व्यसन जैसा [1]मद्यादि सेवन और [2]वेश्यागमनादि, बाल्यावस्था में विवाह अर्थात् पच्चीसवें वर्ष से पूर्व पुरुष और सोलहवें वर्ष से पूर्व स्त्री का विवाह हो जाना ···" इत्यादि।

इसी भान्ति सत्यार्थप्रकाश द्वितीय समुल्लास में महर्षि दयानन्द जी लिखते हैं—

"वीर्य की रक्षा में आनन्द और नाश करने में दुःख प्राप्ति भी जना देनी चाहिये। जैसे देखो जिसके शरीर में सुरक्षित वीर्य रहता है तब उसको आरोग्य, बुद्धि, बल, पराक्रम, बढ के बहुत सुख की प्राप्ति होती है। इसके रक्षण में यही रीति है कि विषयों की कथा, विषयी लोगों का संग, विषयों का ध्यान, स्त्री का दर्शन, एकान्त सेवन, सम्भाषण और स्पर्शादि कर्म से ब्रह्मचारी लोग पृथक् रह कर उत्तम शिक्षा पूर्ण विद्या को प्राप्त होवें। जिसके शरीर में वीर्य नहीं होता वह नपुंसक महाकुलक्षणी और जिसको प्रमेह रोग होता है वह दुर्बल, निस्तेज, निर्बुद्धि, उत्साह साहस, धैर्य, बल पराक्रमादि गुणों से रहित होकर नष्ट हो जाता है। जो तुम लोग सुशिक्षा और विद्या के ग्रहण, वीर्य की रक्षा करने में इस समय चूकोगे तो पुनः इस जन्म में तुम को यह अमूल्य समय प्राप्त नहीं हो सकेगा।"

इसी प्रकार पठन-पाठन विधि में महर्षि दयानन्द जी ने लिखा है—"मुख्य करके सामवेद का गान वादित्र वादन पूर्वक

१—यहाँ पर आदि शब्द से अफीम, भङ्ग, चण्डु,चरस ताड़ी बीड़ी-सिग्रेट, गांजा, सुलफादि सभी मादक द्रव्यों का निषेध समझना चाहिए।

सीख और नारदसंहिता आदि जो-जो आर्ष ग्रन्थ हैं उनको पढ़ें, परन्तु भड़वे, वेश्या और विषयासक्ति कारक वैरागियों के गर्दभ शब्दवत् व्यर्थ आलाप कभी न करें।"

(सत्यार्थ० समु०३)

पाठकवृन्द ! महर्षि दयानन्द जी महाराज ने जीवन को उत्तम बनाने के लिये तथा ब्रह्मचर्य पालन विद्योपार्जनादि के विषय में कितना स्पष्ट लिखा है। सभी मादक द्रव्य=नशे, सभी विषय एवं सभी प्रकार के कुसङ्ग से पृथक् रह कर सर्वथा पवित्र तपस्वी जीवन बनाकर ही ब्रह्मचर्य पालन और विद्याध्ययन किया जा सकता है और कुसङ्ग में फंसकर नशे तथा विषयों का सेवन करने से सर्वथा नष्ट हो जाता है, यह महर्षि के उपदेश से भली-भांति स्पष्ट हो गया है। अतः इनका सर्वथा त्याग कर देना चाहिये।

———

स्वाध्याय की आवश्यकता

"वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है। वेद का पढ़ना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है।

(महर्षि दयानन्द)

हम आर्य हैं। वेद का पढ़ना-पढ़ना हमारा परम धर्म है, इस परम धर्म का पालन करने के लिये हमें नित्यप्रति वेदों का स्वाध्याय करना चाहिये, यदि हम प्रतिदिन स्वाध्याय न करेंगे तो अपने धर्म से च्युत हो जायेंगे, पशु बन जायेंगे, इतना ही नहीं सर्वथा नष्ट हो जायेंगे। क्योंकि यह नियम है कि जब धर्मी धर्म को छोड़ देता है तब वह नष्ट हो जाता है। उदाहरणार्थ अग्नि को ले लीजिये, उष्णता अग्नि का धर्म है, जब तक उसमें उष्णता विद्यमान है तभी तक वह अग्नि है, किन्तु उष्णता धर्म के नष्ट हो जाने पर उसे अग्नि कोई नहीं कहता, वह राख के रूप में परिणत हो जाती है। ठीक यही अवस्था हमारी है, जब तक हम अपने धर्म का पालन करते हैं, प्रतिदिन वेदों का स्वाध्याय करते हैं, तब तक हम जीवित हैं, उन्नति के पथ पर अग्रसर हैं, हमारे अन्दर आर्यत्व=श्रेष्ठत्व स्थित है, अन्यथा हमारा आत्मा मर जाता है, पतित हो जाता है, आर्यत्व भी नष्ट हो जाता है। मनु जी लिखते हैं—

"वेदसंन्यासतः शूद्रस्तस्माद्वेदं न संन्यसेत्"

वेद त्याग अर्थात् वेदों का स्वाध्याय न करने से मनुष्य शूद्र बन जाता है।

"अनभ्यासेन वेदानामाचारस्य च वर्जनात्।
आलस्यादन्नदोषाच्च मृत्युर्विप्रान् जिघांसति॥"

वेदों का स्वाध्याय न करने से अतएव आचारहीन हो जाने पर तथा आलस्य-प्रमादादि के घेर लेने पर लोगों को मृत्यु आ दबोचती है। इसके विपरीत वेदादि शास्त्रों का स्वाध्याय करने से, सदाचारी एवं आलस्य-प्रमादादि को छोड़ देने पर मृत्यु को भी मारा जा सकता है, मनुष्य उसके भय से मुक्त हो सकता है। स्वयं वेद भगवान् कहता है—

"ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमपाघ्नत" (अथर्व० ११-५-१६)

ब्रह्मचर्य = वेदाध्ययन, ईश्वरचिन्तन और वीर्य की रक्षा करने रूपी तप के द्वारा विद्वान् लोग मृत्यु को मार डालते हैं और यह यज्ञ भी ऐसा है कि जन्म से मृत्युपर्यन्त = आजीवन करना चाहिये। किसी आश्रम में एक का, किसी में दो का और किसी में पांचों यज्ञों का विधान हमारे शास्त्रकारों ने किया है, किन्तु स्वाध्याय यज्ञ सभी आश्रमों में अनिवार्य है।

ब्रह्मचर्य मुख्यतया है ही वेदादि के अध्ययन के लिये, सब नहीं तो कम से कम एक वेद तो अवश्य ही पढ़ना चाहिये, तभी गृहस्थाश्रम में प्रवेश करने का विधान है—

वेदानधीत्य वेदौ वा वेदं वापि यथाक्रमम्।
अविप्लुतब्रह्मचर्यो गृहाश्रममाविशेत्॥ (मनु० ३-२)

चारों वेदों को या दो वेदों को अन्यथा न्यून से न्यून एक ही वेद को यथाक्रम = शिक्षा-कल्प-व्याकरण-निरुक्त-छन्द-ज्योतिषादि वेदाङ्गों के अध्ययन पूर्वक पढ़कर, 'गुरुणानुज्ञात:' गुरु= आचार्य की आज्ञा लेकर ब्रह्मचारी को गृहस्थ आश्रम में प्रवेश करना चाहिये।

गृहस्थ में जाकर भी स्वाध्याययज्ञ नित्यप्रति करना आवश्यक है। समावर्तन के समय आचार्य अन्तेवासी को सावधान करता है—

"स्वाध्यायान्मा प्रमदः" "स्वाध्यायप्रवचनाभ्यां न प्रमदितव्यम्" (तैत्तिरीयारण्यक शिक्षावल्ली ७।११)

हे शिष्य तू स्वाध्याय में कभी प्रमाद न करना, स्वाध्याय और प्रवचन नित्य प्रति करते रहना।

इसी प्रकार तृतीय वानप्रस्थाश्रम भी तप और स्वाध्यायादि के लिये है, महर्षि मनु ने भी कहा है—

स्वाध्याये नित्ययुक्तः स्याद् दान्तो मैत्रः समाहितः।
दाता नित्यमनादाता च सर्वभूतानुकम्पकः॥

(मनु० ६।७)

वानप्रस्थ को चाहिये कि वह जितेन्द्रिय होकर सर्वदा स्वाध्याय करने में रत रहे, सांसारिक विषयों से इन्द्रियों का दमन कर, सब पर कृपा दृष्टि रखता हुआ विद्यादि का दान करता रहे किन्तु प्रत्युपकार में किसी से कुछ न ले, इस प्रकार व्यवहार करे।

चतुर्थाश्रम संन्यास में सभी सांसारिक साधनों का निषेध करते हुए स्वाध्याय की आवश्यकता बतलाई है—

"संन्यसेत्सर्वकर्माणि वेदमेकं न संन्यसेत्।"

संन्यासी सब सांसारिक कार्यों से विरत हो जाये किन्तु वेद के स्वाध्याय को न छोड़े, वह संन्यासी के लिये भी अनिवार्य है।

इस प्रकार ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास सभी आश्रमों में स्वाध्याय यज्ञ की शास्त्रकारों ने अत्यन्त आवश्यकता बतलाई है। अन्य सांसारिक कार्यों में अवकाश (छुट्टी) का भी विधान है, जैसा कि आजकल भी प्रचलित है किन्तु स्वाध्याय इतना आवश्यक है जितना की श्वास प्रश्वास। जिस प्रकार श्वास प्रश्वास यावज्जीवन निरन्तर चलते ही रहते हैं, इसी भान्ति स्वाध्याय-यज्ञ भी नित्यप्रति अखण्डित रूप में चलता रहना चाहिये।

वेदोपकरणे चैव स्वाध्याये चैव नैत्यिके।
नानुरोधोऽस्त्यनध्याये होममन्त्रेष चैव हि ॥
(मनु० २-६३)
नैत्यिके नास्त्यनध्यायो ब्रह्मसत्रं हि तत् स्मृतम् ।

वेदादि के पढ़ने, स्वाध्यायादि नित्यकर्मों के करने में कभी अनध्याय नहीं होता, सर्वदा अध्याय ही रहता है, क्योंकि स्वाध्यायादि कर्म ही ब्रह्मयज्ञ कहलाते हैं, इस ब्रह्मयज्ञ का सभी आश्रमों में सभी वर्णों में सर्वदा सर्वत्र अनुष्ठान करना चाहिये।

यदि किसी कार्य विशेष (नौकरी आदि) के कारण स्वाध्याय में बाधा पड़ती हो तो उस कार्य को भी छोड़ देने का विधान है, किन्तु स्वाध्याय इतना आवश्यक है कि इसको कभी नहीं छोड़ना चाहिये।

'सर्वान् सन्त्यजेदर्थान् स्वाध्यायस्य विरोधिनः''

इसीलिये अपनी जीवनयात्रा को चलाने के लिये अन्य कार्यों को करते हुए स्वाध्याय भी नित्यप्रति अवश्य ही करना चाहिये। इसकी सर्वोत्तम विधि यह है कि अपने सभी कार्यों के लिये समय विभक्त कर लेना चाहिये, अपनी दिनचर्या स्वयं सुविधानुसार बनाकर तदनुसार चलना चाहिये, उसमें स्वाध्याय के लिये भी कुछसमय नियत कर लेना चाहिये।

स्वाध्याय के लिये प्रातःकाल का ही समय सबसे उत्तम है, महर्षि मनु ने भी यही निर्देश किया है—

ब्राह्मे मुहूर्त्ते बुध्येत धर्मार्थौ चानुचिन्तयेत् ।
कायक्लेशांश्च तन्मूलान् वेदतत्त्वार्थमेव च ॥
(मनु० ४। ६८)

प्रातः काल ब्राह्म मुहूर्त में उठकर धर्म, अर्थ, शारीरिक क्लेश तथा उनके कारण और वेद के तत्त्व का चिन्तन करना चाहिये।

इसलिये प्रत्येक नर-नारी को विशेषतया ब्रह्मचारी को प्रातः ब्राह्म मुहूर्त में उठकर नित्य कर्मों से निवृत्त होकर शान्तचित्त हो वेदादि सत्य शास्त्रों का स्वाध्याय अवश्य करना चाहिये ।

आजकल लोगों में स्वाध्याय के प्रति अरुचि हो गई है. आधुनिक ढङ्ग के व्यक्ति स्वाध्याय की कोई आवश्यकता ही नहीं समझते, इसीलिये दिन-प्रतिदिन स्वाध्याय का अभाव सा होता जा रहा है और मानव समाज से मानवता मुंह छिपाकर भाग रही है तथा दानवता का साम्राज्य बढ़ता जा रहा है। इस बढ़ती हुई दानवता को, दुराचार=व्यभिचार की बाढ़ को रोकने के लिये स्वाध्याय करना परमावश्यक है। स्वाध्याय के अभाव में हमारा यह भयंकर पतन हुआ है अतः पुनरुत्थान स्वाध्याय करने से ही हो सकेगा। इसलिये स्वाध्याय करने का सभी को व्रत लेना चाहिये और उसका नियमित रूप से पालन करना चाहिये। जिस प्रकार से शरीर के लिये भोजन आवश्यक है उसी प्रकार आत्मा के लिये स्वाध्याय अत्यन्त आवश्यक है।

स्वाध्याय करने के विषय में अधिकतर लोग यही मिष बनाते हैं कि हमें स्वाध्याय के लिये समय (फुरसत) ही नहीं मिलती। किन्तु यह सर्वथा मिथ्या है, समय मनुष्य के अधिकार में है, दिन-रात के २४ घण्टे में से कम से कम एक घण्टा स्वाध्यायार्थ अति सुगमता से निकाला जा सकता है। उसी एक घण्टे के समय में यदि प्रतिदिन २० पृष्ठ भी किसी पुस्तक का अध्ययन किया जाये तो वर्ष के ३६५ दिनों में ७३०० पृष्ठ पढ़े जा सकते हैं, जीवन के इतने लम्बे समय में विचारिये कितने सहस्र ग्रन्थों का स्वाध्याय किया जा सकता है।

किन्तु हम अपने जीवन के अमूल्य समय को शरीर की बनावट-सजावट, खेल-कूद और गप्प-गोष्ठियों में व्यर्थ खो

देते हैं या आलस्य और प्रमाद में पड़े-पड़े जीवन को वृथा गंवा देते हैं। किन्तु इसे सदा स्मरण रखें—जो व्यक्ति अपने समय को व्यर्थ खोता है, वह अपने जीवन को खोता है, क्षण-क्षण से जीवन बनता और बिगड़ता है, बुद्धिमान् वही है जो अपने समय का सदुपयोग करता है।

स्वाध्याय का अर्थ

सु या स्व उपपद में होने पर आङ् अधिपूर्वक अध्ययनार्थक 'इङ्' धातु से 'इङ्श्च' ३।३।२१ इस पाणिनीय सूत्र से घञ् प्रत्यय करने पर 'स्वाध्याय' शब्द सिद्ध होता है। 'सुष्ठु आवृत्य अध्ययनं स्वाध्यायः' 'स्वमध्ययनं स्वाध्यायः' भली भान्ति आवृत्ति पूर्वक अध्ययन करना, या अपने लिये अथवा स्वयं अध्ययन करना। स्व शब्द से आत्मा, आत्मीय आदि अनेक अर्थ होने के कारण स्वाध्याय शब्द के भी विविध अर्थ हो जाते हैं,

योगदर्शन के व्यास भाष्य में स्वाध्याय शब्द का अर्थ महर्षि व्यास ने इस प्रकार किया है—"स्वाध्यायः—प्रणवादिपवित्राणां जपः, मोक्षशास्त्राध्ययनं वा" (२।१ तथा २।३२ सूत्र भाष्ये) प्रणव = ओम् गायत्र्यादि का जप करना या मोक्षशास्त्र आध्यात्मिक ग्रन्थ वेद, दर्शन, उपनिषदादि का पढ़ना स्वाध्याय कहलाता है।

सभी कोषकारों ने स्वाध्याय शब्द को वेदाध्ययन शब्द का पर्यायवाची या समानार्थक माना है—

"स्वाध्यायः। वेदे। स्वाभिमतप्रणवादिमन्त्रजपे। ब्रह्मयज्ञे। वेदाध्ययने। फलवदर्थावबोधपर्यन्ताध्ययने। उपनिषद्ग्रन्थावृत्तौ। मोक्षशास्त्राणामध्ययने। सु अतीव आवृत्य अध्ययनम्। स्वार्थमध्ययनं वा।" (शब्दार्थचिन्तामणिः)

"स्वाध्यायः । सुष्ठु आवृत्य अध्यायः वेदाध्ययनमिति।"

(शब्दकल्पद्रुमवृहदभिधानम्)

"स्वाध्यायः स्याज्जपः" "द्वे वेदाध्ययनस्येति" तट्टीका

(अमरकोष)

"स्वाध्यायो जप इत्युक्तो वेदाध्ययनकर्मणि"

(शब्दरत्नावली)

"द्वे आवृत्य वेदाध्ययने । सु सुकृताय आवृत्य अध्यायोऽधितिः स्वाध्यायः" (भरतः)

"सम्यक् रूप से शास्त्रमात्र के अध्ययन को ही स्वाध्याय कहते हैं" (हिन्दीविश्वकोष)

इस प्रकार सभी कोषकार स्वाध्याय शब्द का अर्थ वेद, दर्शन, उपनिषदादि शास्त्रों का अध्ययन करना, आत्मकल्याणार्थ अध्ययन करना, आत्मचिन्तन, ईश्वर भक्ति, प्रणवादिजप करना इत्यादि अर्थ करते हैं। इसी प्रकार 'स्वाध्यायी' और 'स्वाध्यायवान्' शब्द भी विशिष्ट वेदाध्यायी के अर्थ में प्रयुक्त हुए हैं। यथा—

स तूर्ध्वरेतास्तपसि प्रसक्तः, स्वाध्यायवान् वीतभयः कृतात्मा।
चचार सर्वां पृथिवीं महात्मा, न चापि दारान् मनसाप्यकाङ्क्षत् ॥

(महाभारत १।४०।१०)

स्वाध्याय, ब्रह्मचर्यपालन आदि तप में लगा हुआ, भय शोकादि से रहित, ऊर्ध्वरेता और जितेन्द्रिय होकर महात्मा जरत्कारु सम्पूर्ण भूमण्डल पर भ्रमण करने लगा, उसने कभी मन से भी स्त्री आदि की इच्छा नहीं की।

इस प्रकार अश्लील, अनार्ष, भद्दे, उत्तेजक नाटक उपन्यास, कहानी, सिनेमा, रागिणी, रामलीला, रासलीला आदि की किसी भी प्रकार की पुस्तक पढ़ लेना स्वाध्याय नहीं कहा जा सकता, जो

ऐसा समझते हैं वे भूल करते हैं। स्वाध्याय आत्मोन्नति का सर्वोत्तम साधन है, किन्तु इन नाटकादि के अध्ययन से उन्नति के स्थान में अवनति ही होगी।

कुछ सज्जन वृत्तपत्र (अखबार) पढकर ही सन्तुष्ट हो जाते हैं, उनकी दृष्टि में यही स्वाध्याय है किन्तु वृत्तपत्र पढ़ने को स्वाध्याय समझना भी अज्ञान है, स्वाध्याय शब्द का अर्थ हम सप्रमाण ऊपर लिख ही चुके हैं और आगे चलकर स्वाध्याय करने योग्य ग्रन्थों का नामोल्लेख भी किया जायेगा, उन्हीं ग्रन्थों का अध्ययन करना स्वाध्याय कहलाता है, नाटक-उपन्यास और वृत्तपत्रादि पढ़ना कदापि नहीं।

स्वाध्याय की महिमा

हमारे शास्त्रों में स्वाध्याय की महिमा बहुत बतलाई गई है। वेद, स्मृति, उपनिषद्, दर्शन और ब्राह्मण ग्रन्थों में स्वाध्याय के महत्त्व पर प्रभूत प्रकाश डाला गया है। स्वाध्याय के महत्त्व को दृष्टि में रखते हुए ही हमारे पूर्वज ऋषि-महर्षियों ने हमारी जीवनचर्या में स्वाध्याय को सबसे अधिक महत्त्व दिया है। देखिये पञ्च महायज्ञों में स्वाध्याय एक यज्ञ[1] है. योग के आठ अङ्गों में स्वाध्याय भी उपाङ्ग[2] है, मनु महाराज ने स्वाध्याय को सर्वोत्तम तप बतलाया[3] है और धर्म के सप्तम लक्षण धी विमल बुद्धि की प्राप्ति का साधन भी स्वाध्याय ही है। योगदर्शन के भाष्यकार महर्षि व्यास जी ने लिखा है—

१. "स्वाध्यायो ब्रह्मयज्ञः" (शतपथ० ११।५।६।३)

२. शौचसन्तोषतपः स्वाध्यायेश्वर प्रणिधानानि नियमाः ।। (योग० २।३२)

३. वेदाभ्यासो हि विप्राणां परंतप उच्यते।
ब्रह्मयज्ञः स विज्ञेयः षडङ्गसहितस्तु यः ।। (मनुस्मृति)

स्वाध्यायाद् योगमासीत योगात्स्वाध्यायमामनेत् ।
स्वाध्याययोगसम्पत्त्या परमात्मा प्रकाशते ॥

स्वाध्याय के द्वारा योग की ओर प्रवत्त होकर योग से स्वाध्याय का चिन्तन करना चाहिये, स्वाध्याय तथा योगाभ्यास के द्वारा ईश्वर की प्राप्ति हो जाती है। छान्दोग्योपनिषत् के अन्त में भी लिखा है—

"आचार्यकुलाद्वेदमधीत्य यथा विधानं गुरोःकर्मातिशेषेणाभिसमावृत्य कुटुम्बे शुचौ देशे स्वाध्यायमधीयानो धार्मिकान् विदधदात्मनि सर्वेन्द्रियाणि सम्प्रतिष्ठाप्याहिंसन् सर्वभूतान्यन्यत्र तीर्थेभ्यः स खल्वेवं वर्तयन् यावदायुषं ब्रह्मलोकमभिसम्पद्यते। न च पुनरावर्तते। (८।१५।१)

ब्रह्मचारी आचार्य-कुल से विधिपूर्वक वेद पढ़कर गुरु की सेवा शुश्रूषा आदि पूर्णतया करता हुआ समावर्तन संस्कार करके कुटुम्ब-गृहाश्रम में रहता हुआ, पवित्र स्थान में वेदादि शास्त्रों का स्वाध्याय करता हुआ, अपने परिवार एवं जनता को धार्मिक बनाता हुआ, आत्मा में सब इन्द्रियों को स्थापित कर, तीर्थ स्थानों से अन्यत्र भी प्राणियों की हिंसा न करता हुआ, मरण पर्यन्त इस प्रकार का व्यवहार करता हुआ मोक्ष को प्राप्त कर लेता है, तथा आवागमन के चक्र से छूट जाता है ।

शतपथ ब्राह्मण का एक ब्राह्मण सम्पूर्ण स्वाध्याय की प्रशंसा का है—

"अथातः स्वाध्यायप्रशंसा। प्रिये स्वाध्यायप्रवचने भवतो युक्तमना भवत्यपराधीनोऽहरहरर्थान् साधयते सुखं स्वपिति परमचिकित्सक आत्मने।

भवतीन्द्रियसंयमश्चैकारामता च प्रज्ञावृद्धिर्यशो लोकपङ्क्तिः। प्रज्ञा वर्धमाना चतुरो धर्मान् ब्राह्मणमभिनिष्पादयति ब्राह्मण्यमति-

रूपचर्यां यशोलोकपङ्क्तिम्। लोकः पच्यमानश्चतुर्भिर्धर्मैर्ब्राह्मण-म्भुनक्त्यर्चया च दानेन चाज्येयतया चावद्ध्यतया च

(शतपथ ब्रा० ११।५।६।१)

अब स्वाध्याय की प्रशंसा = महिमा बतलाते हैं, स्वाध्याय और प्रवचन अत्यन्त प्रिय विषय हैं, शान्तचित्त से स्वाध्याय करने वाला व्यक्ति स्वतन्त्रता से अपने कार्य सिद्ध करता है, आनन्द से रहता है, अपने हिताहित का ध्यान रखता है, संयमी, बुद्धिमान् और यशस्वी बन जाता है, बुद्धि की निमलता से स्वाध्यायशील व्यक्ति धर्म अर्थ काम और मोक्ष को प्राप्त कर लेता है, सच्चा ब्राह्मणत्व, यथोचित आचार-व्यवहारवान् और लोगों का विश्वास-पात्र बन जाता है, सब ओर से उसे यथेष्ट सम्मान, धनादि प्राप्त होते हैं।

ये ह वै के च श्रमाः। इमे द्यावापृथिवीऽअन्तरेण स्वाध्यायो हैव तेषां परमता काष्ठाय एवं विद्वान् स्वाध्यायमधीते तस्मात्स्वा-ध्यायोऽध्येतव्यः। (शतपथ ब्रा० का० ११ अ० ५ ब्रा० ६ कः २)

संसार में जितने भी कार्य हैं स्वाध्याय उन सब से श्रेष्ठ है, कठिन कार्य है, ऐसा जानकर जो स्वाध्याय करता है वह तत्त्व को जान लेता है। इसलिये स्वाध्याय करना चाहिये।

ऋग्वेद के ज्ञान सूक्त में स्वाध्याय की महिमा इस प्रकार बतलाई है—

यस्तित्याज सचिविदं सखायं न तस्य वाच्यपि भागो अस्ति।
यदीं शृणोत्यलकं शृणोति न हि प्रवेद सुकृतस्य पन्थाम्॥

(ऋ० १०।७१।)

(यः) जो व्यक्ति (सचिविदम्) परमेश्वर को प्राप्त कराने या उसका ज्ञान करवाने वाले (सखायम्) वेद के स्वाध्याय रूपी मित्र को (तित्याज) छोड़ देता है, (तस्य) उस व्यक्ति की

(वाचि अपि) वाणी में भी (न भाग अस्ति) कुछ भजनीय = सेवनीय तत्त्व नहीं है। (यत् ईम् शृणोति) वह जो कुछ सुनता है (अलकम् शृणोति) सब मिथ्या ही सुनता है और (न हि प्रवेद सुकृतस्य पन्थाम्) वह सुकृत के, पुण्य के, मोक्ष के मार्ग को नहीं जान सकता। इसलिये परमसुख मोक्ष की प्राप्ति के लिये वेदों का स्वाध्याय अवश्य करना चाहिये।

स्वाध्याय का फल

य: स्वाध्यायमधीतेऽब्दं विधिना नियत: शुचि:।
तस्य नित्यं क्षरत्येष पयो दधि घृतं मधु॥

जो मनुष्य विधिपूर्वक एक वर्ष तक शुद्ध एकाग्रचित्त होकर स्वाध्याय करता है उसको ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेदादि का ज्ञान अर्थात् ज्ञानकर्म उपासनादि का फल मिलता है। शतपथ ब्राह्मण में मधु तथा पय का अर्थ ऋचा और घृत का अर्थ साम किया है[1]।

ऋग्वेद और सामवेद में स्वाध्याय के फल का वर्णन करने वाले ६ मन्त्र हैं जिन में स्वाध्याय के नाना लाभों का विस्तृत वर्णन किया है, उनमें से केवल ३ मन्त्र यहाँ उद्धृत किये जाते हैं—

पावमानीरध्येत्यृषिभि: सम्भृतं रसम्।
स सर्वं पूतमश्नाति स्वदितं मातरिश्वना॥
(ऋ० ८। ६७। ३१॥ साम० उ० अ० १० खं० ६)

पावमानी अर्थात् सब को पवित्र करने वाली ईश्वर प्रदत्त एवं ऋषियों द्वारा सञ्चित ऋचाओं का जो अध्ययन करता है, वह पवित्र आनन्द रस का आस्वादन करता है।

१—मधु ह वा ऋच: (११। ५। ७। ५)
पय आहुतयोहवा एता देवानाम्। यदृच: (११। ५। ६। ४)
घृतं ह सामानि (११। ५। ७। ५)

पावमानीर्दधन्तु न इमं लोकमथो अमुम् ।
कामान् समर्धयन्तु नो देवीर्देवैः समाहृताः ॥
(सा० उ० अ० १० ख० ६)

पावमानी ऋचायें इस लोक और परलोक दोनों को धारण करने में हमारी सहायक हों, देव=उत्तम विद्वान् या श्रेष्ठ इन्द्रियों द्वारा प्राप्त करवाई हुई ये ऋचायें हमारी शुभ कामनाओं को पूर्ण करें।

पावमानीः स्वस्त्ययनीस्ताभिर्गच्छन्ति नान्दनम् ।
पुण्याँश्च भक्षान् भक्षयत्यमृतत्वं च गच्छति ॥
(साम० उ० अ० १० ख० ६)

ये पावमानी ऋचायें कल्याणकारिणी हैं, इनके द्वारा मनुष्य आनन्द को प्राप्त होते हैं, इन ऋचाओं अर्थात् वेद का स्वाध्याय करने वाला इस लोक में उत्तम भोग का उपभोग करता हुआ मोक्ष का अधिकारी बन जाता है।

महर्षि पतञ्जलि ने स्वाध्याय का फल इस प्रकार लिखा है—

"स्वाध्यायादिष्टदेवतासम्प्रयोगः" (योगदर्शन २—४४)

स्वाध्याय के द्वारा मनुष्य इष्ट देवता=यथेच्छ शुभ गुण की प्राप्ति कर सकता है, कोई महपुरुष इस संसार में नहीं है किन्तु उसके ग्रन्थों का स्वाध्याय कर हम उस से, उसके विचारों से सङ्गति कर यथेष्ट लाभ उठा सकते हैं। अतएव इस सूत्र का भाष्य करते हुए महर्षि व्यास ने लिखा है-"देवा ऋषयः सिद्धाश्च स्वाध्यायशीलस्य दर्शनं गच्छन्ति, कार्ये चास्य वर्तन्ते" विद्वान् ऋषि महर्षि आदि स्वाध्यायशील के दर्शन=ज्ञान में आते हैं और इसके कार्य को सिद्ध सकते हैं अर्थात् उनके ग्रन्थों का स्वाध्याय कर स्वाध्यायवान् व्यक्ति अपने कार्य को सिद्ध कर लेता है।

महर्षि याज्ञवल्क्य ने लिखा है—

"यद्यद्ध वायं छन्दस्यः स्वाध्यायमधीते तेन तेन हैवास्य यज्ञक्रतुनेष्टम्भवति, य एवं विद्वान्स्वाध्यायमधीते, तस्मात्स्वाध्यायोऽध्येतव्यः" (शतपथ० का० ११ अ० ५ ब्रा० ७ कं० १)

"स्वाध्यायशील मनुष्य जिस-जिस वेद का स्वाध्याय करता है उसको उस-उस वेद का वही फल मिलता है जो उस वेद से यज्ञ करने पर होता है, अतः स्वाध्याय अवश्य करना चाहिये।"

जन्म से कोई ब्राह्मणादि नहीं होता किन्तु अपने-अपने गुण कर्मानुसार ही होते हैं। शूद्र कुल में उत्पन्न व्यक्ति ब्राह्मण बन जाता है और ब्राह्मणकुलोत्पन्न व्यक्ति शूद्र बन जाता है[1]। मनु महाराज लिखते हैं—

स्वाध्यायेन व्रतैर्होमैस्त्रैविद्येनेज्यया सुतैः।
महायज्ञैश्च यज्ञैश्च ब्राह्मीयं क्रियते तनुः॥ (मनु० २।२८)

इस श्लोक का अर्थ ऋषि दयानन्द जी ने सत्यार्थप्रकाश में इस प्रकार लिखा है—

"(स्वाध्याय) सकल विद्या पढ़ने-पढ़ाने (व्रतैः) ब्रह्मचर्य सत्यभाषणादि नियम पालने (होमैः) अग्निहोत्रादि होम सत्य का ग्रहण असत्य का त्याग और सत्य विद्याओं का दान देने (त्रैविद्येन) वेदस्थ कर्मोपासनज्ञान विद्या के ग्रहण (इज्यया) पक्षेष्ट्यादि करने (सुतैः) सन्तानोत्पत्ति (महायज्ञैः) ब्रह्म, देव, पितृ, वैश्वदेव और अतिथियों के सेवन रूप पञ्चमहायज्ञों और (यज्ञैः) अग्निष्टोमादि तथा शिल्पविद्या विज्ञानादि यज्ञों के सेवन से इस शरीर को ब्राह्मी अर्थात् वेद और परमेश्वर की भक्ति का आधार रूप ब्राह्मण का

१—शूद्रो ब्राह्मणतामेति ब्राह्मणश्चैति शूद्रताम्।
क्षत्रियाज्जातमेवन्तु विद्याद्वैश्यात्तथैव च॥ (मनु० १०।६५)

शरीर किया जाता है। इतने साधनों के बिना ब्राह्मण शरीर नहीं बन सकता।"

ब्राह्मण अर्थात् सर्वोत्तम पुरुष बनने के लिये भी सर्वप्रथम स्वाध्याय की ही आवश्यकता है। जब हम अपने से अधिक विकसित, अनुभवी, वेद-शास्त्रवेत्ता ऋषि-महर्षि और विद्वानों के ग्रन्थों का स्वाध्याय करते हैं, अपने मन से उनके विचारों को ग्रहण करते हैं तब हमारी मानसिक शक्ति बढ़ती है, तदनुकूल आचरण करने से हम भी वैसे ही विद्वान् धार्मिक पुरुष बन सकते हैं। स्वाध्याय के लाभ कहाँ तक वर्णन किये जायें, केवल स्वाध्याय के ही बल पर एक साधारण व्यक्ति उच्चकोटि का विद्वान् बन सकता है। ऐसे सहस्रों उदाहरणों का इतिहास साक्षी है—

बरमौण्ट (अमेरिका) के एक मोची चार्लस सी फ्रास्ट ने अपनी आजीविका (नौकरी) के कार्य से प्रतिदिन एक घण्टा निकाल कर १० वर्ष तक एक घण्टा गणित के अध्ययन में लगाया। केवल उस एक घण्टे के स्वाध्याय के आधार पर उच्चकोटि का गणिज्ञ हो गया।

पं० गुरुदत्त एम० ए० ने एम० ए० की उपाधि लेने तक ही साथ-साथ वैदिक ग्रन्थों का स्वाध्याय कर डाला और उसी गुरुदत्त एम० ए० ने महर्षि दयानन्द जी के देहावसान के पश्चत् सभी पाश्चात्यों के वेद सम्बन्धी सभी आक्षेपों का वह मुंहतोड़ उत्तर दिया जिससे वे अवाक् रह गये, पं० गुरुदत्त जी ने गुरुमुख से वेदवेदाङ्गों का विधिपूर्वक अध्ययन नहीं किया किन्तु स्वाध्याय के ही कारण इतने उच्चकोटि के विद्वान् बन गये।

इसी प्रकार स्वामी दयानन्द जी महाराज, पं० चमूपति जी एम० ए०, पं० लेखराम जी महाराज तथा महात्मा नारायण स्वामी जी आदि सभी महापुरुषों के जीवन चरितों को पढ़िये, ये सभी

महापुरुष स्वाध्यायके ही बल पर इतने उच्चकोटि के विद्वान्, लेखक, वक्ता, शास्त्रार्थ महारथी आदि बने थे और आजकल भी सैकड़ों ऐसे विद्वान् हमारी दृष्टि में हैं जिन्होंने स्वाध्याय के द्वारा ही सब कुछ प्राप्त किया है। किन्तु विस्तार भय से यहाँ पर अधिक नहीं लिखा जा सकता।

महात्मा गान्धी जी ने लिखा है—

"अच्छी पुस्तकों के पास होने से हमें अपने भले मित्रों के साथ रहने की नहीं खटकती। जितना ही मैं पुस्तकों का अध्ययन करता गया उतनी ही मुझे उनकी विशेषतायें मालूम होती गईं। जिसे पढ़ने का शौक है, वह हर जगह सुखी रह सकता है।"

अतः स्वाध्याय के लाभों को दृष्टि में रखते हुए प्रत्येक व्यक्ति को स्वाध्यायशील बनना चाहिये।

स्वाध्याय का क्रम

स्वाध्याय का क्रम क्या है ? यह एक विचारणीय विषय है। यह तो हम पहले ही सिद्ध कर चुके हैं कि स्वाध्याय वेदादि शास्त्रों का पठन-पाठन ही कहलाता है, अन्य अनार्ष अश्लील ग्रन्थ तथा वृत्तपत्रादि का नहीं। प्राचीनकाल में वेदों को अधिगत करने के लिये आज की भान्ति नाना ग्रन्थों की आवश्यकता न थी, गुरु शिष्य को वेदार्थ बतला देता था और शिष्य उसे कण्ठस्थ कर लेता था, इसीलिये वेदों को श्रुति कहा जाता था। किन्तु कालान्तर में जब शक्ति का ह्रास होने लगा, शिष्य गुरुमुख से वेदार्थ को समझने में असमर्थ हो गये तब वेदाङ्ग उपाङ्ग आदि की रचना हुई। यास्काचार्य जी ने निरुक्त में लिखा है—

"साक्षात्कृतधर्माण ऋषयो बभूवुः, तेऽवरेभ्योऽसाक्षात्कृतधर्मभ्य उपदेशेन मन्त्रान् सम्प्रादुः। उपदेशाय ग्लायन्तोऽवरे, बिल्मग्रहणा-

येमं ग्रन्थं समाम्नासिषुः। वेदं च वेदाङ्गानि च ॥” (नि० १।२०)

सृष्टि के प्रारम्भ में साक्षात्कृतधर्मा=वेदार्थ को साक्षात् करने वाले ऋषि हुए, उन्होंने वेदार्थानभिज्ञ लोगों को उपदेश के द्वारा वेद मन्त्रों का अर्थ ज्ञान करवाया। किन्तु कालान्तर में जब शिष्य उपदेश के द्वारा वेदार्थ जानने में असमर्थ हो गये तब ऋषियों ने सुगमता से वेदार्थ को ग्रहण करवाने के लिये निघण्टु निरुक्तादि वेदाङ्गोंपाङ्गो की रचना की।

किन्तु आज हमारे समक्ष एक और समस्या उपस्थित हो गई है, आजकल वेद वेदाङ्गों के पठन-पाठन का ही लोप होता जा रहा है, प्रथम तो पढ़ने वाले ही नहीं मिलते और यदि कोई पढ़ना भी चाहता है तो पढ़ाने वाले विरले ही मिलते हैं। ऐसी अवस्था में सुगम उपाय यही है कि जो जो ग्रन्थ, ऋषि महर्षि एवं आधुनिक धार्मिक विद्वानों के बनाये हैं उनका स्वाध्याय करना चाहिये।

स्वाध्याय का क्रम अपनी योग्यता के अनुसार स्वयं ही निश्चित करना होगा, या किसी विद्वान् गुरु आचार्य आदि से पूछकर भी निश्चित किया जा सकता है। स्वाध्यायक्रम निश्चित करने के लिये योग्यता ही मान दण्ड है। यदि प्राथमिकशाला का बच्चा महाविद्यालय या विश्वविद्यालय की कक्षा में जाकर बैठेगा तो उसके पल्ले कुछ न पड़ेगा। ठीक इसी प्रकार यदि साधारण अक्षर बोध वाला व्यक्ति वेद को पढ़ना चाहे तो नहीं पढ़ सकता।

मनु महाराज ने लिखा है—

यथा-यथा नरः शास्त्रं समधिगच्छति।
तथा तथा विजानाति विज्ञानं चास्य रोचते॥

मनुष्य ज्यों-ज्यों शास्त्रों का परिशीलन करता जाता है त्यों-त्यों

उत्तरोत्तर ज्ञान की वृद्धि होती जाती है और उसकी रुचि भी शास्त्रों के प्रति बढ़ती जाती है।

इसलिये योग्यतानुसार प्रथम छोटे-छोटे ग्रंथों का स्वाध्याय कर उत्तरोत्तर वृद्धि करनी चाहिये। पूर्णतया कल्याण तब होगा जब महर्षि दयानन्द जी द्वारा निर्दिष्ट प्राचीन आर्षपाठविधि के अनुसार यथाविधि वेदादि शास्त्रों को पढ़ा जायेगा। जो आनन्द गङ्गोत्री का जल पान करने से मिलता है वह हुगली के गन्दे जल के पीने से किस प्रकार मिल सकता है! अतः यथाविधि ही शास्त्रों का अध्ययन करना चाहिये किन्तु जो विधिपूर्वक वेद को पढ़ने में असमर्थ हैं उन्हें भी स्वाध्याय के द्वारा उन्नति = आत्म-कल्याण अवश्य ही करना चाहिये।

अक्षर बोध के पश्चात् महर्षि दयानन्द, स्वामी श्रद्धानन्द, पं० गुरुदत्त विद्यार्थी, महात्मा हंसराज, लाला लाजपतराय, भीष्म पितामह, हनुमान्, स्वामी शङ्कराचार्य, ब्र० रामप्रसाद बिस्मिल, चन्द्रशेखर 'आजाद', सरदार भक्तसिंह आदि के जीवन चरित्रों का स्वाध्याय करना तदनन्तर इतिहास, धर्मशास्त्र, ऋषिदयानन्दकृत ग्रन्थ, वेदभाष्य आदि योग्य के अनुसार पढ़ने चाहियें।

स्वाध्याय और श्रावणी

स्वाध्याय तथा श्रावणी पर्व का सम्बन्ध प्राचीन काल से ही चला आता है। मनुस्मृति में लिखा है—

श्रावण्यां प्रौष्ठपद्यां वाप्युपाकृत्य यथाविधि।
युक्तश्छन्दांस्यधीयीत मासान् विप्रोऽर्धपञ्चमान्॥
(अ० ४—९५)

श्रावण या भाद्रपदमास की पूर्णिमा को यथाविधि उपाकर्म करके साढ़े चार मास तक वेदों का अध्ययन करना चाहिये।

कूर्म पुराण में भी इसी प्रकार का वर्णन मिलता है—

उत्सृज्य ग्रामनगरं मासान् विप्रोऽर्धपञ्चमान्।
अधीयीत शुचौ देशे ब्रह्मचारी समाहितः॥

(उपविभाग अ० १३)

साढे चार मास तक ग्राम नगर आदि से पृथक् स्वच्छ स्थान में जाकर, एकाग्रचित्त और जितेन्द्रिय होकर वेदों का स्वाध्याय करना चाहिये।

इसी प्रकार याज्ञवल्क्य-स्मृति बोधायन, स्मृति, वसिष्ठस्मृति, वाल्मीकि रामायण तथा आश्वलायनपारस्कर-लोगाद्दि आदि गृह्य-सूत्रों में भी श्रावण मास के वेदाध्ययन = विशेषतया वेद के स्वाध्याय का विधान मिलता है।

श्रावणी पर किया क्या जाता है ? पुराने का त्याग नवीन का ग्रहण। पुराने जीर्ण यज्ञोपवीत, मेखलादि का विसर्जन और स्वाध्याय क्रम में परिवर्तन किया जाता है। श्रावण से पौष तक चार-पांच मास तक विशेषतया वेदों का स्वाध्याय किया जाता है और तदनन्तर वेदाङ्गों का। श्रावणी के आने पर द्वितीय वर्ष पुनः पूर्ववत् वेदों का स्वाध्याय प्रारम्भ कर दिया जाता है।

श्रावणी का विशेष महत्त्व वेदों के अध्ययन के ही कारण है। वेद सभी सत्य विद्याओं के मूल ग्रन्थ हैं, संसार की सभी विद्यायें सम्पूर्ण ज्ञान-विज्ञान, कला-कौशल बीज रूप से वेदों में निहित हैं।

चातुर्वर्ण्यं त्रयो लोकाश्चत्वार आश्रमाः पृथक्।
भूतं भव्यं भविष्यं च सर्वं वेदात्प्रसिध्यति॥

(मनुस्मृति)

ब्राह्मणादि चारों वर्ण, ब्रह्मचर्यादि चारों आश्रम अर्थात सम्पूर्ण वर्णाश्रम धर्म, भूतवर्तमान और भविष्यत् इन सब का

ज्ञान वेद के अध्ययन से होगा। धर्म के चार लक्षण—(वेदः, स्मृतिः, सदाचारः, स्वस्य च प्रियमात्मनः) में वेद का सर्वप्रथम स्थान है, क्योंकि-(वेदोऽखिलो धर्म मूलम्' मनु) वेद ही धर्म का उत्पत्ति स्थान है, अतः वेदविहित धर्म तद्विरुद्ध अधर्म समझना चाहिये।

स्वाध्याय और ब्रह्मचर्य

स्वाध्याय और ब्रह्मचर्य का घनिष्ठ सम्बन्ध हैं, वेदादि पवित्र ग्रन्थों का स्वाध्याय किये बिना मनुष्य के विचार शुद्ध नहीं रह सकते, बिना संकल्प शुद्धि के ब्रह्मचर्य पालन या वीर्य रक्षा कर सकना सर्वथा असम्भव है। ब्रह्मचर्य पालन या वीर्यरक्षा के बिना सब कुछ थोथा है, निष्फल और निस्सार है। संसार में बिना वीर्यरक्षा किये कोई भी व्यक्ति किसी महान् कार्य के करने में सफल नहीं हुआ, जिन्होंने वीर्यरक्षा की वे सर्वत्र सफल ही सफल होते गये। निःसन्देह वीर्यरक्षा सफलता की कुन्जी है, "ब्रह्मचर्यं पुरुपार्थस्य साधनम्" ब्रह्मचर्य पुरुषार्थ चतुष्टय=धर्म अर्थ काम और मोक्ष का साधन है। उपनिषद् भी कहती है—'यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति" श्रेयोमार्गगामी जिस प्रभु की (मोक्ष की) कामना से ब्रह्मचर्य का पालन करते हैं।

प्राचीन काल में स्वाध्याय और ब्रह्मचर्य का बहुत मान्य था। तैत्तिरीयारण्यक में एक कथा आती है—

"भरद्वाज ने तीन आयु तक ब्रह्मचर्य धारण कर विद्या पढ़ी, जब वह वृद्ध होकर मृत्यु शय्या पर पड़ा था तब इन्द्र ने उसके पास आकर कहा—भरद्वाज ! यदि तुम को चौथी आयु दी जाये तो उसका क्या करोगे ? भरद्वाज ने उत्तर दिया कि इस चौथी आयु में भी ब्रह्मचर्य धारण कर विद्या पढ़ूंगा।

ब्रह्मचर्य या ब्रह्मचारी शब्द स्वयं बतला रहे हैं कि वेद पढ़ना,

वेदों का स्वाध्याय करना ब्रह्मचारी का परम धर्म है। शब्द को तोड़ने-मरोड़ने की आवश्यकता नहीं, ब्रह्म का अर्थ है--ईश्वर, वेद और ज्ञान; चर्य चिन्तन अध्ययन उपार्जन, अतः ब्रह्मचर्य शब्द का अर्थ हुआ--ईश्वर चिन्तन, वेदाध्ययन, ज्ञानोपार्जन। वेदों का स्वाध्याय करना ब्रह्मचर्यपालन में परम सहायक और अङ्ग है। महात्मा नारायण स्वामी जी ने भी लिखा है--

"स्वाध्याय ब्रह्मचर्य का साधक है"

अष्टाध्यायी के भाष्यकार महर्षि पतञ्जलि जी लिखते हैं--

"चतुर्भिःप्रकारैर्विद्योपयुक्ता भवति, आगमकालेन, स्वाध्याय-कालेन, प्रवचनकालेन, निदिध्यासनकालेनेति" (नवाह्निक)

अर्थात् चार प्रकार से विद्या की प्राप्ति भली भान्ति होती है--आगमकाल=गुरुमुख से पढ़ना, स्वाध्यायकाल=पढे हुए का स्वयं स्वाध्याय करना, पश्चात उसका प्रवचन और निदिध्यासन=साक्षात्कार करना। इस प्रकार विद्या प्राप्ति और ब्रह्मचर्य पालन के लिये स्वाध्याय अत्यन्त आवश्यक है। दोनों में घनिष्ठ सम्बन्ध है। जैसे बिना स्वाध्याय किये ब्रह्मचर्य की रक्षा नहीं की जा सकती, उसी प्रकार बिना ब्रह्मचर्य पालन=इन्द्रियदमन किये स्वाध्याय भी भली भान्ति नहीं किया जा सकता। स्वाध्याय काल में चित्त और इन्द्रियां विक्षिप्त हैं तो स्वाध्याय करने से विशेष लाभ नहीं होता, ऐसी अवस्था में सब किया-कराया व्यर्थ हो जाता है। अतः इन्द्रिय-दमन=ब्रह्मचर्य स्वाध्याय के लिये और स्वाध्याय ब्रह्मचर्य पालन के लिये आवश्यक है।

स्वाध्याय किस का और क्यों ?

"नास्ति वेदात्परं शास्त्रम्" वेद से पढ़कर अन्य कोई शास्त्र या ग्रन्थ नहीं है, "वेदश्चक्षुः सनातनम" सनातन=सबसे प्राचीन

चक्षुः=ज्ञान-विज्ञान का स्रोत वेद ही है। 'बुद्धिपूर्वा वाक्यकृतिर्वेदे' (वै ६।१) वेद का एक-एक वाक्य बुद्धिपूर्वक है, एक भी शब्द विपरीत नहीं। अतः स्वाध्याय वेदों का ही करना चाहिये। मनु जी ने लिखा है—

वेदमेवाभ्यस्येन्नित्यं यथाकालमतन्द्रितः।

तं ह्यस्याहुःपरमं धर्ममुपधर्मोऽन्य उच्यते॥

आलस्य और प्रमाद को छोड़कर नियतकाल में नित्यप्रति वेदों का स्वाध्याय करना चाहिये, क्योंकि यही परम धर्म है, शेष उपधर्म है। महर्षि दयानन्द जी ने भी वेदों के पढ़ने-पढ़ाने और सुनने-सुनाने को परम धर्म बतलाया है। महाभाष्यकार पतञ्जलि भी यही लिखते हैं—ब्राह्मणेन निष्कारणो धर्मः षडङ्गो वेदोऽध्येयो ज्ञेयश्च" अर्थात् साङ्गोपाङ्ग वेद का पढ़ना और जानना ब्राह्मण का निष्कारण=स्वार्थादि से रहित धर्म है। यहाँ ब्राह्मण का ग्रहण सब वर्णों में मुख्य होने के कारण किया है अतः मनुष्य मात्र का ही वेदाध्ययन परम धर्म है।

वेद और वेदानुकूल अन्य ग्रन्थों का ही स्वाध्याय करना चाहिये। जो ग्रन्थ वेद-विरुद्ध हैं वे सर्वथा त्याज्य हैं—

या वेदवाह्याः स्मृतयो याः काश्च कुदृष्टयः।

सर्वास्ताः निष्फलाः प्रेत्य तमोनिष्ठा हि ताः स्मृताः॥

जो ग्रन्थ स्मृति शाखादि वेद-विरुद्ध हैं वे सब निष्फल और तमोनिष्ठ=अज्ञानान्धराच्छादित होने के कारण छोड़ देने चाहियें। वेद विरुद्ध ग्रन्थों के पठन से कोई लाभ नहीं, हानि ही होती है। महर्षि मनु और कर्म-पुराण ने वेद के न पढ़ने वाले को मूढ, शूद्र और समाज से बहिष्कृत बतलाया है।

अनार्ष, अश्लील; उपन्यास, नाटकादि को पढ़ने वाला कभी

भी ब्रह्मचारी या सदाचारी नहीं रह सकता। ऐसे शृङ्गार रस के दूषित ग्रन्थों का पढना अपने घर में स्वयं आग लगाना है, अश्लील ग्रन्थों के पढने से ब्रह्मचारी भी व्यभिचारी बन जाता है, साधारण व्यक्ति की तो बात ही क्या है।

महर्षि दयानन्द जी महाराज ने सत्यार्थप्रकाश में पठन-पाठन विधि के अर्न्तगत संक्षेप से पाठ्य तथा अपाठ्य ग्रन्थों का उल्लेख किया है उनमें से कुछ यहाँ भी लिखा जाता है, विशेष विवरण सत्यार्थप्रकाश और संस्कार विधि में पढना चाहिये।

"अत्र जो परित्याग के योग्य ग्रन्थ हैं उनका परिगणन संक्षेप से किया जाता है अर्थात् जो-जो नीचे ग्रन्थ लिखेंगे वह-वह जाल ग्रन्थ समझना चाहिये। व्याकरण में कातन्त्र, सारस्वत, चन्द्रिका, मुग्धबोध, कौमुदी, शेखर, मनोरमादि। कोश में अमरकोशादि। छन्दोग्रन्थ में वृत्तरत्नाकरादि। शिक्षा में अथ शिक्षां प्रवक्ष्यामि पाणिनीयं मतं यथा इत्यादि। ज्योतिष में शीघ्रबोध, मुहूर्तचिन्तामणि आदि। काव्य में नायिका भेद, कुवलयानन्द, रघुवंश, माघ, किराताजुर्नीयादि। मीमांसा में धर्मसिन्धु, व्रतार्कादि। वैशेषिक में तर्कसंग्रहादि। न्याय में जगदीशी आदि। योग में हठप्रदीपिकादि। सांख्य में सांख्यतत्वकौमुद्यादि। वेदान्त में योगवासिष्ठ पञ्चदश्यादि। वैद्यक में शार्ङ्गधरादि। स्मृतियों में मनुस्मृति के प्रक्षिप्त श्लोक और अन्य सब स्मृति, सब तन्त्र ग्रन्थ, सब पुराण, सब उपपुराण, तुलसीदासकृत भाषारामायण, रुक्मिणीमङ्गलादि और सर्व भाषा ग्रन्थ ये सब कपोल कल्पित मिथ्या ग्रन्थ हैं।

प्रश्न—क्या इन ग्रन्थों में कुछ भी सत्य नहीं ?

उत्तर—थोड़ा सत्य तो है परन्तु इसके साथ बहुत सा असत्य भी है इससे 'विषसम्पृक्तान्नवत्त्याज्याः' जैसे अत्युत्तम अन्न विष

से युक्त होने से छोड़ने योग्य होता है वैसे ये ग्रन्थ हैं।"

(सत्यार्थप्रकाश तृतीय समुल्लास)

स्वाध्यायोपयोगी ग्रन्थ

ऋग्, यजुः, साम, अथर्व चार वेद, आयुर्वेद, धनुर्वेद, गान्धर्ववेद, अर्थवेद ४ उपवेद, शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द, ज्योतिष ६ वेदाङ्ग, सांख्य, योग, न्याय, वैशेषिक, पूर्व-मीमांसा, उत्तर-मीमांसा (वेदान्त) ६ दर्शन अर्थात् उपाङ्ग, ऐततरेय, शतपथ, साम और गोपथ ४ ब्राह्मणग्रन्थ, ईश, केन, कठ, प्रश्न, मुण्डक, माण्डूक्य, ऐतरेय, तैत्तिरीय, छान्दोग्य और बृहदारण्यक १० उपनिषद्, मनुस्मृति, वाल्मीकि रामायण, महाभारत इत्यादि सब ऋषि-मुनिकृत ग्रन्थ हैं इनमें भी जो-जो वेद विरुद्ध प्रतीत हो उस-उस को छोड़ देना चाहिये, क्योंकि वेद ईश्वरकृत होने से निर्भ्रान्त स्वतः प्रमाण अर्थात् वेद का प्रमाण वेद ही से होता है ब्राह्मणादि सब ग्रन्थ परतः प्रमाण अर्थात् इनका प्रमाण वेदाधीन है।

इन प्राचीन ग्रन्थों के अतिरिक्त ऋषि दयानन्दकृत वेदभाष्य सत्यार्थप्रकाश, संस्कारविधि, ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका व्यवहारभानु, आर्याभिविनय, गोकरुणानिधि, आर्योद्देश्यरत्नमालादि सभी ग्रन्थ तथा आधुनिक धार्मिक विद्वानों के उत्तमोत्तम ग्रन्थ, सिद्धान्त, राजनीति, समाजशास्त्र, नागरिकशास्त्र, शिल्पविद्या आदि विषयों पर श्रेष्ठ अनश्लील ग्रन्थों का अध्ययन करना चहिये।

संसार के सभी महापुरुषों के जीवन चरित्र विशेषतया पठनीय हैं, इनके स्वाध्याय से जीवनोत्थान में विशेष सहायता मिलती है।

आर्षग्रन्थों का महत्त्व

आर्ष-ग्रन्थ सब सत्य सरलता के सांचे में ढाले हैं।
जनजीवन को अमर बनाते, सौम्य-सुधा के प्याले हैं॥

आर्ष अनार्ष ग्रन्थ भी एक जटिल प्रश्न है, आर्ष क्या है और अनार्ष क्या? इसका साधारण उत्तर यही है—"ऋषिभिः प्रोक्तमार्षम्" जो जो ग्रन्थ ऋषियों द्वारा प्रोक्त=कथित या लिखित हैं वे सब आर्ष हैं। किन्तु आजकल ऋषियों के नाम से भी धूर्त स्वार्थियों ने अनेक पाखण्ड पोथे रच डाले हैं अतः इस परिभाषा को इस प्रकार समझें-"ऋषिभिः प्रोक्तमार्षम्, वेदानुकूलञ्चेत्" ऋषियों द्वारा प्रोक्त ग्रन्थ आर्ष हैं, वे भी तभी जब कि वेदानुकूल हों, विरुद्ध नहीं। आर्ष-अनार्ष ऋषि-अनृषि के विषय में विस्तारभय से यहाँ अधिक नहीं लिखा जा सकता, फिर कभी अन्यत्र लिखा जायेगा।

आर्ष-ग्रन्थों का महत्त्व क्या है और उनको क्यों पढ़ना चाहिये इस विषय में सुधारकाग्रणी महर्षि दयानन्द जी महाराज के ही वचन यहाँ उधृत किये जाते हैं—

"ऋषि प्रणीत ग्रन्थों को इसलिये पढ़ना चाहिये कि वे बड़े विद्वान् सब शास्त्रवित् और धर्मात्मा थे, अनृषि अर्थात् जो अल्प शास्त्र पढ़े हैं और जिनका आत्मा पक्षपात सहित है उनके बनाये हुए ग्रन्थ भी वैसे ही हैं।"

"क्योंकि जो महाशय महर्षि लोगों ने सहजता से महान् विषय अपने ग्रन्थों में प्रकाशित किया है वैसा इन क्षुद्राशय मनुष्यों के कल्पित ग्रन्थों में क्योंकर हो सकता है? महर्षि लोगों का आशय, जहां तक हो सके वहां तक, सुगम और जिसके ग्रहण करने में समय थोड़ा लगे इस प्रकार का होता है और क्षुद्राशय

लोगों की मनसा ऐसी होती है कि जहाँ तक बने वहाँ तक कठिन रचना करनी जिसको बड़े परिश्रम से पढ़के अल्प लाभ उठा सकें, जैसे पहाड़ का खोदना कोड़ी का लाभ होना। और आर्ष ग्रन्थों का पढ़ना ऐसा है कि जैसा एक गोता लगाना बहुमूल्य मोतियों का पाना।"

(सत्यार्थप्रकाश तृतीय समुल्लास)

उपसंहार

पाठक वृन्द! इस 'सत्सङ्गस्वाध्यायाङ्क' में सत्सङ्ग कुसङ्ग के लाभ हानि महत्त्वादि तथा स्वाध्याय की आवश्यकता, स्वाध्याय का अर्थ, स्वाध्याय की महिमा, स्वाध्याय के लाभ, स्वाध्याय का क्रम, इत्यादि सभी आवश्यक विषयों पर सप्रमाण प्रकाश डाला गया है किन्तु हमारे लिखने और आपके पढ़ लेने मात्र से ही कार्य पूर्ण नहीं हो जाता है, लिखना पढना तभी सफल होता है जब तदनुसार आचरण किया जाता है, क्रिया करने से ही फलवती होती है, मिश्री शब्द के उच्चारण से मुंह मीठा नहीं होता वा निर्मली (कतक) का नाम लेने से ही जल शुद्ध नहीं हो जाता। अतः गुण अवगुणों को विचार कर गुणों का ग्रहण एवं अवगुणों का त्याग कर देना चाहिये।

यदि किसी विषय को या कार्य को उत्तम जानकर स्वीकार कर लिया है, यदि वास्तव में उत्तम है तो उस अंगीकृत कर्म को कभी नहीं छोड़ना चाहिए, इसी में सफलता निहित है। भर्तृहरि जी ने लिखा है—

प्रारभ्यते न खलु विघ्नभयेन नीचैः
प्रारभ्य विघ्नविहता विरमन्ति मध्याः।

विघ्नैः पुनः पुनरपि प्रतिहन्यमानाः
प्रारभ्य चोत्तमजना न परित्यजन्ति ॥
(नीतिशतक २७)

सब से पुरुषाधम निकृष्ट व्यक्ति वे होते हैं जो विघ्न-बाधाओं के भय से श्रेष्ठ कार्यों का प्रारम्भ नहीं करते, मध्यम कोटि के व्यक्ति कार्य को प्रारम्भ कर आपत्तियों से घबराकर बीच में ही छोड़देते हैं किन्तु उत्तम पुरुष वे होते हैं जो सब विघ्न-बाधाओं को पार करते हुए अपने लक्ष्य की सिद्धि कर लेते हैं।

प्रभु ने हमें यह मनुष्ययोनि उन्नति करने के लिये दी है, अवनति के लिये नहीं, स्वयं वेद भगवान् कहता है—

"उद्यानं ते पुरुष नावयानम्" हे पुरुष तू उन्नति कर, उत्तम बन, उत्तरोत्तर कल्याण मार्ग का पथिक बनता हुआ, मोक्षानन्द को प्राप्त कर,'नावयानम्' अवनति के गर्त में न गिर, देख! कहीं तेरा अधः पतन न हो जाये। पहले से ही सावधान रहना अच्छा है, गड्ढे में गिरकर वैसा का वैसा निकलना कठिन हो जाता है। बुद्धिमत्ता इसी में है कि हम अवनति की ओर एक भी पांव न रख कर सदा उन्नति ही करते जायें।

———

हमारे यहाँ से प्राप्य—

स्वाध्यायोपयोगी उत्तम ग्रन्थ

१ चारों वेद (मूल)	१७।।)	ऋग्वेद ६), यजुर्वेद २।।), सामवेद २) अथर्ववेद ४)
२ व्याकरणमहाभाष्य	४०)	
३ सत्यार्थप्रकाश	।।।≡)	महर्षि दयानन्द
४ संस्कारविधि	।।।=)	” ”
५ ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका	२।।)	” ”
६ आर्याभिविनय	।=)	” ”
७ गोकरुणानिधि	=)	” ”
८ आर्योद्देश्य रत्नमाला	—)	” ”
९ पञ्चमहायज्ञविधि	≡)	” ”
१० वेदाङ्ग प्रकाश १४ भाग	८।।≡)	” ”
११ अष्टाध्यायीभाष्य दोनों भाग	७)	” ”
१२ महर्षि दयानन्द का प्रामाणिक जीवन चरित भाग १	६)	देवेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय
१३ महर्षि दयानन्द का प्रामाणिक जीवन चरित भाग २	६)	” ”
१४ दयानन्द दिव्य-दर्शन	।।)	” ”
१५ दयानन्दायन (हिन्दी काव्य)	४)	कविरत्न गदाधरसिंह
१६ महर्षि दयानन्द चरित	।।=)	हरिश्चन्द्र विद्यालङ्कार
१७ महर्षि दयानन्द और गोरक्षा	—)।।	
१८ दयानन्द दिग्विजयम् भाग १	४)	पं० मेधाव्रताचार्य कविरत्न
१९ ” ” भाग २	५)	” ”
२० दयानन्द लहरी	।।)	” ”

२१ ब्रह्मचर्यमहत्त्वम्	।।)	" "
२२ ब्रह्मचर्यशतकम्	।।)	" "
२३ संस्कृत कथा मञ्जरी	।।=)	स्वामी वेदानन्द सरस्वती
२४ विरजानन्द चरित	१।।)	" "
२५ मनोविज्ञान शिवसङ्कल्प	२।।)	" आत्मानन्द सरस्वती
२६ सन्ध्या अष्टाङ्गयोग	।।।)	" " "
२७ कन्या और ब्रह्मचर्य	≡)	" " "
२८ आदर्श ब्रह्मचारी	।)	" " "
२९ राष्ट्रनिर्माण में गुरुकुल का स्थान	।।)	मुनि देवराज विद्यावाचस्पति
३० " " धर्म का स्थान	।)	" " "
३१ आसनों के व्यायाम	।।)	ब्रह्मचारी वेदव्रत
३२ सिद्धान्त कौमुदी की अन्त्येष्टि	।–)	आचार्य राजेन्द्रनाथ शास्त्री
३३ वैदिक धर्म परिचय	।।=)	जगदेवसिंह सिद्धान्ती "

आचार्य भगवानदेव जी द्वारा लिखित पुस्तकें—

१ नेत्ररक्षा	≡)	८ बिच्छू विष चिकित्सा	=)
२ पापों की जड़ शराब	।–)	९ बह्मचर्यसाधन भाग १, २	।)
३ हमारा शत्रु तम्बाकू	=)।।	१० " (दन्तरक्षा) भाग ३	≡)
४ व्यायाम का महत्त्व	≡)	११ " (व्यायामसन्देश) " ४	१)
५ ब्रह्मचर्यामृत	=)।।	१२ " (सन्ध्या यज्ञादि) " ५	।=)
६ रामराज्य कैसे हो	≡)	१३ " (सत्सङ्ग-स्वाध्याय)" ७,८	।=)
७ बालविवाह से हानियां	–)	१४ " (भोजन) " ९,	।।=)

पता—'विश्वम्भर वैदिक पुस्तकालय'
गुरुकुल झज्जर जि० रोहतक (पञ्जाब)

सुधारक के दो आगामी अङ्क

"बलिदानाङ्क"

सुधारक के इस विशालकाय विशेषांक में बड़े आकार के ५०० से अधिक पृष्ठ तथा १०० से अधिक रंगीन चित्र होंगे। सरल भाषा, सुन्दर छपाई होगी।

इस विशेषांक में भारतीय स्वातन्त्र्य संग्राम के लगभग २०० दो सौ वीरों तथा शहीदों के जीवन-चरित्र और इतिहास पर प्रकाश डाला जायेगा। यह अपने ढंग का अद्वितीय अंक होगा।

बलिदानांक का मूल्य १०) रुपया होगा, किन्तु सुधारक के ग्राहकों को केवल ५) में ही दिया जायेगा। डाकव्यय इस मूल्य से पृथक् होगा। जो सज्जन 'सुधारक' को ग्राहक बनना चाहे वे २) धनादेश (मनीआर्डर) से भेजकर बन सकते हैं। तथा ५) बलिदानांक के लिये अगाऊ भेजने की कृपा करें। परिमित संख्या में ही इसका प्रकाशन होगा, शीघ्रता करें, पीछे पछताना न पड़े।

—व्यवस्थापक "सुधारक"

"प्राणायामाङ्क"

शीघ्र ही निकट भविष्य में सुधारक अपने पाठकों की सेवा में 'प्राणायामाङ्क भेंट करने वाला है। प्राणायाम ईश्वर प्राप्ति का साधन है, अष्टांगयोग में चतुर्थ अंग प्राणायाम ही है। साथ ही प्राणायाम शारीरिकोन्नति का भी साधन है, ऊर्ध्वरेता बनने के लिये प्राणायाम अत्यन्त आवश्यक है। किन्तु इस समय लोगों ने प्राणायाम को केवल योगियों का ही कार्य समझ कर छोड़ रखा है, अत एव नाना व्याधियों में ग्रस्त हैं, इस अङ्क में प्राणायाम के विषय में खोल कर लिखा जायेगा, जिससे सर्व साधारण व्यक्ति भी लाभ उठा सकें, विशेषतया ब्रह्मचारी नवयुवक और नवयुवतियों के लिये यह प्राणायामांक अधिक लाभप्रद होगा।

सूचना

सुधारक का द्वितीय वर्ष समाप्त होकर इस अङ्क से तृतीय वर्ष प्रारम्भ हो रहा है, जिन ग्राहकों का चन्दा समाप्त हो गया है। वे तृतीय वर्ष का चन्दा २) मनीआर्डर से शीघ्र भेजने की कृपा करें। विशेषाङ्क पर अपनी सम्मति अवश्य देने की कृपा करें।

व्यवस्थापक—'सुधारक'

'सुधारक' के तीन पिछले अङ्क

१–गो-अङ्क परिशिष्ट सहित–मूल्य ।।।)

इस अंक में गाय के घी दूध, दही, तक्र, गोमय, मूत्रादि के लाभ, उपयोग, चिकित्सा आदि पर प्रकाश डाला गया है और साथ-साथ गोपालन पर भी विशेष लेख इस अंक में दिये गये हैं।

२–व्यायाम विशेषाङ्क–मूल्य १)

सुधारक के इस विशेषांक में देशी-विदेशी सभी व्यायामों के सम्बन्ध में अत्युत्तम ढङ्ग से लिखा गया है। व्यायाम की आवश्यकता, महत्त्व, लाभ-हानि, विधि, मात्रा, काल, परिमाण, समय आदि सभी आवश्यक विषयों का इस अंक में समावेश है। साथ-साथ दण्ड बैठकादि के चित्र होने के कारण इसकी उपयोगिता और भी बढ़ गई है। जिस किसी ने इसको पढ़ा उसी ने मुक्त कण्ठ से प्रशंसा की है।

३–भोजन विशेषाङ्क–१)

भोजन के सम्बन्ध में आजकल बहुत कुप्रथायें प्रचलित हो गई हैं, लोग जीने के लिये नहीं खाते,

किन्तु खाने के लिये जी रहे हैं। इस अंक में सभी भ्रान्त धारणाओं का सप्रमाण खण्डन किया है। सात्विक, राजसिक, तामसिक भोजन, भोजन का स्थान, भोजन का समय, विधि, भक्ष्याभक्ष्य, भोजन की मात्रा, तथा भोज्य पदार्थों के गुण-दोष शास्त्र के आधार पर बतलाये गये हैं। साथ-साथ मांस अण्डा, मद्य, चाय, तम्बाकू आदि अभक्ष्य और हानिकारक पदार्थों की भली-भान्ति समीक्षा की गई है। अनेक विद्वान्, लेखक तथा समाचार पत्रों ने भूरि-भूरि प्रशंसा की है।

सभी अंकों की परिमित प्रतियां ही शेष हैं, जो सज्जन मंगवाना चाहें वे शीघ्र मंगवा लें, पुनः पश्चात्ताप न करना पड़े। तीनों अंक इकट्ठे मंगवाने पर डाकव्यय नहीं लिया जाता है किन्तु पहले धनादेश (मनीआर्डर) से लिखित मूल्य मिल जाना चाहिये।

हमारे कारखाने में यज्ञ तथा पूजा आदि का सर्व प्रकार का सामान तैयार किया जाता है।

निर्माता

सीताराम आर्य एण्ड संज़

१७६ लाजपतराय मार्केट, देहली।

आर्य आयुर्वेदिक रसायनशाला (रजि०) गुरुकुलझज्जर

की

विशेष औषधियाँ

नेत्रज्योति सुर्मा (अनुपम अंजन)

आंखों का दुखना, खुजली, लाली, फोला, जाला, ोतियाबिन्द, रोहे (कुक्करे) आदि सर्व नेत्र रोगों के ये लाभदायक है। प्रतिदिन प्रयोग करने के लिये बहुत च्छा सुर्मा है। मूल्य एक शीशी ॥) विशेष १)

विवरण अन्दर पढ़िये।

लगाइये और नेत्र ज्योति पाइये। इसके लगाने से आंखों के सब रोग—जैसे आंख दुखना, खुजली, लाली, जाला, फोला, रोहे, कुकरे, पास का कम दीखना (शोर्ट साइट) दूर का कम दीखना (लांग साइट) प्रारम्भिक मोतिया बिन्द आदि दूर हो जाते हैं। आंख के सब रोगों की रामबाण औषध है। यही नहीं किन्तु लगातार लगाने से दृष्टि (बीनाई) को तेज तथा आंखों को कमल की तरह साफ स्वच्छ रखता है। बुढ़ापे तक आंखों की रक्षा करता है। प्रतिदिन जिस ने भी लगाया उसी ने मुक्तकण्ठ से इस सुर्मे प्रशंसा की है।

सेवन विधि–पहले सलाई को शुद्ध जल से धोकर पोंछ लें। फिर सुर्मे में भर कर झाड़ कर लगाइये। प्रातः सायं लगाना चाहिये।

मूल्य ।।) शीशी

'नेत्रज्योति सुर्मे' पर लोकमत

I have used Netra Jyoti Surma. After a great search I have found a really good eye soother, I have put my whole family on it.

R. R. Kumaria Principal Govt, College Rohtak

१—(भावार्थ) मैंने नेत्र ज्योति सुर्मे का प्रयोग किया। बहुत बड़ी खोज के पीछे यथार्थ में एक बहुत श्रेष्ठ आँखों को शान्त करने वाली औषध प्राप्त हुई। मैंने अपने सारे परिवार के लिये यह (गुरुकुल झज्जर का सुर्मा) प्रयोग करने के लिये दे दिया है।

(आर. आर. कुमारिया प्रिंसिपल गवर्नमेंट कालेज, रोहतक)

२—ऐनक लगवाने पर भी पढ़ने-लिखने में विशेपता के कारण आँखों पर दवाव पड़ता था। इस लिये मैं कभी-कभी कोई नेत्रसुर्मा प्रयोग में लाता रहा, परन्तु विशेष लाभ प्रतीत नहीं होता था। गुरुकुल झज्जर के नेत्रज्योति सुर्मा के थोड़े समय के

प्रयोग ने ही मुझे पूर्ण लाभ पहुंचाया। अब आंखें थकती नहीं। मुझे पूरा सन्तोष है।

—जगदेवसिंह शास्त्री सिद्धान्ती संस्थापक सम्राट् देहली।

३—मेरी आंखों में लाली बनी रहती थीं। इस कारण आंखें भारी भारी रहती थी। मुझे इस लाली के कारण शीघ्र अन्धा होने का भय था। इसी भय से मैंने गुरुकुल-झज्जर का 'नेत्र-ज्योति सुर्मा' प्रयोग करना आरम्भ किया। जब मुझे तीन दिन सुर्मे का प्रयोग करते हो गए तो मेरे मन में विचार उठा कि ऐसा जो कहते हैं कि इस सुर्मे से ऐनक लगानी छूट जाती है देखूँ तो सही कि कुछ लाभ सुर्मे से हुआ भी है? मैं सन् ४० ई० से ऐनक बिना कुछ नहीं पढ़ सकता था। चौथे दिन जब मैंने पुस्तक उठाकर आंखों के सामने रखी तो मेरी प्रसन्नता का पार नहीं रहा। क्योंकि मेरी आंखों के सामने से पर्दा सा हटा प्रतीत हुआ। कुछ अक्षर (जो पहिले कुछ भी दीख न पड़ते थे) दिखाई देने लगे। इतना लाभ इस सुर्मे के केवल तीन दिन के प्रयोग से हुआ। मुझे सुर्मा लगाते आज २० दिन हो गए, मैं मोटे अक्षरों को बिना ऐनक अच्छी प्रकार पढ़ लेता हूँ। मुझे पूर्ण आशा है कि मेरी ऐनक छूट जायेगी।

—भरतसिंह रोहणा (रोहतक)

४—मैंने आर्य आयुर्वेदिक रसायनशाला गुरुकुल झज्जर (रोहतक) द्वारा निर्मित नेत्रज्योति सुर्मा (विशेष) का प्रयोग अपने गांव के कई बच्चों पर किया। जिनकी आंखों में लगभग दो वर्ष से फोला था। दूसरे दिन ही फोला कटना आरम्भ हो गया। ७वें दिन फोला समूल नष्ट हो गया। इस आश्चर्यजनक लाभ को देखकर मैं तथा गांव के सभी लोग विस्मित रह गए। अब मेरे पास जो फोले के रोगी आते हैं, मैं इसी सुर्मे से उनके फोले की

चिकित्सा करता हूँ। इस सुर्मे का प्रत्येक चिकित्सक को अपनी चिकित्सा में प्रयोग करना चाहिए। ऐसी औषधियों से चिकित्सक यश, धन तथा पुण्य प्राप्त कर सकते हैं।

—इन्द्रसिंह आयुर्वेदभिषक्
सुण्डाना (रोहतक)

५—सुर्मे तो पर्याप्त मात्रा में मिल जाते हैं। परन्तु इतना लाभप्रद और सस्ता सुर्मा बाजार में मिलना कठिन ही नहीं असम्भव है। स्वयं मेरी माता जी ने इस सुर्मे का प्रयोग किया और अत्यन्त लाभप्रद पाया। नेत्रों के लिए एक अच्छा और सस्ता सुर्मा है।

—रघुवीर सिंह बी० ए०, बी० टी०
'मुख्याध्यापक' मि० स्कूल बख्तावरपुर (देहली)

६—मैंने एक दर्जन नेत्रज्योति सुर्मा 'आर्य आयुर्वेदिक रसायनशाला गुरुकुल झज्जर का प्रयोग अनेक रोगियों पर किया। सुर्मा बहुत ही अच्छा है। दुखती आंखों पर जादू का काम करता है।

—बनवारी लाल (कासनी)

७—मेरी आंखों में आपके सुर्मे ने बहुत लाभ पहुँचाया। सचमुच यह सुर्मा नेत्रज्योतिप्रद है।

—मा० रामस्वरूप कुण्डल

८—बहुत दिनों से मेरी आंख खराब हो गयी थी। मैंने अपने पुत्र के कहने से नेत्रज्योति सुर्मे का प्रयोग किया मेरी आंखों के सब रोग नष्ट होकर नेत्रज्योति बढ़ गई। इसके लिये मैं आचार्य जी का आजीवन ऋणी हूँ।

—रामचन्द्र गोयल
नोटैरी पब्लिक, देहली

९—"नेत्र ज्योति सुर्मा" का प्रयोग मैंने किया और मेरा अनुभव है कि यदि "नेत्र ज्योति सुर्मा" का प्रयोग लगातार किया जावे तो अधिकांश नेत्र रोगों से मुक्ति प्राप्त हो सकती है।

—फतहचन्द अध्यापक
टी० आई० टी० हाईस्कूल भिवानी

१०—मेरे चचा रामनाथ की आयु ५२ वर्ष की है। वे गत ३० वर्षों से रेलवे में गार्ड हैं। रेलवे नियम के अनुसार मार्च सन् १९५४ में जब उनकी आँखों की डाक्टरी हुयी तो वे उस में अनुत्तीर्ण हो गये। तत्पश्चात् उन्होंने गुरुकुल झज्जर में बने हुये नेत्र ज्योति सुर्मा विशेष का प्रयोग किया। केवल २० दिन के प्रयोग से ही वे जहाँ कहीं भी डाक्टरी में गये वहीं भली भान्ति उत्तीर्ण हुये। अब वे विना उपनेत्र पुस्तक पढ़ सकते हैं और कहते हैं कि इस सुर्मे ने मेरी आँखों पर जादू जैसा प्रभाव किया है।

तत्पश्चात् मेरी चची ने भी जिनकी आँखों से कम दिखाई देता था एक शीशी नेत्र ज्योति सुर्मा विशेष का प्रयोग किया। उसका प्रभाव यह हुआ कि आज मेरी चची सूई में धागा भी स्वयं डाल लेती है। अतः मेरी सम्मति में इस सुर्मे से बढ़ कर अन्य कोई सुर्मा लाभदायक नहीं है।

—मा० दरयावसिंह ढाकला

११—"मेरी माता जी की आँखें पर्याप्त समय से खराब रहती थीं, आँखों में पानी आता था, लाली रहती थी और थोड़ी दूर तक भी दिखाई नहीं पड़ता था। मैंने गुरुकुल झज्जर के 'नेत्र ज्योति' सुर्मे का प्रयोग अपनी माता जी की आँखों पर किया, इस से आँखों की लाली और पानी आना समाप्त हो

गया और पर्याप्त दूर तक दिखाई देने लगा है। नेत्र ज्योति सुर्मा आँखों की रामबाण औषध पाई है।"

मा० दलीपसिंह लूलोढ (रोहतक)

अपनी बात (सुर्मा निर्माण विधि के विषय में)

हमारी रशायनशाला का 'नेत्र ज्योति सुर्मा' सभी सुर्मों से उत्तम तथा सस्ता है। हमने इस सुर्मे को अनेक जड़ी बूटियों के स्वरस की भावना देकर घोर परिश्रम से तैयार किया है, इसी लिये इतना उत्तम बन सका है। जो भी व्यक्ति इस का एक बार प्रयोग कर लेता है वह इस की मुक्त कण्ठ से प्रशंसा करता है। इस सुर्मे से अनेक स्त्री पुरुषों ने नेत्र ज्योति प्राप्त की है, वास्तव में यह यथा नाम तथा गुण अर्थात् नेत्र ज्योति-प्रद ही है।

हम इसके बनाने में कितना घोर परिश्रम करते हैं, यह निम्न लिखित संक्षिप्त निर्माण विधि से पाठक स्वयं जान सकते हैं, देखिये—

सर्वप्रथम ४० दिन तक नीलाञ्जन (काले सुर्मा) को सिरस में रखते हैं फिर ७ भावना निम्बू के रस की दी जाती है, तत्पश्चात् ७ भावना त्रिफले के क्वाथ की देते हैं, ७ भावना पुनर्नवा के रस की, ७ भावना अधोपुष्पी के स्वरस की, ७ भावना स्वर्णक्षीरी के स्वरस की, ७ भावना नीम के स्वरस की, ७ भावना रसोंत की, ७ भावना पोदीने के रस की, ७ भावना भृङ्गराज के स्वरस की, ७ भावना गुलाब के फूलों के रस की, ७ भावना कमल के फूलों के रस की, ७ भावना अनार के बीजों के क्वाथ की, ७ भावना गोदुग्ध की इत्यादि अनेक जड़ी बूटियों के स्वरस की भावनायें दी जाती हैं।

पुनः ४० दिन तक इन्द्रायण के फल में हल्दी को रखकर इस सुर्मे में डालते हैं, 'अनुपम अञ्जन' चन्द्रोदयवर्त्ती आदि आयुर्वेदिक औषधियाँ मात्रानुसार डालते हैं तथा प्रवालादि भस्में, बोरिकएसिड, जिन्कओकसाइड, कपूर, सतपोदीना (पीपरमेण्ट) आदि विविध औषधियाँ मिलाकर एक वर्ष से भी अधिक समय के कठोर परिश्रम के उपरान्त यह अमूल्य रत्न 'नेत्र ज्योति सुर्मा' तैयार किया जाता है और केवल आठ आने मात्र में नेत्र सम्बन्धी सभी रोगों की अचूक औषध आप की भेंट कर दी जाती है। इसे लगाइये और नेत्रज्योति सुर्मा पाकर आनन्द मनाइये।

त्रिफलादि घृत

यह घृत आंखों के लिये अत्युत्तम है। इसकी जितनी प्रशंसा करें थोड़ी है, यह आँखों के समस्त रोगों के लिये रामबाण है। इसके सेवन से नेत्रों का कोई भी रोग नहीं रहता। इससे रतौंधी, आँखों की खुजली, पानी जाना, धुंध-जाला इत्यादि सब दूर होते हैं, आंखें निर्मल होकर चमकने लगती है। सौ वर्ष तक नेत्र ज्योति नवयुवकों के समान बनी रहती है। मोतियाबिंद को भी लाभदायक है। आंखों के छोटे बड़े सब रोगों को हितकारी है।

मूल्य आधपाव ४) एक सेर ३२)

सेवनविधि:—६ माशे से १ तोले तक गाय के दूध में डालकर भोजन के साथ प्रातः सायं सेवन करें।

सम्मति

त्रिफलादि घृत और नेत्र ज्योति सुर्मा

एक रोगी जिसकी आँखें लाल रहती थीं, पानी बहता था, पीड़ा के साथ-साथ दृष्टि भी न्यून हो गई थी। मैंने उसे एक

मास तक प्रातः सायं त्रिफलादि घृत गोदुग्ध के साथ सेवन कराया तथा दोनों समय नेत्र ज्योति सुर्मा आँखों में डाला। इससे उसकी आंखें सर्वथा रोगरहित व ठीक हो गईं।

मैं अपने अनुभव के आधार पर कह सकता हूँ कि नेत्र ज्योति सुर्मा और त्रिफलादि घृत रसायनशाला गुरुकुल झज्जर के जितने गुणकारी सिद्ध हुए हैं उतने किसी अन्य फार्मेसी के नहीं। इन से आश्चर्यजनक लाभ होता है।

वैद्य सोमवीर आर्य आयुर्वेदाचार्य M.A.M.S.

उत्तम रसायन

च्यवनप्राश

इसी ऋतु के ताजे आंवले से तैयार किया गया स्वादिष्ठ, सुमधुर और एक दिव्य रसायन (टानिक) है। जिस का सेवन प्रत्येक ऋतु में स्त्री, पुरुष, बालक व बूढ़े सब के लिये अत्यन्त लाभदायक है। पुरानी खांसी, जुकाम, नजला, गले का बैठना, दमा, तपेदिक, सभी हृदय रोगों की अद्वितीय औषध है। स्वप्नदोष, प्रमेह, धातुक्षीणता तथा अन्य सब प्रकार की निर्बलता और बुढ़ापे को इसका (निरन्तर) सेवन समूल नष्ट करता है। यह निर्बल को बलवान और बूढ़े को जवान बनाने की अद्वितीय औषध है।

मूल्य २) पाव, ७) सेर, ५ सेर लेने पर ६) सेर

सेवनविधि—प्रातः सायं १ तोला गाय या बकरी के दूध के साथ सेवन करें।

सम्मतियां

१—"बलदामृत" ने मेरे अन्दर जवानी ला दई, साथ-साथ 'च्यवनप्राश' का भी प्रयोग किया, इन दोनों के सेवन से मेरे अन्दर वह स्फूर्त्ति आई है जो कभी २० वर्ष की आयु में थी,

आज मेरी आयु ५२ वर्ष की है परन्तु आपकी 'बलदा' और 'च्यवनप्राश' के द्वारा मेरे अन्दर बचपन की लहर दौड़ रही है। च्यवनप्राश तो वही है जो च्यवन ऋषि ने खाया था। जितनी प्रशंसा की जाये थोड़ी है। यदि इन औषधियों के होते हुए भी कोई वृद्ध हो तो ना समझी है।"

—पृथ्वीसिंह 'बेधड़क' आर्योपदेशक

२—"हमारे गांव में एक दमे का रोगी था, उसने अनेक स्थानों से च्यवन प्राश मंगवा कर सेवन किया, किन्तु कुछ लाभ न हुआ, अत एव उसको भ्रान्ति हो गई कि च्यवनप्राश से दमे में कोई लाभ नहीं होता। हमारे मित्र ने 'गुरुकुल झज्जर' के च्यवन प्राश की प्रशंसा की, किन्तु उसे विश्वास न हुआ और कहा कि मैंने सैकड़ों च्यवनप्राश खाये हैं, कोई लाभ नहीं होता। किन्तु उस मित्र के विश्वास दिलाने पर परीक्षणार्थ आध पाव च्यवनप्राश लिया, जिससे उसको आश्चर्यजनक लाभ प्रतीत हुआ और उसने निरन्तर 'गुरुकुल'-झज्जर रसायनशाला के च्यवनप्राश का सेवन किया। ईश्वर की दया से वही मिस्त्री जो श्वास के रोगों से निराश था, दो कदम चलने पर हाँप जाता था, वही आज फर्मों के कूएं बनाकर ३५) प्रतिदिन कमाता है।" —बलवीरसिंह

सर्वोत्तम रसायन (टानिक), सुमधुर पेय

❀ बलदामृत ❀

इसकी जितनी प्रशंसा की जाय थोड़ी है। हृदय और उदर के रोगों में रामबाण है, इसके निरन्तर प्रयोग से फेफड़ों की निर्बलता दूर होकर पुनः बल आ जाता है। पीनस (सदा रहने वाले जुकाम और नजला) की महौषधि है। वीर्यवर्द्धक, कास (खांसी) नाशक, राजयक्ष्मा (तपेदिक), श्वास (दमा) के लिये

लाभकारी है। रोग के कारण आयी निर्बलता को दूर करती तथा अत्यन्त रक्तवर्धक है। निर्बलों को बलिष्ठ व हृष्ट-पुष्ट बनाती है। यह अपने ढङ्ग की एक औषधि है।

छोटी शीशी २)—बड़ी शीशी ५)

कुछ महानुभावों की सम्मतियाँ

१—"आर्य आयुर्वेदिक फार्मेसी" गुरुकुल झज्जर (रोहतक) की रसायनशाला में निर्मित 'बलदामृत' का सेवन किया। वास्तव में मन्दाग्नि एवं मस्तिष्क की निर्बलता निवारण करने में अनुपम रामबाण सम अमृत औषधि है। मेरे रोग को दो ही दिनों में नष्ट कर मुझे शक्ति-सम्पन्न बनाया और प्रतिदिन मेरी क्षुधा प्रदीप्त होने लगी। मैं मस्तिष्क का कार्य दिन भर करने पर भी नहीं थकता हूं। यहीं रह कर मैंने २५ दिन में ३०३ श्लोक ब्रह्मर्षि विरजानन्द-चरित के निर्माण किये। अनेक रोगों पर (जो विज्ञापन में वर्णित हैं) सचमुच अतुल लाभकर बलप्रद औषध रसायन है। 'हाथकंगन को आरसी क्या ?'

—कविरत्न पं० मेधाव्रताचार्य पो० पेवला (नासिक)
'दयानन्द दिग्विजय' महाकाव्यकार

२-बलदामृत का तो कहना ही क्या ? इसने तो 'औषध मीठी होते हुए लाभप्रद होनी कठिन है' इस उक्ति को भी बिल्कुल झूठ सिद्ध कर दिया है। यह जितनी मीठी है उतनी ही गुणकारक भी है। पुराने नजले और जुकाम, खांसी, फेफड़ों की कमजोरी के लिये बहुत अच्छी सिद्ध हुई है। हमारे एक मिस्त्री जी का पुराना जुकाम (पीनस) समाप्त हो गया। खून तो यह पर्याप्त मात्रा में बढ़ाती है। —बलवीरसिंह (मद्रास)

३—अनुमान तीस वर्ष से मैं उत्तरभारत के सब भागों—विशेषतया ग्रामीण जनता में वैदिकधर्म के प्रचारार्थ भ्रमण

करता रहा हूं। प्रचार कार्य में अनियमितता होने से स्वास्थ्य में हानि पहुँचना अवश्यंभावी है। इस कारण मैं प्रायः च्यवनप्राश आदि औषधियों का प्रयोग करता रहा। गुरुकुल झज्जर की रसायन शाला का विज्ञापन मैंने "सम्राट्" साप्ताहिक में पढ़ा। "बलदामृत" सेवन करने की इच्छा हुई। मुझे यह कहने में अतीव प्रसन्नता है कि बलदामृत के थोड़े सेवन से ही मेरे स्वास्थ्य में अपूर्व लाभ हुआ। नजला और जुकाम आदि शिकायतों से पिण्ड छुट गया। मैं अब भी बलदामृत का सेवन करता हूँ। यह औषधि मुझे बड़ी गुणकारी सिद्ध हुई है।

—पृथ्वीसिंह बेधड़क कविरत्न-आर्योपदेशक

४—आपकी आर्य आयुर्वेदिक रसायनशाला द्वारा निर्मित 'बलदामृत' का सेवन गुरुकुल झज्जर में रहते हुये किया था। जिसके द्वारा शरीर में रक्त की वृद्धि हुई तथा शरीर में बल और स्फूर्ति का अनुभव हुआ। औषधि सचमुच बहुत उत्तम है तथा निर्बलों को बल देने वाली है।

—देवराज विद्यावाचस्पति

५—बलदामृत की जितनी प्रशंसा की जाये थोड़ी है। जैसा नाम वैसा काम। बलदा तो बलदा ही है। शक्ति का पुजारी कौन इसको न चाहेगा। खांसी, जुकाम, नजला, अपचन को शीघ्र दूर करने वाली शक्तिवर्द्धक औषध बालक, युवा, वृद्ध, सबके लिये लाभकारी है। इसका जितना प्रचार हो अच्छा है।

—विश्वप्रिय शास्त्री बिजनौर

६—मैंने आर्य आयुर्वेदिक रसायनशाला गुरुकुल झज्जर (रोहतक) द्वारा निर्मित 'बलदामृत' का तीन मास तक निरन्तर सेवन किया। मैं पर्याप्त निर्बल हो चुका था। परन्तु इस औषधि

से मुझे बहुत स्पष्ट लाभ हुआ।

—रवीन्द्रनाथ शास्त्री, अहीर हाईस्कूल-रेवाड़ी

७—ब्रलदामृत का तो कहना ही क्या यह तो जितनी मीठी है उतनी ही गुणकारक भी है। पुराणे नजले, जुकाम, खांसी आदि के लिये तो बहुत ही अच्छी है। मैंने इसको अनेक रोगियों पर आजमाया। सबको अद्‌भुत लाभ हुआ। खून को तो यह पर्याप्त मात्रा में बढ़ाती ही है।

—बलवीरसिंह (मद्रास)

ज्वरामृत

यह नये व पुराने सभी प्रकार के ज्वरों की रामबाण औषध है। विगड़े हुये मलेरिया, विषमज्वर को दूर करने में अद्वितीय औषध है। कुनेन भी इसके आगे तुच्छ औषध है। कुनेन का सेवन सिर दर्द, स्वप्नदोष, प्रमेह आदि अनेक रोगों को उत्पन्न करता है, किन्तु यह औषध सब दोषों को दूर करती है तथा ज्वर की प्रत्येक अवस्था में दी जा सकती है। मलेरिया काल में सेवन की हुई मलेरिया को नहीं आने देती। अधिक प्रशंसा व्यर्थ है, सेवन करें और लाभ उठावें। —मू० बड़ी शीशी ५) छोटी शीशी २)

सेवन विधि—१ तोले से २ तोले तक समान जल मिलाकर रोगी को सेवन करायें। चढ़े हुए ज्वर में उष्ण जल के साथ सेवन करवाना चाहिये।

'ज्वरामृत' पर कुछ सम्मतियाँ

१—"गुरुकुल झज्जर द्वारा निर्मित 'ज्वारामृत प्रत्येक प्रकार के ज्वर के लिये रामबाण सिद्ध हुई है। पाँच दश दिन के ज्वर को तो इसकी केवल दो तीन खुराक ही ठीक कर देती हैं।"

—ब्रलवीरसिंह कासनी (रोहतक)

२—"मैंने अपने घर में अपनी नानी, माताजी और अन्य कई रोगियों को आपकी ज्वरामृत का सेवन कराया। केवल एक वार देते ही बुखार दूर भाग जाता है। 'ज्वरामृत' ज्वर की बहुत अच्छी औषधि है, हमने छोटे बच्चों पर भी इसका अनुभव किया है।"

—म० जगराम मातनहेल (रोहतक)

३—"आपकी ज्वरामृत का मैंने अपनी पुत्री पर प्रयोग किया, पहली ही खुराक में कहने लगी; कि पिताजी आज ज्वर नहीं होगा-ऐसा मालूम होता है। वास्तव में ज्वर नहीं हुआ।

—मा० धर्मसिंह झिंझोली, (रोहतक)

४—" 'ज्वरामृत' नाम की औषधि इतनी अच्छी और अनुपम है कि किसी प्रकार का कैसा ही ज्वर क्यों न हो इसके सेवन से ठहर नहीं सकता। इसका प्रथम कार्य यकृत् को ठीक करना है, दूसरा-अजीर्ण (कब्ज) को दूर करना और तीसरा ज्वर के कीटाणुओं को मारना है। यह मेरा अनुभव है। मैंने अनेक विद्यार्थियों पर भी इसका अनुभव किया है।"

—ईशानन्द सरस्वती

५—"मैंने गुरुकुल झज्जर फार्मेसी द्वारा निर्मित "ज्वरामृत" का अनेक छोटे बालकों पर प्रयोग किया, इसकी एक दो मात्रा से से ही ज्वर दूर भाग जाता है।"

—हरकेराम बी० ए०, ठींठ (रोहतक)

६—"मैंने 'ज्वरामृत' का प्रयोग स्वयं अपने दो भाइयों और गांव के अनेक रोगियों पर किया, जिनपर भी इस औषधि का प्रयोग किया उन्हीं पर इसने जादू का सा प्रभाव किया। 'ज्वरामृत' ज्वर को तुन्तर शान्त करके रोगी को भला चङ्गा बना देती है।" —मा० दलीपसिंह लूलोढ (रोहतक)

७—"ज्वर से पीड़ित अनेक रोगियों पर मैंने 'ज्वरामृत' का प्रयोग किया और इसने तुरन्त अपना असर किया। डाक्टरों के इस दावे कि-"मलेरिया केवल कुनेन आदि से ही ठीक हो सकता है आयुर्वेद में ऐसी कोई औषधि नहीं है" को झूठा कर दिया है। डाक्टरों की कुनेन तो एक मलेरिया को दूर कर उसके स्थान पर अन्य अनेक रोग रोगी को दे देती है, परन्तु "ज्वरामृत ज्वर पीड़ितों के लिये अमृत है।"

—रघुवीरसिंह बी० ए, बी० टी०
मुख्याध्यापक मि० स्कूल बख्तावरपुर (देहली)

पाचनामृत

मन्दाग्नि, अरुचि, अजीर्ण (कब्ज), पेट का फूलना, पेट का भारीपन, शूल, जी मिचलाना, वमन, खट्टी डकार आदि पेट के सभी रोगों को नष्ट कर भूख को बढ़ाता है। आंतों के सब रोगों को दूर कर पाचन शक्ति को बल देता है। पुराने से पुराने तिल्ली जिगर की अचूक औषधि है।

मूल्य एक शीशी ४)

सेवनविधि—१ तोले से २ तोले तक प्रातः सायं भोजन के आध घण्टे पीछे समान जल मिलाकर सेवन करें।

'पाचनामृत' पर सम्मतियाँ

१—"पाचनामृत का प्रयोग मैंने कई बार पेट के रोगियों को करवाया और कई कई वर्ष के पुराने पेट के रोगियों को एक ही शीशी से आश्चर्यजनक लाभ हुआ। मेरे भाई की स्त्री को एक ही शीशी के प्रयोग ने पेट रोग से सर्वथा मुक्त कर दिया। मैं तो इस औषध को जादू की चुटकी समझता हूँ।

—मा० रघुवीरसिंह बी० ए, बी० टी० छारा (रोहतक)

२—पेट के रोगों में पाचनामृत अक्सीर से भी बढ़कर है। अनेक रोगियों पर हमने इसका अनुभव किया। सबको आश्चर्य-जनक लाभ हुआ। तिल्ली के लिये यह अत्युत्तम सिद्ध हुई है।

—बलवीरसिंह (मद्रास)

स्वप्नदोषामृत चूर्ण

इस भयङ्कर रोग के कारण प्रायः सभी युवक और विद्यार्थी हताश और निराश दिखाई देते हैं। यह औषध इस रोग के दूर करने में बहुत लाभदायक सिद्ध हुई है। यह प्रमेह अर्थात् मूत्र में आगे-पीछे या बीच में वीर्य के आने को बन्द कर देती है।

—मू० २) एक मास

सेवनविधि—६ माशे प्रातः-सायं दूध या पानी के साथ

स्वप्नदोषामृत्त रस

इस भयङ्कर रोग के कारण प्रायः सभी युवक और विद्यार्थी हताश और निराश दिखाई देते है। यह औषध इस रोग के दूर करने में बहुत लाभदायक सिद्ध हुई है। यह प्रमेह अर्थात् मूत्र में आगे पीछे या बीच में वीर्य के आने को बन्द कर देती है।

—मूल्य ५) रुपये

सेवनविधि---प्रातः सायं एक-एक गोली गोदुग्ध या शीतल जल के साथ विशेष---यदि स्वप्नदोष का रोगी अत्यन्त दुवल हो तो दूध के साथ और हृष्ट-पुष्ट हो तो जल के साथ सेवन करें ब्रह्मचारी को जल के साथ सेवन करना चाहिए।

स्वप्नदोषामृत पर अनुभव

१—मैंने आपके गुरुकुल का बना हुआ स्वप्नदोषामृत चूर्ण का प्रयोग किया, जिससे मुझे अत्यधिक लाभ हुआ। आजकल के बहुत से नवयुवक इस रोग से पीडित हैं। यदि वे इस चूर्ण का

प्रयोग करें तो इस विनाशकारी रोग से मुक्त हो सकते हैं।

—देवसीराम सब इन्स्पैक्टर कृषिविभाग
मुन्नावाली (हिसार)

२–मैंने इसका ऐसे ऐसे रोगियों पर जो–निराश तथा यह समझ बैठे थे कि स्वप्नदोष स्वाभाविक है आजमाया। औषध सेवन करने से दो सप्ताह में ही स्वप्नदोष होना बन्द हो गया। एक रोगी की तो दशा यहां तक बिगड़ी हुई थी कि रात्रि में २,३ बार स्वप्नदोष हो जाता था वह केयल १५ दिन औषध सेवन से रोग से मुक्त हो गया। औषध ने विचित्र प्रभाव दिखलाया। मैं अपने अनुभव के आधार पर कह सकता हूं कि इससे बढ़कर स्वप्नदोष की अचूक औषध नहीं है।

—सोमवीर आयुर्वेदाचार्य M.A.M.S रिटौली (रोहतक)

३—"स्वप्नदोषामृत" स्वप्नदोष को दूर करने के लिये अत्यन्त हितकर सिद्ध हुई है, मैंने बहुत से रोगियों को इसका सेवन करवाया है, सभी ने मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की है। यह औषध बनाकर आपने सचमुच नवयुवक तथा विद्यार्थिगण पर विशेष उपकार किया है, क्योंकि आजकल पिचानवें प्रतिशत नवयुवक स्वप्नदोष से पीड़ित हैं।" —बलबीरसिंह (मद्रास)

व्रणामृत

भयङ्कर फोड़े, फुन्सी, गले-सड़े पुराने जख्मों तथा अनेक वर्षों के नासूर [सरह] आदि रोगों की अद्वितीय औषध है। दिनों का काम घण्टों व घण्टों का मिनटों में करती है। मू० एक शीशी १)

प्रयोग विधि—फोड़े या घाव को नीम के जल से सेक और धोकर इस मरहम को कपड़े पर लगाकर व्रण (घाव) या फोड़े पर चिपकादें, फोड़े को पकाने के लिये शुष्क सैंधे नमक की पोटली से सेक करें।

'व्रणामृत' पर सम्मति

'व्रणामृत' की जितनी प्रशंसा की जाये थोड़ी है। फोड़े-फुन्सी तथा वर्षों के नासूर को भी हमने इसके द्वारा ठीक किया है।''

– बलवीरसिंह कासनी

—अर्शरोगामृत—

यह औषधि सब प्रकार के अर्श (बवासीर) के लिये रामवाण का काम करती है। हमारी रसायनशाला में इसे तैयार करने के लिये कई मास तक भरसक प्रयत्न किया गया है। इसकी तीन चार मात्रा के सेवन मात्र ही से खून का आना तो तुरन्त बन्द हो जाता है। यह औषधि जादू के समान तुरन्त प्रभाव दिखाती है। प्राचीन आयुर्वेद का इसे चमत्कार कहना चाहिये। संसार में इससे बढ़कर अर्श के लिये कोई औषधि नहीं।

सेवन विधि—एक से दो गोली तक प्रातः सायं धारोष्ण दूध के साथ सेवन करें यदि कोष्टबद्धता (कब्ज) के कारण मल त्यागते समय रक्त आता है तो गोली लेते समय एक तोले से दो तोले तक इसबगोल के साथ मिला कर सेवन करें।

मूल्य एक मास के लिये १०) दस रु०

सम्मतियाँ—

१—आजकल अर्श रोग वहुत बढा हुआ है। लोग ओप्रेशन करवाते और इन्जेक्शन लगवाते हैं। फिर भी निराश देखे गये हैं। मैंने अर्श रोगामृत को कई निराश रोगियों पर आजमाया। उन्हें पूर्ण लाभ हुआ। यह जानकर मुझे आश्चर्य हुआ और आयुर्वेदशास्त्र के चमत्कार का प्रत्यक्ष परीक्षण देखकर अत्यधिक प्रसन्नता हुई। वास्तव में अर्शरोगामृत अर्श के लिये अचूक औषध है। – सोमवीर आयुर्वेदाचार्य M. A. M. S

२—"मैंने अपने रोगियों पर 'सूखिया रोगामृत' अर्शरोगामृत तथा 'प्रसूतामृत' का उपयोग बहुत बार किया है, उससे सभी रोगियों को आश्चर्यजनक लाभ हुआ है। इससे मुझे 'गुरुकुल झज्जर फार्मेसी' की औषधियों पर बहुत भरोसा हो गया है तथा मैंने स्वयं गुरुकुल में जाकर औषध-निर्माण कार्य को भी देखा, उसको देखकर तो महान् आश्चर्य हुआ, क्योंकि सभी औषधियाँ शास्त्रोक्त विधि के अनुसार अनुभवी कार्यकर्ताओं की निगरानी में ब ाई जाती हैं"

—डा० महेन्द्रप्रताप आयुर्वेदालङ्कार, S. M. S. M. O
इञ्चार्ज सुण्डाना डिस्पेन्सरी (रोहतक)

सञ्जीवनी तैल

मूर्च्छित लक्ष्मण को चेतना देने वाली इतिहास प्रसिद्ध बूटी से तैयार किया गया यह तैल घावों के भरने में जादू का काम करता है। भयङ्कर फोड़े-फुन्सी, गले सड़े जख्मों तथा आग से जले जख्मों की अचूक दवा है। कोई दर्द या जलन किये बिना थोड़े समय में सभी प्रकार के घावों को भरकर ठीक कर देता है। खून का बहना तो तुरन्त ही बन्द हो जाता है। चोट की भयङ्कर पीड़ा को तुरन्त शान्त कर देता है। दिनों का काम घण्टों में और घण्टों का मिनटों में पूरा कर देता है। मूल्य ५)

सेवन विधि—फाये में भरकर बार-बार चोट आदि पर लगायें।

विशेष वक्तव्य—

सञ्जीवनी तैल जादूभरी चमत्कार-पूर्ण औषधी है, ऊपर विज्ञापन में लिखे सभी रोगों की शतशः और सहस्रशः परीक्षित अचूक औषधी है। बहते हुये रक्त को तत्काल बन्द कर देना और कटे फटे-टूटे हुये घाव की चीस को तुरन्त शान्त कर देना इसका

विशेष गुण है, रोता चिल्लाता हुआ रोगी सञ्जीवनी तैल लगाते लगाते हमारे समक्ष ही हंसने लगता है और इसके गुण गाता नहीं थकता । हमारे यहाँ देहात में यह 'फाली वाला तैल' के नाम से प्रसिद्ध है, जब कभी हल चलाते समय बैल के पांव में फाली (हलकी कुश) लगकर घाव हो जाता है तो कृषक लोग इस तैल की पट्टी बैल के पांव पर बांध देते हैं और एक या दो बार लगाने से घाव ठीक हो जाता है।

कासनी (जि० रोहतक) की घटना है। एक हरिजन के अण्ड-कोषों को बैल ने सीङ्ग से फाड़ डाला एक ओर की गोली तो सर्वथा बाहर निकल आई थी। वह व्यक्ति बेहोश पड़ा हुआ था, लोगों ने उसे खाट में डाला और घर ले आये, उसके जीने की किसी को भी आशा न रही थी। किन्तु आपको सुनकर आश्चर्य होगा कि सञ्जीवनी तैल की पिट्टयाँ बांधने से उस व्यक्ति का घाव केवल १० ही दिन में बिल्कुल ठीक हो गया।

इसी प्रकार उसी ग्राम का एक मनुष्य अतिशीघ्र चलती हुई गाड़ी पर से चढ़ते समय गिर गया और उसके पैरके ऊपर से पहिया उतर गया। सञ्जीवनी तैल की उसके पैर पर मालिश की तथा अग्नि से पैर सेका भी। इस प्रकार करने से केवल तीन ही दिन में उसको पूरा आराम हो गया।

इसी प्रकार इसी ग्राम के एक मनुष्य की चारा काटते समय गण्डासे में हाथ आजाने से एक अंगुलि लगभग सर्वथा अलग हो गई थी, थोड़ी सी हड्डी ही शेष रह गई थी । केवल चार दिन के सञ्जीवनी तैल के प्रयोग से ही उसकी अंगुली जुड़कर पूर्ववत् हो गई।

अभी इसी अगस्त मास में सिलानी ग्राम की एक महिला का हाथ बैलों वाले गण्डासें में आकर कट गया। उसकी दो अंगुलियां तो आधी कटी हुई थीं तथा एक अंगुली सर्वथा कट

गई थी, केवल थोड़ी सी त्वचा शेष रह गई थी। सायंकाल ७ बजे वह करुणा क्रन्दन करती हुयी गुरुकुल में आई। उसके हाथ से पर्याप्त रक्त निकल चुका था और हाथ में अत्यधिक पीड़ा थी। इसी कारण से वह बहुत घबराई हुयी थी। उसी समय उसके हाथ पर सञ्जीवनी तैल की पट्टी बांधी गई। उसकी पीड़ा तत्काल शान्त हो गई और वह प्रसन्नता पूर्वक अपने घर को लौट गई तथा कुछ ही दिनों में उसका हाथ भी ठीक हो गया।

संजीवनी तैल पर सम्मतियाँ

१—"आर्य आयुर्वेदिक रसायनशाला गुरुकुल झज्जर द्वारा निर्मित "सञ्जीवनी तैल" की जितनी प्रशंसा की जाये थोड़ी है। यह तैल प्रत्येक प्रकार के व्रण, घाव, चोट, फोड़े, सूजनादि पर लगाने से अद्भुत प्रभाव दिखलाता है। प्रत्येक व्यक्ति घर में इस तैल को रखकर लाभ उठाये, ऐसी हम आशा करते हैं।"

(मुनि देवराज विद्यावाचस्पति, बरेली)

२—"सञ्जीवनी तैल तो वास्तव में ही 'सञ्जीवन' अर्थात् जीवन प्रदान करने वाला है, यह आदमी को मौत के मुख से बचाने की शक्ति रखता है। मैंने इस का पर्याप्त अनुभव किया है।"

—बलवीरसिंह

दन्त रक्षक मंजन

दांतों से खून वा पीप का का आना, दांतों का हिलना, दांतों के कृमि रोग, सब प्रकार की दांतों की पीड़ा तथा रोगों को दूर भगाता है और दांतों को मोतियों के समान चमकाता है।

मू० १ शीशी ।।)

इसे अनेक रोगियों पर मैंने अनुभव किया है। दांतों के सभी रोगों पर हमारा मञ्जन लाभप्रद है जो भी इसका प्रयोग करता मुक्त कण्ठ से प्रशंसा करता है। दैनिक प्रयोग के लिये अत्यन्तोपयोगी है।

--भगवान्देव

दन्त रक्षक तैल

दांतों से खून वा पीप आना, दांत का हिलना, दांतों के कृमि रोग, दांतों की सब प्रकार की पीड़ा तथा रोगों को दूर भगाता है और दांतों को मोतियों के समान चमकाता है। दातुन के समान इसका प्रतिदिन प्रयोग करना चाहिए। मू० एक शीशी ॥)

सम्मति

"यह मञ्जन दन्तरोगों के लिये अक्सीर है। दांतों की पीड़ा, दांतों का हिलना, दांतों से लहू पीप आदि आना इत्यादि सभी दन्त रोगों में अत्यन्त लाभप्रद सिद्ध हुआ है।"

बलवीरसिंह (कासनी)

ग्राहक तथा एजेण्टों से

इस लघु सूची में १ नेत्रज्योति सुर्मा, २ त्रिफलादि घृत, ३ च्यवनप्राश, ४ बलदामृत, ५ ज्वरामृत, ६ पाचनामृत, ७ स्वप्नदोषामृत रस तथा चूर्ण, ८ व्रणामृत, ९ अर्शरोगामृत, १० सञ्जीवनी तैल, ११ दन्तरक्षक मञ्जन, १२ दन्तरक्षक तेल केवल इन १२ औषधियों के विषय में लिखा गया है। इनके अतिरिक्त हमारी रसायनशाला द्वारा निर्मित सब प्रकार के घृत, तैल, चूर्ण, रस, आसव, अरिष्ट, भस्म, पाक, अवलेह आदि का सेवन कर रोगों से मुक्ति तथा शक्ति प्राप्त कर।

विशेष विवरण के लिये हमारी रसायनशाला का वृहत्सूचीपत्र मुफ्त मंगवाइये,

प्रत्येक रोग के विषय में पत्र द्वारा विशेष सम्मति दी जाती है, पत्र जवाबी आना चाहिये।

बहुत से व्यक्तियों का विचार है कि आयुर्वेद में सर्प विष की चिकित्सा नहीं। किन्तु यह सर्वथा मिथ्या है, हमारे यहाँ सर्पविष की विशेष चिकित्सा की जाती है, प्रति वर्ष सर्पदंशित

रोगियों को ठीक किया जाता है, आज तक एक भी दुर्घटना नहीं हुई है ।

मंहगी नहीं सस्ती—

कुछ सज्जनों का कहना है कि आपकी औषधियाँ बढ़िया तो हैं किन्तु मूल्य अधिक है । हम प्रत्येक औषध को शास्त्रोक्त विधि के अनुसार अत्यन्त परिश्रम से तैयरा करते हैं, जनता को ठगने के लिये चलता कार्य नहीं करते, यदि चाहें तो हम भी कर सकते हैं, और औषध भी सस्ती दे सकते हैं किन्तु यह हमारा उद्देश्य नहीं । हमारी औषधियाँ जितनी मंहगी हैं उतनी ही थोड़ी मात्रा में सेवन करने से अन्यों की ऊपेक्षा अधिक लाभप्रद हैं, इस प्रकार मंहगी नहीं सस्ती पड़ती हैं ।

एक सहस्र रुपये की औषध लेने पर एजेण्टों को पर्याप्त कमीशन दिया जाता है, सवारी गाड़ी का आधा और मालगाड़ी का पूरा मार्गव्यय दिया जाता है । प्रत्येक ग्राम, नगर (शहर) में एजेण्टों की महती आवश्यकता है, एजेन्सी के लिये पत्र व्यवहार करें । औषधियों का मूल्य नकद

—व्यवस्थापक 'आर्य आयुर्वेदिक रसायनशाला' गुरुकुल झज्जर

सर्प विष की अचूक औषध

* अमृत घृत *

यह घृत सब प्रकार के विषों की अचूक औषध है। स्थावर (संखियादि) जंगम (सर्पादि) विषों को शमन करता है अर्थात् सब प्रकार के सर्प एवं बिच्छू के काटे पर अमृत का काम करता है । मूल्य ४०) सेर, २॥) छटांक

मात्रा—१ तोले से १ छटांक तक आवश्यकतानुसार गोदुग्धादि से

प्राप्ति-स्थान—**आर्य आयुर्वेदिक रसायन शाला (रजि.)**

गुरुकुल झज्जर जि० रोहतक (पंजाब)

"सुधारक" मासिक पत्रिका

इस तथ्य को मानने में किसी समझदार व्यक्ति को सन्देह नहीं हो सकता कि वर्तमान समय में भारतीय जनता में आर्थिक, सामाजिक, शारीरिक, आत्मिक और राजीतिक कुरीतियाँ उग्र रूप में फैली हुई हैं। इन कुरीतियों को दूर करना, उत्तम श्रेष्ठ आचार व्यवहार प्रणाली का प्रचार करना और कराना सभी राष्ट्र हितैषी सज्जनों का कार्य है। इसी पवित्र उद्देश्य को ध्यान में रखकर "सुधारक" मासिक पत्रिका चालू की गयी है। केवल दो वर्ष के थोड़े समय में ही इसने सामाजिक जगत् में अपना स्थान बना लिया है। वार्षिक मूल्य केवल २) रु० रखा गया है। इससे विद्यार्थी और नवयुकों को तो प्राणसम सहायता मिलती है। इतना थोड़ा मूल्य होते हुये भी वर्ष में कई बहुमूल्य विशेषांक इसी मूल्य में ग्राहकों को दे दिये जाते हैं। इसका जितना अधिक प्रचार होगा उतना ही राष्ट्र का हित सिद्ध होगा। २) रु० मूल्य इतने बड़े लाभ के सामने क्या अर्थ रखता है? हम निवेदन करते हैं कि स्वयं ग्राहक बनें तथा अन्यों को बनायें और सामाजिक कल्याण में योग देवें।

व्यवस्थापक "सुधारक"
गुरुकुल झज्जर (रोहतक)

पता

ग्राहक संख्या २८३

सेवा में श्री— विद्यार्थी आर्य जगदीश चन्द्रजी

मु० १७७ डी०

पो० मुरारी ब्रादर्स

जि० कमलानगर देहली

आचरण करने योग्य कुछ बातें

१—आचरण को पवित्र रखें। दुराचार को कभी पास न फटकने दें।

२—ईश्वर की उपासना को कभी मत भूलो। इस से आत्मिक बल बढ़ता है।

३—दैनिक हवन से लेकर बड़े-बड़े यज्ञों में घी, उत्तम काष्ठ और सुगन्धित पदार्थों की आहुति अग्नि में देना स्वास्थ्य का प्रमुख साधन है।

४—जीवन को उन्नत बनाने वाले आर्ष ग्रन्थों का स्वाध्याय सदा करो। पतित साहित्य को कभी भूल से भी न पढ़ो।

५—सदाचारी, लोक हितैषी, संयमी, वेदज्ञ संन्यासी महात्माओं के संग और सेवा से जीवन को ऊंचा उठाओ।

६—स्वार्थ त्याग पर ध्यान रखो।

७—ऋषियों के पवित्र जीवन का ही अनुकरण करो।

प्रकाशक आचार्य भगवान् देव गुरुकुल झज्जर ने सम्राट् प्रेस, पहाड़ी धीरज देहली में मुद्रक जगदेवसिंह शास्त्री सिद्धान्ती के प्रबन्ध से छपवाया।

(गुरु)कुल झज्जर (रोहतक) का सचित्र मासिक पत्र

सुधारक

पुनन्तु मा देवजनाः॥

वर्ष १ अङ्क ९-१० | गुरुकुल झज्जर, वैशाख-ज्येष्ठ सं० २०११ वि० मई-जून १९५४, दयानन्दाब्द १३० | वार्षिक मूल्य २) इस अङ्क का १)

व्यायाम सन्देश-विशेषांक

शरीर और आत्मा के बल को बढ़ाते रहना चाहिये

—ऋषि दयानन्द

आसनों का व्यायाम

शरीर विज्ञान तथा व्यायाम के विशेषज्ञों का यह निश्चित मत है कि 'आसनों का व्यायाम' सब व्यायामों में उत्तम है। शरीर को नीरोग स्वस्थ, सुसंघटित, दृढ़, तथा लचकीला रखने का सर्वोत्तम साधन आसन ही हैं। आचार्य पतञ्जलि ने योग के आठ अंगों में एक अंग 'आसन' को माना है।

'आसनों का व्यायाम' नामक प्रस्तुत पुस्तक के लेखक आदर्श ब्रह्मचारी श्री भगवान् देव जी आचार्य गुरुकुल झज्जर है, जो इस विषय के प्रामाणिक विशेषज्ञ हैं। उन्होंने अपने क्रियात्मक अनुभव के आधार पर प्रत्येक आसन की प्रक्रिया का सुन्दर दिग्दर्शन कराया है।

प्रत्येक आसन के करने का तरीका चित्रों द्वारा समझाया गया है और उसके लाभ भी बताये गये हैं।

पुस्तक बहुत ही उपादेय है, विशेषतः विद्यार्थी समाज इससे बहुत लाभ उठा सकता है।

प्रकाशक—वैदिक साहित्य सदन
आर्य समाज मन्दिर,
सीताराम बाजार, देहली।

संस्थापक व सम्पादक—
ब्र० भगवानुदेव आचार्य
गुरुकुल झज्जर, रोहतक

सह-सम्पादक—
पं० विश्वप्रिय शास्त्री
साहित्यरत्न

व्यवस्थापक—
भाष्याचार्य ब्र० वेदव्रत
सिद्धान्त वाचस्पति

सह-व्यवस्थापक—
भाष्याचार्य ब्र० सुदर्शनदेव
सिद्धान्तवाचस्पति

सम्पादकीय

मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार जीवात्मा के अन्तःकरण हैं। ज्ञानेन्द्रियां और कर्मेन्द्रियां बाह्य करण हैं। ज्ञान और प्रयत्न जीवात्मा के स्वाभाविक गुण हैं। इन दोनों गुणों के विकास के लिये उपर्युक्त दोनों प्रकार के करण प्रमुख साधन हैं। अतः यह आवश्यक है कि अन्तः और बाह्य करणों को ठीक अवस्था में रखा जावे। इन दोनों करणों का प्रयोग जीव अपने शरीर के आश्रय पर ही करता है। शरीर को सबल और सुदृढ रखने में प्राण पर अधिकार रखना परमावश्यक है। प्राणों के रहते ही जीव, शरीर और अन्तः तथा बाह्यकरणों से कार्य करने में समर्थ होता है। इससे यह सिद्ध होता है कि शरीर और प्राणों को सुनियमों में रखना मानव का परम कर्तव्य है। इन्हीं नियमों में एक नियम व्यायाम है।

व्यायाम के अनेक भेद हैं। मनुष्य अपनी अवस्था, देश और काल भेद से यथारुचि व्यायाम की छांट कर सकता है। स्वस्थ मानव के लिये सामान्य रूप से व्यायाम एक समान ही लाभदायक है। हमारे पूर्वज ऋषि-महर्षियों ने लोक कल्याण के लिये व्यायाम का बड़ा वैज्ञानिक क्रियात्मक विवेचन किया है। प्राचीन व्यायाम पद्धति के स्वीकार करने पर शरीर और प्राण बलिष्ठ होते हैं जिन के कारण मनुष्य अभ्युदय और निःश्रेयस प्राप्त करने में समर्थ हो जाता है।

जहाँ हमने भारतीय संस्कृति के अन्य अंगों को छोड़ कर पाश्चात्य विदेशी सरणि को ग्रहण किया, उसी भान्ति स्वदेशी व्यायाम रीति को त्याग कर विदेशी खेलों की ओर झुक गये। देशी और विदेशी व्यायाम में प्रत्यक्ष भेद यह है कि देशी व्यायाम को एक अकेला व्यक्ति भी कर सकता है, व्यय कुछ नहीं, शारीरिक लाभ के साथ साथ मानसिक और आत्मिक उन्नति भी होती है। थोड़े स्थान में कहीं भी देशी व्यायाम किया जा सकता है। देशी सामाजिक व्यायाम में भी सब वैयक्तिक गुण हैं। परन्तु विदेशी व्यायाम सब खर्चीले हैं। अकेला

व्यक्ति उन से कुछ लाभ प्राप्त नहीं कर सकता। इन से आत्मिक और मानसिक लाभ का तो नाम भी नहीं।

व्यायाम बाल, वृद्ध, युवा, स्त्री और पुरुष सब के लिये जहाँ परम हितकर है, वहाँ युवकों के लिये तो प्राण प्रद ही है। आर्य जाति में फिर से व्यायाम पद्धति का प्रचलन होवे और हमारा राष्ट्र विश्व में अग्रणी बन सके—इसी पुनीत भावना से प्रेरित होकर यह व्यायाम सरणि जनता के सम्मुख प्रस्तुत की जा रही है। इन कुछ पृष्ठों में व्यायाम का स्थूल रूप प्रकट किया जा रहा है। इसमें यथा रुचि और यथाशक्ति किसी भी व्यायाम का क्रियात्मक प्रयोग करके अपूर्व लाभ का प्रत्यक्ष किया जा सकता है।

व्यायाम केवल मानसिक अथवा काल्पनिक विषय नहीं है। यह तो शत प्रतिशत क्रिया रूप है। व्यायाम शब्द का स्थूल और सूक्ष्म अर्थ भी यही है। अतः प्रेमी पाठक महानुभावों से हम निवेदन करना चाहते हैं कि केवल ज्ञान वर्धन के लिये ही इन पंक्तियों को न पढ़ें अपितु पढ़कर इन पर स्वयं नित्य रूप से आचरण करें और करावें।

यह ध्यान रखने की बात है कि व्यायाम का अभ्यास निरन्तर चालू रखना चाहिये, तभी यथेष्ट लाभ हो सकता है। एक-दो दिन या थोड़े अभ्यास से पूर्ण लाभ की आशा नहीं रखनी चाहिये। अभ्यास करते समय पहिले पहिले मन में अरुचि और शरीर में शिथिलता होने पर भूलकर भी इसका त्याग न करें। कुछ दिन के अभ्यास से ही रुचि होने लगेगी तथा शरीर में बल और ओज की उत्पत्ति एवं वृद्धि स्पष्ट प्रतीत होने लगेगी। अच्छा अभ्यास होने पर व्यायाम को छोड़ने में क्लेश अनुभव होने लगेगा। कुछ व्यायाम तो इनमें ऐसे हैं—चाहे जहाँ बैठे करें और लाभ उठावें।

हमें पूर्ण विश्वास है कि आर्य युवक और युवतियाँ व्यायाम मार्ग पर चलते हुये ब्रह्मचारी और ब्रह्मचारिणी बन कर अपना कल्याण और राष्ट्र का मान बढ़ायेंगे।

❋ व्यायाम सन्देश ❋

विषय प्रवेश

शौच, दन्तधावन और मुख आदि अङ्गों की शुद्धि के पश्चात् और स्नान से पूर्व प्रतिदिन प्रत्येक व्यक्ति विशेषतः ब्रह्मचारी को नियमित शारीरिक व्यायाम करना चाहिये। साधारणतया—चाहे स्त्री हो या पुरुष, जो भी भोजन करता है, उसे व्यायाम की उतनी ही आवश्यकता होती है, जितनी भोजन की। इसका कारण स्पष्ट है, शरीर में व्यायामरूपी अग्नि न देने से भोजन ठीक नहीं पचता और वह शरीर का अङ्ग न बनकर उलटा हानि ही करता है। क्योंकि जिन खाद्य पदार्थों से रक्त आदि धातुओं का निर्माण होकर बल और शक्ति का सञ्चय होता है, उनके ठीक न पचने से वे सड़ने लगते हैं और शरीर में दुर्गन्ध उत्पन्न करके जहाँ अनेक रोगों की उत्पत्ति का कारण बनते हैं वहाँ मनुष्य के मन में अनेक प्रकार के दुष्ट विचारों को भी जन्म देते हैं, जिससे मनुष्य की बुद्धि भ्रष्ट होकर स्मरणशक्ति भी मन्द हो जाती है और उसे अपने कर्त्तव्य-कर्म का ज्ञान नहीं रहता। परिणामस्वरूप वह दुःखदायी विषयभोगों में फंस जाता है और यह विषय-वासना की अग्नि मनुष्य के स्वास्थ्य, शक्ति, सुन्दरता, स्फूर्ति और साहस आदि सद्गुणों को जलाकर भस्मसात् कर डालती है। यहाँ तक कि मनुष्य की सबसे प्रिय वस्तु युवावस्था भी इसी की भेंट चढ़ जाती है। दुःखदायी बुढ़ापा आ घेरता है। मनुष्य का शरीर आलस्य, निर्बलता और रोगों का घर बन जाता है। जिससे लोक और परलोक दोनों ही बिगड़ जाते हैं।

स्वास्थ्य का महत्व

"धर्मार्थकाममोक्षाणामारोग्यं मूलमुत्तमम् ।" मनुष्य के जीवन को सफल बनाने वाला "पुरुषार्थ चतुष्टय" अर्थात्-धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की प्राप्ति का आधार वा मूल साधन आरोग्य ही है। क्योंकि रोगी मनुष्य सांसारिक सुख की प्राप्ति के लिये न तो कृषि आदि व्यवसाय (धन्धे) ही कर सकता है और न सन्ध्या, ईश्वरोपासना, ब्रह्मचर्य-पालन आदि धर्म-कर्म जो मोक्षप्राप्ति के साधन हैं उनके अनुष्ठान में समर्थ होता है। इसलिये संसार में सर्वोत्तम और सर्वप्रिय वस्तु स्वास्थ्य ही है। सांसारिक धनैश्वर्य तथा भोगविलास के सब साधनों के विद्यमान होने पर भी रोगी उनसे कुछ लाभ नहीं उठा सकता, उलटा उनको देख-देख कर दुःखी ही होता है। रोगी मल-मूत्र त्याग आदि आवश्यक कार्यों को भी दूसरे मनुष्यों की सहायता के बिना नहीं कर सकता। उसे प्रतिक्षण दूसरों का सहारा चाहिये और इस हर समय की पराधीनता के कारण रोगी का जीवन शुष्क, नीरस और अत्यन्त दुःखमय हो जाता है। रोगी होना ही साक्षात् नरक के दर्शन करना है। क्योंकि "सर्वं परवशं दुःखम्" "पराधीन सपनेहू सुख नाहीं।"

स्वर्ग और नरक कहीं अन्यत्र नहीं हैं। स्वस्थ मनुष्य के लिये यह संसार ही स्वर्ग समान है। रोगी मनुष्य चाहे वह कितना ही धनी-मानी हो वह सर्वथा पराधीन होने से अत्यन्त दीन और दुःखी रहता है। वह एक दरिद्र, भिखारी से भी गया-बीता है। क्योंकि उसे अपनी भूलों के कारण घोर नरक (दुःख) भोगना पड़ता है। बात तो यथार्थ में यही है—चाहे मनुष्य दरिद्र ही क्यों न हो, यदि वह पूर्ण स्वस्थ है तो वह धन के अभाव में भी धनवान् है। क्योंकि स्वास्थ्य-धन से बढ़कर कोई धन नहीं है। स्वस्थ मनुष्य ही स्वर्ग

(सब सुखों) का उपभोग करता है। इसलिये हमारे पुरुषा ऋषि-महर्षियों ने सांसारिक सुख-अभ्युदय और पारलौकिक सुख-निःश्रेयस् (मोक्ष) की प्राप्ति का साधन आरोग्य वा स्वास्थ्य को ही माना है। इसलिये स्वास्थ्य ही हमारा सर्वस्व है और इसकी रक्षा करना हमारा परम कर्तव्य है।

स्वास्थ्य और व्यायाम

स्वास्थ्य की रक्षा बिना व्यायाम के असम्भव है।

परमपिता परमात्मा ने हमें रोगी और दुःखी होने के लिये नहीं बनाया, हम तो दुःखों और रोगों को स्वयं बुलाते हैं और पुनः रोते और पछताते हैं। हमने स्वास्थ्य के मूलाधार व्यायाम को जब से छोड़ा तभी से हमारी वह भयंकर दुर्गति हुई है, जिसको लिखते हुये भी लज्जा आती है। आज क्या बालक, क्या युवा, सभी रोगी हैं। क्योंकि हम ऋषियों की प्यारी शिक्षा ब्रह्मचर्य और इसके मुख्य साधन व्यायाम को छोड़ बैठे और इनके स्थान पर विषयी, भोगविलासप्रिय और कामवासना के क्रीतकिंकर बन चुके हैं। आज के युवक और युवतियां व्यायाम से प्रेम नहीं करते। इन्हें अखाड़े और व्यायामशाला में जाना रुचिकर नहीं। इन्हें तो सिनेमा, थियेटर और नाचघर प्यारे हैं। नगरों में, सिनेमा घरों के आगे भारी भीड़ लगी रहती हैं और अखाड़े खाली पड़े रहते हैं। क्या हुआ एकाध सौभाग्यशाली व्यक्ति उधर को मुख करता है। इतने पर भी स्वास्थ्य और बल की आशा करते हैं। हमारे युवक अखाड़ों में जाकर करें भी क्या? क्योंकि इन्हें तो दण्ड, बैठक और कुश्ती से इसलिये घृणा है कि कहीं इनके कोमल शरीर को अखाड़े की धूल वा मिट्टी न लग जाये और इनके सुन्दर वस्त्र वा शरीर ही न बिगड़ जायें। ऐसे ही व्यायामभीरु नपुंसकों (हीजड़ों) से यह देश भरा पड़ा है।

भोले युवकों को इतना भी ज्ञान नहीं कि यदि एक मशीन को वर्ष भर न चलाया जाये तो उसकी दशा कितनी बिगड़ जाती है। उसे पुनः चालू करने के लिये नई मशीन के मूल्य से भी कहीं अधिक धनव्यय कर देना पड़ता है, इसी प्रकार हमारा शरीर भी व्यायाम वा कार्य न करने से सर्वथा निर्बल, विकृत और रोगों का घर बन जाता है। पुनः यत्न करने पर भी ठीक होने को नहीं आता। सब जानते हैं कि तालाब का पानी स्थिर होने से ही सड़ता है और नदी-झरनों का जल चलने के कारण ही निर्मल और काँच के सदृश चमकता है। इसी प्रकार व्यायाम न करने से भी रक्त का सञ्चार भली भाँति नहीं होता। इसलिये अनेक प्रकार के मल शरीर में रुकने वा एकत्रित होने से रक्त मलिन और गन्दा होकर अनेक रोगों की उत्पत्ति का कारण बनता है। व्यायाम से रक्त का संचार और शुद्धि होती है। सब अंगों में बल, स्फूर्ति और शक्ति आती है। व्यायाम लचक, वृद्धि-सौन्दर्य, कान्ति और बल को उत्पन्न करता है, सब अङ्ग, प्रत्यङ्गों को पूर्ण और पुष्ट करता है। वास्तव में व्यायाम शरीर के लिये सबसे बढ़कर पुष्टिदायक और स्वास्थ्यप्रद है। उचित व्यायाम से प्रायः सभी रोग रुक जाते हैं। आज तक संसार में कोई ऐसा मनुष्य नहीं हुआ, जिसने बिना व्यायाम के परमारोग्य और स्वास्थ्य की प्राप्ति की हो। व्यायाम का अभाव वा आलस्य ही रोगों का स्रोत है। पूर्ण सुख और स्वास्थ्य की प्राप्ति का एकमात्र साधन व्यायाम ही है।

व्यायाम से लाभ

जैसा कि मैं पहले ही कह आया हूं, स्वास्थ्य प्राप्ति का मुख्य साधन व्यायाम ही है। अब मैं इसकी पुष्टि में ऋषियों, महर्षियों एवं अन्य अनुभवी व्यायाम आचार्यों का मत देता हूं। परम वैद्य महर्षि धन्वन्तरि का मत—

शरीरोपचयः कान्तिर्गात्राणां सुविभक्तता ।
दीप्ताग्नित्वमनालस्यं स्थिरत्वं लाघवं मृजा । १
श्रमक्लमपिपासोष्ण शीतादीनां सहिष्णुता ।
आरोग्यं चापि परमं व्यायामादुपजायते ॥ २ ॥
(सुश्रुत संहिता चिकित्सा० अ० २४ श्लोक ३९-४०)

अर्थ—व्यायाम से शरीर बढ़ता है, शरीर की कान्ति वा सुन्दरता बढ़ती है, शरीर के सब अङ्ग सुडौल होते हैं, पाचन शक्ति बढ़ती है, आलस्य दूर भागता है, शरीर दृढ़ और हलका होकर स्फूर्ति आती है, तथा तीनों दोषों की मृजा (शुद्धि) होती है।

श्रम (थकावट), ग्लानि (दुःख), प्यास, शीत (जाड़ा), उष्णता (गर्मी) आदि सहने की शक्ति व्यायाम से ही आती है और परम आरोग्य अर्थात् आदर्श स्वास्थ्य की प्राप्ति भी व्यायाम से ही होती है।

महर्षि पतञ्जलि जी चरक संहिता में इसी विषय में लिखते हैं—

लाघवं कर्मसामर्थ्यं स्थैर्यं क्लेषसहिष्णुता ।
दोषक्षयोऽग्निवृद्धिश्च व्यायामादुपजायते ॥
(चरक संहिता सूत्रस्थान अध्याय ७ श्लोक ३१)

व्यायाम से शरीर में लघुता (स्फूर्ति, हलकापन, वा फुर्तीलापन) कार्य करने की शक्ति, स्थिरता, क्लेश तथा दुःखों का सहना, दोषों (कुपित-वात, पित्त, कफ) का नाश और (जठर) अग्नि की वृद्धि होती है।

हमारे प्रातः स्मरणीय ऋषियों ने इन श्लोकों में व्यायाम करने के लाभों का इतनी भली-भाँति वर्णन किया है कि मानो गागर में सागर भर दिया है। जो भोजन हम प्रतिदिन करते हैं वह प्रथम हमारे पक्वाशय पेट में जाता है और वहां पेट की अग्नि जिसे जठराग्नि कहते हैं खाये हुए भोजन को पकाती है। भोजन पचने पर आमाशय से ही

शेष अङ्गों को पहुँचता है तथा सारे शरीर को शक्ति और आरोग्य प्रदान करता है। जिसकी जठराग्नि ठीक कार्य करती है उसका खाया हुआ पौष्टिक भोजन व्यर्थ नहीं जाता और उसका पचकर रस बन जाता है। पौष्टिक सारभाग को तीव्र जठराग्नि मल भाग में नहीं जाने देती। जिसकी पाचन शक्ति वा जठराग्नि अच्छी तथा तीव्र होती है उसको भोजन अधिक मात्रा में शीघ्र पचकर रस आदि धातुयें बनती रहती हैं और ये रस, रक्त,......वीर्य आदि सात धातुएँ शरीर को हृष्ट-पुष्ट बनातीं और धारण करती हैं। इसलिये इनको धातु कहते हैं और धातुओं ही से शरीर का निर्माण, वृद्धि वा उपचय होता है और इनकी घटती वा ह्रस से ही शरीर का नाश होता है। इसलिए महर्षि धन्वतरिजी महाराज ने "आषोडशाद्वृद्धिः" सोलह वर्ष से पच्चीस वर्ष की आयु तक वृद्धि अवस्था मानी है। इस आयु में वीर्यादि सभी धातुओं की वृद्धि (बढ़ती) होती है। वृद्धि अवस्था में कई कारणों से जठराग्नि बड़ी तीव्र होती है। जो कुछ भी खाया-पीया जाता है वह शीघ्र पच, रसादि धातु बनकर शरीर का अङ्ग बन जाता है और इसे दृढ़ और पुष्ट बनाता है। जिसकी जठराग्नि मन्द होती है वह वृद्धि अवस्था में भी निर्बल तथा युवावस्था में भी बूढ़ा ही रहता है।

सार यह है--हमारे उदर में एक प्रकार की उष्णता (अग्नि) है जो भोजन को पचाती, पौष्टिक भाग को ग्रहण करती और मलभाग को बाहर निकालती है और रसादि धातुओं से मानुष शरीर का निर्माण वा वृद्धि करती है। इस उष्णता (गर्मी) की सबको आवश्यकता है और व्यायाम से सारे ही शरीर में उष्णता आ जाती है। वह नस-नाड़ियों के द्वारा भोजन से रस को इस प्रकार खींचती रहती है जिस प्रकार जल को स्पञ्ज (जल शोषक) वा मसि (स्याही) को मसि-शोषक (स्याही चूस)। यही उष्णता शरीर में रक्तादि धातुओं का निर्माण और सञ्चार करती है। जिस प्रकार विद्युत् की धारा से बिजली

के तार में उत्तेजना (गर्मी) का संचार होता है, उसी प्रकार व्यायाम से सारे शरीर में रक्त उत्तेजित होकर नस-नाड़ियों के द्वारा अत्यन्त तीव्र गति से दौड़ने लगता है, नस-नाड़ियां सब उत्तेजित तथा कार्यशील हो जाती हैं, सम्पूर्ण शरीर में रक्त सञ्चार भली-भांति होता है और यथायोग्य सब अङ्गों को शक्ति प्रदान करता है। विद्यु त् बिना विद्यु त्-धारा (current.) के सर्वथा निस्सत्व वा शक्तिहीन है, उसी प्रकार रक्त-संचारिणी सब नस-नाड़ियां रक्त संचार के बिना व्यर्थ हैं रक्त-संचार बिना रक्त बने कैसे ?

रक्त बनता है रस से और रस बनता है भोजन के पचाने से, भोजन पचता है उष्णता (पेट की गर्मी) से और उष्णता की जननी है व्यायाम। इस उष्णता से रस, रस से रक्तादि बनता है। यह रक्त नस-नाड़ियों के द्वारा नियम से सारे देह में परिभ्रमण करता हुआ शक्ति संचार करता है। व्यायाम से प्रदीप्त हुई जठराग्नि भोजन से पोषक द्रव्यों को ही ग्रहण नहीं करती अपितु इसमें यह भी शक्ति है कि यह शरीर से विजातीय (व्यर्थ के) मल-मूत्रादि द्रव्यों को भी बाहर निकाल फेंकती और शरीर को शुद्ध-पवित्र बनाती है। जिस प्रकार मार्जनी (झाड़ू) घर में मार्जन (सफाई) का कार्य करती है, इसी प्रकार यह शरीर की गर्मी अनेक मार्गों द्वारा मल-मूत्रादि कूड़े-कर्कट को बाहर निकाल फेंकती है और यह उष्णता व्यायाम से शरीर में इतनी अधिक उत्पन्न होती है कि यह स्थूल से स्थूल, सूक्ष्म से सूक्ष्म चिपटे हुए मलों और दोषों को भी गुदा, मूत्रेन्द्रिय, नेत्र, कर्ण, नासिका और रोम कूपादि (मसामों) के द्वारा मल, मूत्र, श्लेष्म, कफ, थूक, लार, पित्त और स्वेद (पसीना) आदि के रूप में शरीर से बाहर निकाल कर ही छोड़ती है। यहाँ तक कि व्यायाम करने से पसीने के द्वारा अनेक प्रकार के विष भी शरीर से बाहर निकल जाते हैं।

प्रो० राममूर्ति के जीवन की घटना

इस विषय में प्रो० राममूर्ति के जीवन की एक घटना दी जाती है और वह इस प्रकार है कि योरप में इन्हें नीचा दिखाने के लिए कुछ पापियों ने भोजन में धोखे से विष दे दिया। जब इन्हें पता चला तो इन्होंने एक साथ दस-पन्द्रह हजार दण्ड निकाल डाले। सब विष स्वेद (पसीने) के द्वारा बाहर निकल गया और वे बच गये।

व्यायाम करने वाले का शरीर अत्यन्त शुद्ध वा निर्मल और निर्दोष हो जाता है। मल-मूत्रादि ठीक रीति से निकल जाते हैं। कभी मल-बन्ध (कब्ज) नहीं होता। उसे यह चिन्ता नहीं करनी पड़ती कि टट्टी आयेगी या नहीं। शौच दोनों समय खुलकर आता है। आमाशय वा जठराग्नि को बल देने वाला सबसे सस्ता और सर्वोत्तम योग (नुस्खा) व्यायाम ही है। व्यायाम करने वाले को मन्दाग्नि का रोग कभी नहीं होता। वह जो भी पेट में डाल लेता है, सब कुछ शीघ्र ही पच कर शरीर का अङ्ग बन जाता है। उसका खाया-पीया घी, दूध आदि पौष्टिक भोजन उसके शरीर को ही लगता है, टट्टी में नहीं निकलता। अतः उसकी बल-शक्ति दिन प्रतिदिन बढ़ती ही चली जाती है। उसके अङ्ग-प्रत्यङ्गों की वृद्धि यथायोग्य होती है। शरीर के अङ्गों को सुडौल, सघन, गठीला और सुन्दर बनाना व्यायाम का प्रथम कार्य है। यदि कोई मनुष्य केवल एक वर्ष निरन्तर नियम पूर्वक किसी भी व्यायाम को करले, तो उसका शरीर सुन्दर और सुदृढ़ बनने लगता है और जो सदैव श्रद्धापूर्वक दोनों समय यथाविधि व्यायाम करते हैं, उनका तो कहना ही क्या! उनके शरीर की सभी मांस पेशियां लोह की भांति कड़ी और सुदृढ़ हो जाती हैं और सभी नस-नाड़ियां, सम्पूर्ण स्नायुमण्डल और शरीर का प्रत्येक अङ्ग वज्र वा इस्पात (फौलाद) के समान कठोर और सुदृढ़ हो जाता है। चौड़ी उभरी हुई छाती,

लम्बी-सुडौल और गठी हुई भुजायें, कसी हुई पिण्डलियां, चढ़ी हुई जंघायें, विशाल मस्तक तथा चमचमाता हुआ रक्तवर्ण (लाल) मुखमण्डल उसके शरीर की शोभा को बढ़ाता है। यथाविधि व्यायाम करने से शरीर का प्रत्येक अङ्ग यथेच्छ वृद्धि को प्राप्त होकर अत्यन्त सुन्दर, सुदृढ़ और सघन बन जाता है। शरीर पर व्यर्थ का मांस वा मेद (चर्बी) चढ़ कर उसे ढीला नहीं करने पाता, पेट शरीर से लगा रहता है, बढ़ने नहीं पाता।

व्यायाम की प्रशंसा में ऋषि-महर्षियों का मत

महर्षि धन्वन्तरि जी सुश्रुत में लिखते हैं—

न चास्ति सदृशं तेन किञ्चित्स्थौल्यापकर्षणम्।
न च व्यायामिनं मर्त्यं मर्दन्त्यरयो भयात्॥
(सुश्रुत संहिता चिकित्सास्थान अध्याय २४ श्लोक ४१)

अर्थ—अधिक स्थूलता को दूर करने के लिए व्यायाम से बढ़कर और कोई औषधि नहीं है, व्यायामी मनुष्य से उसके शत्रु सर्वदा डरते रहते हैं और उसे दुःख नहीं देते।

न चैनं सहसाक्रम्य जरा समधिरोहति।
स्थिरीभवति मांसं च व्यायामाभिरतस्य च॥
(सुश्रुत संहिता चिकित्सा० अ० २४ श्लोक ४२)

अर्थ—व्यायामी मनुष्य पर बुढ़ापा सहसा आक्रमण नहीं करता। व्यायामी पुरुष का शरीर और हाड़, मांस सब स्थिर होते हैं।

व्यायामक्षुण्णगात्रस्य पद्भ्यामुद्वर्त्तितस्य च।
व्याधयो नोपसर्पन्ति सिंहं क्षुद्रमृगा इव॥
(सुश्रुत संहिता चिकि० अ० २४ श्लोक ४३)

व्यायाम करने से थककर जिसके शरीर पर पसीना आ जाता है और पैरों का तैलादि के द्वारा पर्याप्त मर्दन करता है अथवा उबटन

आदि से निर्मल करता है। उसके पास रोग इस प्रकार नहीं फटकते जिस प्रकार सिंह से डर कर क्षुद्रमृग (निर्बल मृगादि जंगली पशु) पास नहीं फटकते।

,इसी प्रकार का एक श्लोक व्याकरण के प्रसिद्ध ग्रन्थ काशिका में भी आता है—

व्यायामक्षुण्णगात्रस्य पद्भ्यामुद्वर्त्तितस्य च।
व्याधयो नोपसर्पन्ति वैनतेयमिवोरगः॥
(काशिका अध्याय ६ पाद १, सूत्र ६३)

व्यायाम करने से थककर जिसके शरीर में पसीना आ जाता है और जो पैरों का तैलादि के द्वारा पर्याप्त मर्दन करता है अथवा उबटन आदि से निर्मल करता है। उसके पास रोग इस प्रकार नहीं फटकते जिस प्रकार गरुड़ से डर सर्प पास नहीं फटकता।

वयोरूपगुणैर्हीनमपि कुर्यात्सुदर्शनम्।
व्यायामं कुर्वतो नित्यं विरुद्धमपि भोजनम्॥
विदग्धमविदग्धं वा निर्दोषं परिपच्यते॥
(सुश्रुत संहिता चिकित्सा० अ० २४ श्लोक ४४-४५)

अर्थ—जो मनुष्य युवावस्था (जवानी), सुन्दरता और वीरता आदि गुणों से रहित है। उसको भी व्यायाम सुन्दर बनाता है। व्यायाम करने वाला मनुष्य गरिष्ठ, जला हुआ अथवा कच्चा किसी भी प्रकार का खराब भोजन क्यों न हो; चाहे उसकी प्रकृति के भी विरुद्ध हो, सबको भली-भांति पचा लेता है और उसको कुछ भी हानि नहीं पहुँचती।

व्यायाम करने वाले मनुष्य को आप इस प्रकार कहते हुए कभी न सुनेंगे कि मुझे भोजन नहीं पचता वा मल साफ नहीं होता अथवा अपचनन रहता है। यह दुर्गति तो व्यायाम न करने वाले मनुष्यों की

ही रहती है। उन्हें कभी शौच खुलकर नहीं आता। अपचन के कारण कभी खुलकर सच्ची भूख नहीं लगती। व्यायाम न करने वाले लोगों का शरीर प्रायः रोगों का घर ही बना रहता है। उनके सारे जीवन की आय (कमाई) वैद्य, डाक्टरों की ही भेंट चढ़ती है। किन्तु उन्हें स्वास्थ्य और सच्चे सुख के दर्शन जीवन भर कभी भूलकर भी नहीं होते। स्वास्थ्य के बिना कैसा सुख और आनन्द! क्योंकि "आरोग्यं चापि परमं व्यायामादुपजायते।" आदर्श स्वास्थ्य अथवा परम आरोग्य जिसकी प्राप्ति व्यायाम से ही होती है। वही आनन्द और सौख्य का उद्गम है। व्यायाम करने वाले का शरीर केवल स्वस्थ ही नहीं, अपितु अत्यन्त सुन्दर और दर्शनीय भी होता है। व्यायाम से शरीर बड़ा कसा हुआ और सुता हुआ रहता है। उसमें शिथिलता और ढीलापन नाम मात्र भी नहीं रहता। व्यायाम से रंग-रोगन निखर आता है, मुख पर क्या सारे शरीर पर लाली, अद्भुत कान्ति और तेज चमचमाता है, बुढ़ापा उसके पास आता हुआ घबराता है, व्यायाम करने वाले से शत्रु भी भय खाता है। रोग, बुढ़ापा और मोटापे की तो क्या बात, व्यायामी पुरुष मृत्यु को भी चार ठोकरें लगाता है, वह गुणों की खान और उसका शरीर सुन्दरता का प्रतीक (नमूना) बन जाता है। आहा! यदि ऐसा युवक लङ्गोट बान्ध कर खड़ा हो जाये तो दर्शकों की यही इच्छा रहती है कि इसके सुन्दर शरीर को देखते ही रहें। उसका आदर्श स्वास्थ्य और मनोहर मानुष देह की कमनीय-कान्ति उनके मन को मोह लेती है। मोहे क्यों नहीं, जो पौष्टिक भोजन उसने खाया वह पूर्णतया पच गया और जो उसका सार (तत्व) वीर्य बना वह भी व्यायाम के द्वारा पच कर रक्त में मिल गया और शरीर का ही अंग बन गया।

"वीर्यं वै बलम्" वीर्य तो शक्ति और बल का भण्डार है। व्यायाम से इसकी ऊर्ध्वगति हो जाती है और यह ओज के रूप में चमकने लगता है। वीर्य की अधोगति होती ही नहीं और वीर्य के नाश और

पतन की सम्भावना ही नहीं रहती। शरीर में वीर्य की खूब वृद्धि होकर स्थिरता आ जाती है। इसलिए महापुरुषों ने व्यायाम को वीर्य रक्षा का सर्वोत्तम साधन माना है। व्यायामी पुरुष को जागृत वा स्वप्नावस्था में भी किसी प्रकार भी वीर्यनाश का भय नहीं रहता। फिर ऐसे वीर्यवान् मनुष्य का शरीर क्यों नहीं सुन्दर और सुडौल बने, क्यों नहीं उसके पवित्र और परिपुष्ट देह पर मनोहर कान्ति और सुन्दर छवि छाये।

व्यायाम और दुष्ट विचार

व्यायाम प्रेमी के विचार सदैव शुद्ध और पवित्र रहते हैं। वह कुसंग, कुत्सित और कामुकता के दुष्ट विचारों से सर्वथा दूर रहता है। यदि किसी को कुसंस्कार-वश बुरे विचार तङ्ग ही करें और किसी प्रकार भी वश में न आयें तो उसी समय तेज दौड़ आरम्भ कर दे, अथवा कोई भी व्यायाम करने लग जावे, पुनः देखिये कि दुष्ट विचार कैसे पूंछ दबाकर भागते हैं। "आदर्श व्यायामी पुरुष के सामने दुष्ट विचारों की दुष्टता नहीं चलती।

कामवासना का वेग कितना भी प्रबल क्यों न हो, तत्काल ही दब जायेगा। व्यायाम का स्वाद (चस्का) व्यभिचार की भावना को सर्वथा समूल नष्ट कर देता है। नीच से नीच मनुष्य यदि नियमपूर्वक व्यायाम करने लग जाये तो वह स्वयं ही नीचता से घृणा करने लगता है। नियमित व्यायाम से आचारहीन व्यभिचारी भी सदाचारी और ब्रह्मचारी बन जाता है। व्यायाम से मनोविकारों की अन्त्येष्टि हो जाती है। मन की चञ्चलता नष्ट होकर वह वश में आ जाता है। मन सब इन्द्रियों का राजा है, जब मन ही शुद्ध, पवित्र होकर वश में आ जाता है, तो शरीर और इन्द्रियों के सब दोष दूर होकर वे स्वयं शान्त और पवित्र हो जाती हैं। आत्मा को शम और दम की शक्तियां प्राप्त होती हैं, व्यायाम से अन्दर और बाहर की शुद्धि (मृजा) और सफाई हो

जाती है। वह सर्वथा शुद्ध, पवित्र और देवता बन जाता है। ऐसी अवस्था में व्यायाम करने वाले के लिए वीर्य-रक्षा वा ब्रह्मचर्य पालन वामहस्त का कार्य हो जाता है। और ब्रह्मचर्य पालन में सफल होना मनुष्य के सौभाग्य का उदय होना है। क्योंकि योगिराज महर्षि पतञ्जलि के कथनानुसार "ब्रह्मचर्य प्रतिष्ठायां वीर्यलाभः।" ब्रह्मचर्य-पालन से अपूर्व बल और शक्ति प्राप्त होती है और निर्बलता, आलस्य, प्रमाद आदि दुर्गुण सब दूर भागते हैं।

ब्रह्मचर्य सब शक्तियों और सद्गुणों का भण्डार है, इसलिए ब्रह्मचारी जब ब्रह्मचर्य-पालन के मुख्य साधन व्यायाम को अपनाता है तब उससे जहाँ उसे ब्रह्मचर्य-पालन में पूर्ण सफलता मिलती है वहाँ उसके निरन्तर व्यायाम करते रहने से उसका परिश्रम करने का स्वभाव भी बन जाता है। वह कठिन से कठिन कार्य हंसते-हंसते कर लेता है। उसमें कार्य करने की अदम्य शक्ति, अपूर्व उत्साह, और स्फूर्ति आ जाती है। व्यायाम से शरीर हल्का-फुलका और फुर्तीला हो जाता है। व्यायाम में यह एक विचित्रता है कि यह अधिक स्थूल (मोटे) मनुष्य को पतला और पतले को हृष्ट-पुष्ट (मोटा बनाता है। व्यायाम निर्बलता का जो मनुष्य को अधिक कामी और विलासी बनाती है, परम शत्रु है। निर्बलता उससे कोसों दूर भागती है। व्यायाम करने वाला मनुष्य थकना वा थक कर श्वास चढ़ना वा हाँपना क्या होता है, यह जानता ही नहीं। वह सदैव पर्वत के समान स्थिर वा दृढ़ रहता है। उसके लिए दुःख नाम की कोई वस्तु ही नहीं होती। वह मृत्यु के साथ भी हास्य करता है। पुनः उसके लिए शीत-उष्ण (सर्दी गर्मी), भूख-प्यास, सुख-दुःख, हानि-लाभ, मान-अपमान, हर्ष-शोक, जय-पराजय, और जीवन-मरण आदि परस्पर विरोधी द्वन्द्वों का सुखपूर्वक सहन करना साधारण सी बात हो जाता है।

उदाहरण रूप में, आप अपने प्राचीन योद्धाओं-पुरुषोत्तम राम, योगेश्वर कृष्ण, वीर हनुमान, ब्रह्मचारी भीष्म आदि तथा आधुनिक महापुरुष-महर्षि दयानन्द, स्वामी श्रद्धानन्द, धर्मवीर पं० लेखराम, ब्रह्मचारी रामप्रसाद बिस्मिल और कलियुगी भीम प्रो० राममूर्ति तथा ब्रह्मचारी प्रो० माणिकराव जी आदि व्यायामशील व्यक्तियों की जीवनियां पढ़कर देखें तो आपको पता चलेगा कि हमारे इन पुरुषाओं ने संसार में वे आश्चर्यजनक काम किए जिनको आज भी पढ़-पढ़कर पाठक रोमाञ्चित हो जाते हैं।

संसार के सभी महापुरुषों, विद्वानों, वैद्यों और डाक्टरों का यही एक मत है कि मनुष्य के शरीर को सुन्दर, सुदृढ़ बनाने और स्वस्थ्य रखने में व्यायाम से बढ़कर अन्य कोई साधन नहीं है। स्वास्थ्य प्राप्ति की सब औषधों से बढ़कर परमौषध व्यायाम ही है जो इस परमौषध का आश्रय छोड़कर वैद्य, डाक्टरों के पीछे फिरता है वह अपने धन, यौवन और स्वास्थ्य सब से हाथ धो बैठता है।

व्यायाम के पक्ष में कुछ एक महापुरुषों, प्रसिद्ध वैद्यों एवं डाक्टरों की सम्मतियां

पाठकों के लाभार्थ वैद्य, डाक्टरों की कुछ सम्मतियां यहां दी जाती हैं।

महर्षि दयानन्द जो इस युग के आयुर्वेद के प्रकाण्ड पंडित, आदर्श ब्रह्मचारी और आदर्श सुधारक थे और सदैव दण्ड, मुदगर आदि का नित्य नियमित रूप से व्यायाम करके ही भोजन पाते थे, वे राजा की दिनचर्या के विषय में सत्यार्थप्रकाश में यों लिखते हैं----

"प्रातः काल उठ, शौच, सन्ध्या, अग्निहोत्र कर, नाना प्रकार की व्यूह शिक्षा और कवायद करा--शस्त्र और अस्त्रों का कोष तथा वैद्यालय, धन के कोषों को देख नित्य प्रति व्यायाम शाला में जा व्यायाम

करके मध्याह्न समय भोजन के लिए अन्तःपुर अर्थात् पत्नी आदि के निवास स्थान में प्रवेश करे।" (सत्यार्थप्रकाश षष्ठ समुल्लास)

डाक्टर हालर साहब एक स्थान पर लिखते हैं---

"वीर्य वह अमूल्य रत्न है जो बल का भण्डार है। यह रक्त में पुनः मिल जाता है और शरीर में अद्भुत परिवर्तन उत्पन्न करता है। व्यायामी पुरुष अपनी इस वीर्य की शक्ति की दूसरों की अपेक्षा अधिक रक्षा कर सकता है।"

जर्मन का एक प्रोफेसर लिखता है---

"अच्छा हो वह युवक मर जाये जो व्यायाम से अपने शरीर की शक्तियों को पुष्ट नहीं बनाता।"

जर्मन देश को उठाने वाले हर हिटलर "मेरा संघर्ष" नाम की पुस्तक में लिखते हैं—

"अपनी शिक्षापद्धति में सर्वप्रथम स्थान ज्ञानोपार्जन अथवा अक्षर-अभ्यास को नहीं, व्यायाम शिक्षा तथा स्वस्थ शरीर-निर्माण को देना होगा। क्योंकि सर्वमान्य नियम यह है कि स्वस्थ और बलवान् आत्मा स्वस्थ और बलवान् शरीर में ही पाई जाती है।"

राष्ट्रपिता महात्मा गान्धी जी लिखते हैं—

"व्यायाम स्वास्थ्य के लिये उतना ही आवश्यक है जितना कि वायु, जल और भोजन। व्यायाम के बिना हमारा मानसिक कार्य भी अधूरा और नीरस रह जाता है—भोजन के समान व्यायाम भी शरीर तथा मस्तिष्क के लिए आवश्यक है। इसके बिना मस्तिष्क भी वैसे ही निर्बल पड़ जाता है जैसे कि शरीर। निर्बल मस्तिष्क एक प्रकार का रोग है। पुष्ट मस्तिष्क का पुष्ट शरीर में होना ही वास्तविक और सच्चा स्वास्थ्य है।

"एक पहलवान वास्तव में तब तक पहलवान नहीं कहा जा

सकता है जब तक कि उसका मस्तिष्क भी उसके शरीर की भाँति पुष्ट न हो।

"हम में से बहुत से व्यक्ति कठिन मानसिक परिश्रम करते हैं, परन्तु शारीरिक व्यायाम की ओर ध्यान नहीं देते। उनका शरीर मानसिक परिश्रम के कारण निर्बल पड़ जाता है और वे अनेक रोगों के आखेट (शिकार) बन जाते हैं। यहीं तक नहीं; बल्कि जब संसार उनसे कुछ उपयोगी कार्यों की आशा करता है तब वे असमय में ही इस संसार से उठ जाते हैं।

"हम लोग इस बात को नहीं समझ पाते कि शारीरिक व्यायाम के बिना हमारा मानसिक कार्य भी अधूरा और नीरस रह जाता है।"

"आदर्श व्यायाम वह है— जिससे शरीर एवं मस्तिष्क दोनों को लाभ पहुँचता हो। केवल ऐसा ही व्यायाम मनुष्य को स्वस्थ बना सकता है।"

डाक्टर सिलवस्टर ग्राहम लिखते हैं—

"व्यायाम से सब अङ्गों में बल, स्फूर्ति आती है। सब अङ्गों में पूर्णता, लचक, वृद्धि, सौन्दर्य, कान्ति और बल उत्पन्न होता है। वास्तव में व्यायाम शरीर के लिए सबसे बढ़कर पुष्टिदायक है।"

मिस्टर सैण्डो विलायत का प्रसिद्ध पहलवान—

अपने बाल्यकाल में रोगी था, उसे कोई अच्छे से अच्छा डाक्टर भी स्वस्थ नहीं कर सका। अन्त में उसने परमौषध व्यायाम का सहारा लिया। इसी की कृपा से उसकी पहलवानी का संसार में डंका बजा और वह अपने इस वचनानुसार—

"सम्पूर्ण रोगों का इलाज व्यायाम द्वारा किया जा सकता है।" सभी रोगों की चिकित्सा अन्त तक व्यायाम के द्वारा ही करता रहा।

कलियुगी भीम राममूर्ति ने भी जो हाथी को अपनी छाती पर

से उतारते थे, अपनी सारी शक्ति का स्रोत ब्रह्मचर्य और व्यायाम को ही बताया है। वह एक स्थान पर लिखते है कि "व्यायाम के बिना अधिक काल तक ब्रह्मचारी रहना असम्भव है।"

यूनान का प्रसिद्ध वैध अफलातून लिखता है—

"मल को इकट्ठा होने से रोकने के लिए व्यायाम से उत्तम कोई वस्तु नहीं है।"

भारत के प्रसिद्ध वैद्य पं० ठाकुरदत्त जी शर्मा 'अमृतधारा' लिखते हैं—

"आर्यों के भीतर जब व्यायाम की प्रथा थी तब यहीं बड़े-बड़े योद्धा हो चुके हैं। भीम जैसे मनुष्यों का होना भी यहीं सम्भव था, जो हाथी को उठाकर फैंक सकते थे।"

वे दूसरे स्थान पर लिखते हैं—

"व्यायाम से बहुत ही लाभ हैं। रुधिर बहुत सा तो हमारे अङ्गों के भीतर खर्च होता है और हमारे शरीर को दृढ़ करता है। जिसका वीर्य बनकर बाहर निकल जाता था वह शरीर के भीतर ही रहता है। और इससे बढ़कर यह भी लाभ है कि जो वीर्य बन जावे तो व्यायाम से पुनः शरीर के भीतर शोषण होकर शरीर और हड्डियों को दृढ़ करेगा। जिसका निकलने का अवसर नहीं वह व्यर्थ नहीं निकलेगा, वरन् व्यायाम के द्वारा शरीर का आहार बन जायेगा। अतः व्यायाम को कभी नहीं छोड़ना चाहिए अपितु नित्य करना चाहिये।"

'सुधारक' पर सम्मति

सुधारक का "गो-विशेपाङ्ग" मिला। इस विशेपाङ्ग का सम्पादकीय मुझे सबसे अच्छा लगा। गोरक्षा के लिये की गई अपील बड़ी मार्मिक है। लेख सभी अच्छे हैं। प्रकाशन सफल हुआ है।

डा, अनन्तानन्द

गुरुकुल विश्वविद्यालय कांगड़ी

पाश्चात्य देश और हम

सभी पश्चिमी देशों में व्यायाम का खूब प्रचार है। वहां सर्वत्र व्यायाम शिक्षा का अङ्ग बन चुका है। वहाँ के सुधारक व्यायाम के महत्व को भली-भांति समझ चुके हैं। इसलिए वहाँ कोई कठिनाई नहीं। वहाँ की जनता व्यायाम को अपना अंग बना चुकी है। इस-लिए वहाँ के लोगों के स्वास्थ्य हमारे से कहीं अच्छे हैं। क्या कारण है कि इस अभागे भारत में युवक भी व्यायाम नहीं करते और इस जीवनोपयोगी वस्तु वीर्य को अपने जीवन का अङ्ग नहीं बताते? इसका मुख्य कारण कुशिक्षा का प्रभाव अथवा शिक्षा का अभाव ही है। भारत में माता-पिता बालक को उत्पन्न तो कर देते हैं किन्तु वे उसकी शारीरिक वा मानसिक उन्नति का कुछ ध्यान नहीं रखते जो कि उनका मुख्य कर्तव्य कर्म है। यदि वे अपने सन्मुख बालकों को नित्य प्रति व्यायाम करायें तथा अपने बालकों को बाल्यकाल में ही व्यायाम करने का अभ्यासी बनादें, साथ ही उन्हें व्यायाम का महत्व भी समझा दें तो वे बड़े होने पर व्यायाम कदापि नहीं छोड़ सकते। प्रथम तो बाल्यावस्था में व्यायाम का अभ्यास नहीं कराते, इसलिए युवावस्था में व्यायाम भार दिखाई देता है, बुढ़ापे की तो बात ही क्या कहनी? उस समय तो उठना बैठना भी भारी हो जाता है। यथार्थ में सारा दोष तो हमारी शिक्षा प्रणाली का ही है। इसमें व्यायाम के लिए कोई स्थान नहीं। हमारे स्कूलों की शिक्षा इतनी व्यर्थ, अरोचक, निकृष्ट और अधूरी है कि इससे किसी प्रकार का भी लाभ नहीं। व्यायाम के नाम पर स्कूल, कालिजों में वालीबाल फुट-बाल आदि अङ्गरेजी ढंग के खेल खिलाये जाते हैं। उनमें इनेगिने थोड़े ही विद्यार्थी भाग लेते हैं या ले सकते हैं। इन खेलों से भी विशेष लाभ नहीं, इसमें समय और धन का ही नाश होता है। खेल-खेल ही होता

है और व्यायाम-व्यायाम ही। क्या हुआ कोई एकाध विद्यार्थी कभी भूलकर व्यायाम कर लेता हो, नहीं तो प्रायः अधिक विद्यार्थी और शिक्षक ऐसे हैं जो यह समझते हैं कि व्यायाम करना अनपढ़ मूर्ख और नीच लोगों का कार्य है। इसीलिए विद्यार्थी तथा शिक्षित समाज के स्वास्थ्य की अत्यन्त दुर्दशा है। अजीर्णता वा कोष्ठबद्धता का रोग प्रायः सबको रहता है। इसके अतिरिक्त वे अन्य अनेक प्रकार के रोग तथा प्रतिश्याय (जुकाम), खांसी, हृदय की धड़कन, छाती में पीड़ा, स्वप्नदोष, प्रमेह आदि से पीड़ित रहते हैं। सदैव इनके स्वास्थ्य में गड़बड़ ही रहती है। अपने विद्यार्थियों की दीन-हीन, शारीरिक निर्बल अवस्था को देखकर रोना आता है। १६ और २० वर्ष की वृद्धि अवस्था में जिनके मुख मण्डल सदैव हीरे की भांति चमकने चाहियें थे, आज वे निस्तेज, बलहीन, मनमलिन, लुटे और मुँह पिटे से दिखाई देते हैं। पश्चिमी झूठी सभ्यता की लहर ने हमारे विद्यार्थी समाज को आलसी, शृंगारप्रिय, भोगी और रोगी बनाकर इनके स्वास्थ्य का सर्वथा सर्वनाश ही कर डाला है। क्योंकि आमाशय, पेट और फुफ्फुस (फेफड़े) के बिगड़ने से ही सब रोग होते हैं और इनके स्वस्थ रखने का एकमात्र उपाय व्यायाम है।

यदि ब्रह्मचारी प्रोफेसर माणिकराव जी के समान, अन्य सुधारक भी व्यायाम का क्रियात्मक प्रचार करें तो देश के शीघ्र ही सुदिन आ सकते हैं। महाराष्ट्र व दक्षिण में जाकर देखें, श्रद्धेय प्रोफेसर जी की कृपा से प्रायः सभी नगरों में व्यायामशाला बन गई हैं। शिक्षित लोगों का झुकाव भी व्यायाम की ओर होने लगा है। उन्हीं के पुरुषार्थ से आज बड़ौदे में ४-५ लाख रुपये की व्यायामशाला और शस्त्रागार बना हुआ है। इसी प्रकार सारे देश में व्यायाम के प्रचार की आवश्यकता है। सुधार तो तब हो जब हमारी सरकार ऐसा राज्य नियम ही बना दे जिससे सबको अनिवार्य रूप से व्यायाम करना ही पड़े।

व्यायाम न करने वालों को सरकार दण्ड दें और उन्हें सारा समाज घृणा की दृष्टि से देखे।

हमारी शिक्षण संस्थाओं में व्यायाम का समुचित प्रबन्ध हो। अन्य विषयों की भांति इसकी भी परीक्षा हो, इसमें उत्तीर्ण होने वाला ही उत्तीर्ण समझा जावे। देखें, पुनः व्यायाम का प्रचार तथा हमारे स्वास्थ्य का सुधार कैसे न हो। नगर-नगर, ग्राम-ग्राम और देश के प्रत्येक कोने में व्यायामशालायें वा अखाड़े चलाये जावें। स्वस्थ और बलिष्ठ व्यक्तियों को पारितोषिक (इनाम) और सम्मान दिये जावें। जो निर्बल और रोगी हों उन्हें विवाह करने और सन्तान उत्पन्न करने की आज्ञा न दी जावे। केवल स्वस्थ और बलिष्ठ युवा स्त्री-पुरुष ही सन्तानोत्पत्ति और विवाह के अधिकारी हैं। जिनकी सन्तान अधिक सुन्दर, स्वस्थ और बलवान् हों, उनको अनेक प्रकार के पारितोषिक वा मासिक वृत्तियां देकर सरकार प्रोत्साहन दे। निर्बल, रोगी सन्तान पैदा करने वाले को यथोचित दण्ड दे। तब कहीं इस पतित भारत का भाग्योदय हो सकता है, पुनः खोई हुई प्राचीन गौरव-गरिमा को प्राप्त कर सकता है। क्योंकि व्यायाम तथा शारीरिक श्रम से घृणा करके कभी भी कोई देश नहीं उठ सकता। इसलिए प्रत्येक ब्रह्मचर्य, स्वास्थ्य तथा देश प्रेमी को प्रतिदिन व्यायाम करने का व्रत लेना चाहिये।

व्यायाम का लक्षण

अब तक हम व्यायाम शब्द का प्रयोग करते आ रहे हैं, प्रत्येक व्यक्ति इसका थोड़ा बहुत अर्थ जानता भी है, किन्तु उसका वास्तविक अर्थ क्या है यह जानना अत्यावश्यक है। क्योंकि एक वस्तु का वास्तविक लक्ष्य जान कर ही हम उससे पूर्ण लाभ उठा सकते हैं। चरक संहिता में इसके लक्ष्य इस प्रकार दिये हैं—

शरीरचेष्टा या चेष्टा स्थैर्यार्था बलवर्धिनी।
देहव्यायामसंख्याता मात्रया तां समाचरेत्॥
(चरकसंहिता सूत्रस्थान, अध्याय७ श्लोक ३०)

शरीर की जो चेष्टा बल बढ़ाने के लिए और स्थिरता (दृढ़ता) के लिए की जाती है, उस चेष्टा का नाम शारीरिक व्यायाम है। इस व्यायाम को मात्रापूर्वक नित्य प्रति सेवन करना चाहिए।

व्याख्या—शरीर को बलिष्ठ, कार्यक्षम, सुदृढ़, स्वस्थ, सुन्दर, स्थिर तथा चिरायु वाला बनाने के लिए जो भी शरीर के अङ्गप्रत्यङ्गों से प्रतिदिन नियम पूर्वक चेष्टायें, परिश्रम वा उपाय किये जाते हैं, उनको व्यायाम कहते हैं।

महर्षि धन्वन्तरि ने सुश्रुत में लिखा है—

शरीरायासजननं कर्म व्यायामसंज्ञितम्।
तत्कृत्वा तु सुखं देहं विमृद्नीयात्समन्ततः॥
(सुश्रुतसंहिता चिकित्सा० अ० २४ श्लोक ३८)

ऐसा कर्म वा क्रिया जिस से शरीर का परिश्रम होता है अथवा शरीर की वृद्धि वा विकास के लिए क्रिया विशेष या प्रयत्न किया जाता है उसे व्यायाम कहते हैं। व्यायाम करने के पीछे शरीर को सुख देना चाहिए अर्थात् विश्राम देना चाहिए और भली भान्ति शरीर के सब अंगों को अथवा मांस पेशियों को धीरे-धीरे मर्दन करना चाहिए। जिस से शरीर में जो श्रान्ति वा थकावट आती है वह दूर हो जावे और शरीर शीतल होकर अपनी पूर्व की अवस्था में आ जावे। क्योंकि व्यायाम करने में मांस पेशियों (पुट्ठों) पर बल पड़ता है। वे थककर टूट तक जाते हैं। मर्दन करने से उनकी थकावट दूर होकर पुनः ठीक हो जाते हैं।

आयामो विविधोऽङ्गानां व्यायाम इति कीर्तितः॥ धनुर्वेद॥

शरीर के विविध अङ्गों का आयास अर्थात् फैलाव, विकास अथवा वृद्धि के लिए जो श्रम वा चेष्टा की जाती उसे व्यायाम कहते हैं।

साधारण व्यायाम करने वाले लोग केवल इसी बात का ध्यान रखते हैं कि उनके भुजदंड और जङ्घायें तैय्यार हो जायें और वक्षस्थल (छाती-सीना) निकल आये वा उभर आये और विशाल हो जाये। पुट्ठे तैय्यार करना वा डौले बनाना उनकी व्यायाम का उद्देश्य होता है। इस लिये इस उद्देश्य को पूरा करने के लिए वे दण्ड, बैठक आदि कठिन से कठिन व्यायाम करते हैं। उनकी इच्छा के अनुसार उनके पुट्ठे (Muscles.) भी तैय्यार हो जाते हैं। उनका शरीर सुन्दर और दर्शनीय हो जाता है। किन्तु उनका स्वास्थ्य इतना व्यायाम करने पर भी अच्छा नहीं बनता। इस लिए व्यायाम तो वही ठीक है कि जिसके करने से शरीर सुन्दर, सुडौल, सुदृढ़ और बलवान् भी हो और साथ ही स्वास्थ्य भी ठीक रहे और मस्तिष्क भी ठीक काम करता हो। उसमें आलस्य, तन्द्रा और तमोगुण की प्रधानता न हो। शरीर, मन आदि सदा उत्साह से भरे रहें।

व्यायाम मात्रानुसार ही करें।

चरक शास्त्र में मात्रा के अनुसार व्यायाम करने पर बड़ा बल दिया है। मात्रा से अधिक व्यायाम करने से अनेक हानियां हो जाती हैं। व्यायाम—अपनी शक्ति, बल के अनुसार तथा अपनी शारीरिक अवस्था को विचार कर करना चाहिए। व्यायाम-उतना ही करना चाहिए जिससे शरीर अत्यधिक श्रान्त न होने पाये। या तो अज्ञान के कारण वा सामूहिक स्पर्धा (हार-जीत) के रस्साकसी, दौड़, फूटबाल आदि खेलों में व्यायाम शक्ति से बाहर होने की संभावना सदैव रहती है। व्यक्तिगत विचारपूर्वक व्यायाम करने से व्यायाम के अधिक होने का भय नहीं रहता। कभी-कभी कोई उत्साही नवयुवक कोई व्यायाम की पुस्तक

पढ़कर वा व्याख्यान सुन कर प्रथम ही दिन अधिक व्यायाम कर डालता है अथवा अपने से अत्यधिक बलवान् व्यक्ति से मल्लयुद्ध कुश्ती) करने से अथवा किसी साथी के साथ अधिक व्यायाम करने की स्पर्धा (शर्त) में व्यायाम का अति योग (अत्यधिकता) कर डालता है। जिससे कभी-कभी बड़ी भयंकर हानियां हो जाती हैं।

व्यायाम की मात्रा के विषय में महर्षि धन्वन्तरि सुश्रुत में लिखते हैं—

सर्वेष्वृतुष्वहरहः पुंभिरात्महितैषिभिः ।
बलस्यार्धेन कर्त्तव्यो व्यायामो हन्त्यतोऽन्यथा ॥
(सुश्रुतसंहिता चिकित्सा० अ० २४ श्लोक ४६)

अपना कल्याण चाहने वाले मनुष्यों को प्रतिदिन सभी ऋतुओं में अपने बल से आधा व्यायाम करना चाहिए। अन्यथा अधिक व्यायाम किया हुआ हानि करता है। यहाँ तक कि मृत्यु की भी सम्भावना रहती है।

अत्यधिक व्यायाम से हानियां

श्रमः क्लमः क्षयस्तृष्णा रक्तपित्तं प्रतामकः ।
अतिव्यायामतः कासो ज्वरश्छर्दिश्च जायते ॥
(चरकसंहिता सूत्रस्थान, अध्याय ७ श्लोक ३२)

अति व्यायाम करने से शरीर बिना ही परिश्रम किये थका रहता है और उसमें पीड़ा होती है। मन और इन्द्रियों में ग्लानि सी रहती है। रस, रक्त आदि धातुओं का क्षय अर्थात् नाश होकर मनुष्य निर्बल हो जाता है। यहाँ तक कि क्षय (तपेदिक) भी हो जाता है। तृष्णा-रोग (अधिक प्यास लगना), रक्तपित्त (नाक, मुख वा अन्य किसी अङ्ग से) रक्त (लहू) का बाहर निकलना, प्रतामक-श्वास (दमा), कास (खांसी), ज्वर और वमन (उलटी) आदि रोग हो जाते हैं। "अति व्यायामतो रोगाः मानवानां भवन्ति हि।" (चरकसंहिता)।

अर्थात्–अति व्यायाम करने वाले मनुष्य अनेक रोगों में फंस जाते हैं। जो लोग "अधिकस्याधिकं फलम् ।" के अनुसार यह समझ कर कि अधिक व्यायाम से अधिक बल बढ़ता है मात्रा से अधिक व्यायाम कर डालते हैं, वे बड़ी भयङ्कर भूल करते हैं और इसीलिए अनेक प्रकार की हानियां उठाते हैं। बिना बिचारे अन्धाधुन्ध व्यायाम का परिणाम सदैव हानिकरिक ही होता है। अधिक व्यायाम से शरीर दुर्बल, रोगी, भद्दा; और कुरूप हो जाता है। बुद्धि और स्मरणशक्ति घट जाती है। मस्तिष्क को बड़ी हानि पहुंचती है। अनियमित और मात्रा से अधिक अच्छी से अच्छी वस्तु का भी उपयोग हानिकारक ही होता है। इसलिए "अति सर्वत्र वर्जयेत्" अति सर्वत्र वर्जित है। इस विषय में एक सच्ची घटना दी जाती है—

हिन्दू-मुस्लिम दङ्गों के समय में जब अखाड़ों में जाने और व्यायाम करने का प्रचार बढ़ा, तब अपने माता-पिता के उत्साहित करने पर एक युवक ने अखाड़े में जाना आरम्भ किया। थोड़े से दिनों में कई सौ दण्ड-बैठक निकालने लगा। थोड़ा-थोड़ा मल्ल युद्ध (कुश्ती) भी करने लगा। एक दिन अपने से द्विगुण शक्ति वाले युवक से मल्लयुद्ध किया। उसी दिन से उसकी छाती में साधारण सी पीड़ा होने लग गई। उसने इस ओर कुछ भी ध्यान नहीं दिया और पहले की भांति अखाड़े में जाता और व्यायाम करता रहा। पुष्टिकारक भोजन करते और नियमित व्यायाम करते रहने पर भी उसका शरीर निर्बल होने लगा। भोजन के पश्चात् दोपहर को शरीर उष्ण हो जाया करता और हाथ-पैरों के तलवे हर समय जलने लगे। खांसी भी हो गयी। फिर भी अखाड़े में जाने का नियम नहीं छोड़ा। जब शरीर अत्यन्त निर्बल हो गया और छाती की पीड़ा तथा खांसी बहुत तङ्ग करने लगीं और ज्वर भी हर समय रहने लगा। पुनः वैद्य-डाक्टरों का द्वार खटखटाया।

अनेक प्रकार की चिकित्साएँ की, किन्तु कोई लाभ नहीं हुआ। मुख से हर समय रक्त निकलने लगा। ज्वर और छाती की पीड़ा के कारण न रात को नींद आती थी और न दिन में ही एक क्षण सुख से बीतता था। अन्त में यह होनहार युवक व्यायाम के नियमों से अनभिज्ञ होने के कारण अनेक प्रकार के कष्ट सह कर विकराल काल का ग्रास हो गया।

आशा है कि इस दुर्घटना से मात्रा से अधिक व्यायाम करने वाले लोग शिक्षा ग्रहण करेंगे।

इसलिए महर्षि पतञ्जलि जी ने चरक शास्त्र में लिखा है—

व्यायामहास्यभाष्याध्वग्राम्यधर्मप्रजागरान।
नोचितानपि सेवेत बुद्धिमानतिमात्रया॥
(चरकसंहिता सूत्रस्थान, अध्याय ७ श्लोक ३३)

व्यायाम, हास्य (हंसना), भाष्य (बोलना), मार्ग चलना, मैथुन तथा रात्रिजागरण का चाहे अभ्यास भी हो, बुद्धिमान् मनुष्य को चाहिए कि इनका अधिक मात्रा में सेवन न करे।

एतानेवंविधांश्चान्यान् योऽतिमात्रं निषेवते।
गजः सिंहमिवाकर्षन् सहसा स विनश्यति॥
(चरकसंहिता सूत्रस्थान, अध्याय ७ श्लोक ३४)

इन्हें तथा इस प्रकार से अन्य कार्यों को जो अतिमात्रा में सेवन करता है वह शीघ्र ही रोग एवं मृत्यु का ग्रास होता है। जैसे सिंह हाथी को मार कर पुनः उसे खींच कर दूसरी जगह ले जाना चाहता है अर्थात् मात्रा से अधिक उसे खींचने में शक्ति लगाता है, तो उसका परिणाम यही होता है कि वह मर जाता है।

व्यायाम की मात्रा

इसलिए अपने बल वा शक्ति से आधा व्यायाम करना चाहिए। महर्षि धन्वन्तरि जी महाराज सुश्रुत में बलार्ध के ये लक्षण लिखते हैं—

हृदिस्थानस्थितो वायुर्यदा वक्त्रं प्रपद्यते।
व्यायामं कुर्वतो जन्तोस्तद्बलार्धं विनिर्दिशेत्॥
(सुश्रुतसंहिता चिकित्सा० अ० २४ श्लोक ४७)

हृदय स्थान में ठहरा हुआ वायु जब व्यायाम करने वाले मनुष्य के कण्ठ तक पहुँच जाये वा मुख में आने लगे अर्थात् फुफ्फुस (फेफड़े) के अन्तिम सिरे तक छोटे-छोटे कोष्ठकों में भी जब व्यायाम करते हुए श्वास-प्रश्वास होने लगे, उसे बलार्ध जानना चाहिए।

व्यायाम की अधिकता से बचाने के लिए और उचित मात्रा जानने के लिए धन्वन्तरि जी ने बहुत उत्तम विधि बतलाई है। वैसे तो एक मनुष्य दूसरे की अपेक्षा बहुत अधिक व्यायाम कर सकता है इसलिए सबका बलार्ध पृथक्-पृथक् है। अब भी सम्भव है कोई बलार्ध मात्रा को न समझ सके। अतः इस विषय को और अधिक स्पष्ट किया जाता है।

व्यायाम करते समय मुख को बन्द रखना चाहिए और श्वास सदैव नासिका से ही लेना चाहिए। जब व्यायाम करते-करते श्वास चढ़ जायें और मुख खोलने के लिए विवश होना पड़े तो समझ लेना चाहिए कि पर्याप्त व्यायाम हो चुका। स्वास्थ्य की दशा में यह सर्वथा ठीक है, किन्तु नासा रोग या कफ रोग के कारण नासिका बन्द हो तो यह परीक्षा ठीक नहीं। तब दूसरी विधि का आश्रय लेना पड़ता है। महर्षि धन्वन्तरि जी ने दूसरी विधि भी लिखी है—

कक्षाललाटनासासु हस्तपादादिसन्धिषु ।
प्रस्वेदान् मुखशोषाच्च बलार्धं तद्विनिर्दिशेत् ॥
(सुश्रुतसंहिता चिकित्सा० अ० २४ श्लोक ४७)

जब कक्षा (बगल), मस्तक, नासिका तथा हाथ-पैं आदि की सन्धियों (जोड़ों) में स्वेद (पसीना) आने लगे और मुख सूखने लगे तो बलार्ध समझ कर व्यायाम बन्द कर देना चाहिये।

बलार्ध का एक आशय यह भी है—कि जिस मनुष्य में १०० दण्ड निकालने की शक्ति है, वह ५० दण्ड निकाले। इसे बलार्ध समझना चाहिये।

अधिक व्यायाम से बचने के लिए एक बात का सदैव ध्यान रखें! व्यायाम करते समय आपका मुख न बिगड़ने पावे। अपनी शक्ति से अधिक व्यायाम करने से मुख की आकृति बिगड़ जाती है। इसलिए अपने बल से अधिक व्यायाम करने से बचने का यह एक अच्छा ढंग है।

उपर्युक्त बातों को पढ़कर कोई सज्जन उलटी शिक्षा ग्रहण न करें और व्यायाम की मात्रा सर्वथा न घटा दें। जहाँ अधिक व्यायाम करने से हानि होती है वहाँ थोड़ा व्यायाम करने से कोई लाभ भी नहीं होता। जैसे शहरों में लोग खेलने की क्लबें बनाते हैं, वहाँ जाकर बाबू लोग थोड़ी बहुत देर खेल आते है और इसी को व्यायाम समझते हैं। ऐसी व्यायामों से कोई लाभ नहीं होता। जिस प्रकार अधिक भोजन से हानि और रोग उत्पन्न होते हैं, उसी प्रकार बहुत थोड़े भोजन से भी मनुष्य निर्बल हो जाता है और उसका शरीर कदापि हृष्ट-पुष्ट नहीं हो सकता। जिस प्रकार उचित मात्रा में किया हुआ भोजन शरीर को स्वस्थ और बलिष्ठ बनाता है, इसी प्रकार उचित मात्रा में किया हुआ व्यायाम भी हमारे शरीर को सुदृढ, स्वस्थ और बलवान् बनाता है।

प्रारम्भ में ही अधिक व्यायाम नहीं करना चाहिए। आरम्भ में थोड़ा व्यायाम करें, पुनः शनैः शनैः अभ्यास बढ़ायें। जैसे – कोई व्यक्ति पहले दिन १० दण्ड करता है तो उसे अगले दिन एक दण्ड बढ़ा देना चाहिये, अथवा सप्ताह में १ दण्ड बढ़ाने के नियम से वह वर्ष भर में ६० और २ वर्ष में ११० डण्ड प्रतिदिन करने का अभ्यास कर सकता है। इसी प्रकार अपने बलाबल को विचार कर तथा भोजन के अनुसार ही व्यायाम को शनैः-शनैः बढ़ाना चाहिये। बहुत बार व्यायाम के नये प्रेमी नवयुवक इस विषय में बड़ी शीघ्रता करते हैं। प्रथम तो पहिले ही दिन वे अपनी शक्ति से अधिक दण्ड आदि व्यायाम करते हैं। फिर उत्साह में ५-५ वा १०-१० दण्ड प्रतिदिन बढ़ाने का यत्न करते हैं। उनका यह खेल २-४ दिन तक तो चल जाता है, किन्तु पीछे उनका यह बढ़ाने का नियम जब टूट जाता है और मन भर जाता है, तो पहले जैसी रुचि और उत्साह नहीं रहता और पुनः वे व्यायाम को छोड़ बैठते हैं। इसलिए थोड़े व्यायाम से आरम्भ करके शनैः-शनैः बढ़ाना हितकर है। इस बात का सदैव ध्यान रखें कि चाहे दण्ड, बैठक आदि कोई भी व्यायाम करें, किन्तु एक बार में इतना ही करें जितना सुख पूर्वक आप कर सकते हैं। आपका श्वास नहीं फूलना चाहिए। श्वास फूलने या उखड़ने अथवा नासिका की जड़ सूखने के पश्चात् भी व्यायाम करते रहने से शरीर के साथ बड़ा अन्याय होता है और अनेक प्रकार की हानियाँ होती हैं, जिनको पहले बताया जा चुका है।

व्यायाम की मात्रा के विषय में विदेश के प्रसिद्ध पहलवान मिस्टर सैंडो लिखते हैं—

"व्यायाम से यदि बल प्राप्त करना चाहते हो तो व्यायाम थोड़ा बलानुसार करो, परंतु नियमानुकूल करो। यह नहीं चाहिए कि एक दिन तो १०० दण्ड निकाल लिये और अगले दिन एक भी नहीं।"

शेख बू अली सीना का कथन है—

"यदि व्यायाम समतापूर्वक यथेच्छा और यथोचित समय पर किया जाय तो सर्वोपायों से लाभदायक हो सकता है, परन्तु जिस व्यायाम को समतापूर्वक न किया जाये वह दुर्बलता तथा शक्तिहीनता का कारण होता है।"

इसी विषय में प्रोफेसर राममूर्ति जी का आदेश है—

"व्यायाम का अभ्यास क्रमशः करना चाहिये, एक दम बढ़ा देना उचित नहीं। जो व्यायाम किया जाये, धीरे-धीरे अङ्गों पर पूरा जोर देकर किया जाये।"

व्यायाम करने से पुट्ठों (मांस पेशियों) में पीड़ा उत्पन्न होती है। उनमें पीड़ा के साथ-साथ एक प्रकार का तनाव वा कड़वा सा होता है। बहुत से लोग उस पीड़ा आदि के कारण को न समझ कर व्यायाम करना बन्द कर देते हैं। वास्तव में इस प्रकार व्यायाम से उत्पन्न हुई पुट्ठों की पीड़ा पुट्ठों में नये बल प्राप्त करने की इच्छा या भूख को प्रकट करती है अतः इस पीड़ा से डर कर व्यायाम छोड़ देना भारी भूल है। एक-दो सप्ताह निरन्तर व्यायाम करते रहने से पीड़ा स्वयं शान्त हो जाती है। यह व्यायाम से ही हुई है और व्यायाम से ही चली जाती है। अतः इसकी चिन्ता छोड़ कर नित्य व्यायाम करते रहना चाहिये।

नियमित व्यायाम

जो व्यायाम नियमों को ध्यान में रख कर किया जाता है, उसे नियमित व्यायाम कहते हैं।

जो व्यायाम प्रतिदिन अपनी शक्ति, मात्रा, भोजन, आयु आदि को ध्यान में रखकर नियत समय और उचित स्थान पर श्रद्धापूर्वक किया जाता है उससे पूरा-पूरा लाभ होता है। कोई व्यक्ति यदि एक दिन

व्यायाम करके दो दिन व्यायाम नहीं करता अथवा दो सप्ताह करके पुनः एक सप्ताह के लिए छोड़ देता है और एक दिन प्रातः ६ बजे, दूसरे दिन ५ बजे और तीसरे दिन ७ बजे करता है और किसी दिन अधिक और किसी दिन न्यून व्यायाम करता है उसे इस प्रकार व्यायाम करने से यथेष्ठ लाभ नहीं होता, किन्तु लाभ के स्थान पर हानि ही होती है।

मिस्टर सैंडो पहलवान लिखते हैं--

"सड़क कूटने वाले सारा दिन (सड़ते-कूटते-कूटते) मानो व्यायाम ही करते रहते हैं। परन्तु वह एक दूसरे की अपेक्षा ऐसे हृष्ट-पुष्ट नहीं होते, जैसा कि होना चाहिये। कारण यह है कि उनका सड़क का कूटना इस अभिप्राय से नहीं होता, कि वह बल और स्वास्थ्य प्राप्त कर रहे हैं। किन्तु वे तो उदर-पूर्ति के लिए यत्न कर रहे हैं। इस पर भी वे व्यायाम न करने वालों से स्वस्थ और बलवान् होते हैं। क्योंकि व्यायाम (परिश्रम). अपना गुण तो अवश्य करता है। यदि इसके साथ मन की शक्ति भी होती तो बस फिर क्या था।"

सड़क कूटने वालों के समान लोहार भी दिन भर हथौड़ा चलाकर परिश्रम करता है, किन्तु उसके भुजदण्ड और पुट्ठे नियमित व्यायाम करने वाले पहलवान के समान सुदृढ़ और पुष्ट नहीं होते और न ही उसका शरीर वैसा स्वस्थ और बलयुक्त होता है। आलसी मनुष्यों की अपेक्षा तो लोहार आदि का शरीर स्वस्थ और दृढ़ ही होता है। क्योंकि परिश्रम वा कार्य का फल तो उसे मिलता ही है। किन्तु व्यायाम करने वाला पहलवान नियम से प्रतिदिन सायं-प्रातः कुछ काल ही व्यायाम करता है। यह नियमित व्यायाम उसके शरीर को सुडोल, सुन्दर, स्वस्थ बलयुक्त बना देता है। क्योंकि व्यायाम-व्यायाम ही है और कार्य-कार्य ही है। लोहार या सड़क कूटने वाले के कार्य को

अनियमित व्यायाम कहा जा सकता है। क्योंकि वह बल और स्वास्थ्य वृद्धि के लिए नहीं किया जाता और न ही उसमें स्वास्थ्य के किसी नियम का ध्यान रखा जाता है।

व्यायाम और इच्छा शक्ति—व्यायाम से पूरा लाभ उठाने के लिए पूर्ण मन लगा कर व्यायाम करना चाहिए। व्यायाम करते समय अपनी इच्छा को पूर्णतया शरीर के अङ्गों की ओर लगाना चाहिए। जिस मांस-पेशी या शरीर के अङ्ग को जितना दृढ़ और स्वस्थ करना चाहें, उस अंग वा पेशी में व्यायाम करते समय उतनी ही इच्छा को प्रविष्ट कर दें वा लगायें। इच्छा रहित व्यायाम जो भार समझकर किया जाता है, उससे कोई लाभ नहीं होता। व्यायाम के नाम से घबराना नहीं चाहिए, इसे मन लगाकर और आनन्द ले लेकर करना चाहिए।

प्रोफे र राममूर्ति लिखते हैं—

"व्यायाम करते समय मन को स्थिर रखना चाहिए और शरीर के प्रत्येक भाग पर व्यायाम के लाभ का चिन्तन करते रहें।"

सैण्डो पहलवान भी इस विषय में लिखते हैं—

"एक मनुष्य जो हृदय के साथ व्यायाम करता है, उसका थोड़ा बहुत व्यायाम भी उसको अधिक स्वस्थ और सुदृढ़ बनाता है, उस व्यक्ति की अपेक्षा जो व्यायाम तो बहुत करता है, किन्तु मन से नहीं करता। जिस अंग का व्यायाम करें, मन भी साथ ही साथ यह अनुभव करे कि अमुक अङ्ग बल प्राप्त कर रहा है।

इस प्रकार व्यायाम करने से मन की दृढ़ता और प्रबल-भावना के कारण मनुष्य के अङ्ग-प्रत्यंग बड़े शीघ्र ही सुन्दर, सुदृढ़, स्वस्थ और सुडौल बन जाते हैं। अतः व्यायाम करने के समय विशेषतया ब्रह्मचारी को एकाग्र चित्त होकर यह दृढ़ भावना रखनी चाहिये कि मेरी नस-नस और अङ्ग-प्रत्यंग में बल, तेज, वीर्य, वीरता, आरोग्य, स्वा-

स्थ्य, सुन्दरता, स्थिरता और पराक्रम शक्ति आदि सब सद्गुण प्रवेश कर रहे हैं। मेरा शरीर उन्नत, हृष्ट, पुष्ट और बलिष्ठ हो रहा है। इस संकल्प का असाधारण प्रभाव पड़ता है, जिसको मनुष्य अनुभव से ही जान सकता है। जो लोग बहुत शीघ्रता और द्रुतगति से व्यायाम करते हैं और व्यायाम में मन की शक्ति का प्रयोग नहीं करते, वे बहुत थोड़ा लाभ उठाते हैं। अतः व्यर्थ का भार (बेगार) समझकर व्यायाम करना केवल मूर्खता ही है। इसलिये शनैः-शनैः सावधानी से विधिपूर्वक मन लगा कर व्यायाम करना चाहिये। प्रोफेसर राममूर्ति तथा सैण्डो ने इसी कार्य के लिए बड़े शीशे का प्रयोग करना लिखा है।

वे लिखते हैं—

"व्यायाम करते समय सामने बड़ा शीशा रख कर उसमें शरीर के अङ्गों को ध्यान पूर्वक देखते हुए व्यायाम करने से शरीर सुन्दर और सुडौल हो जाता है।"

व्यायाम का समय

प्रत्येक व्यक्ति को सन्ध्या के समान प्रातः और सायं दोनों ही समय व्यायाम करना चाहिये। ये दोनों ही समय अच्छे हैं, अपेक्षाकृत प्रातःकाल का समय अधिक अच्छा है और ब्रह्मचर्य की साधना के लिए अच्छी लगन के ब्रह्मचारी रात को सोने के समय भी कठोर थकाने वाला व्यायाम करके सोते हैं। इससे स्वप्नरहित गाढ़ निद्रा आती है और स्वप्न दोष आदि के द्वारा वीर्य नाश नहीं होता। सायंकाल वा सोते समय जब भी व्यायाम करें, यह अवश्य ध्यान रक्खें कि खाया हुआ भोजन पच चुका हो और पेट हलका हो अर्थात् मल-मूत्र त्याग (शौच) के पश्चात् ही व्यायाम करना चाहिये। ग्रीष्म-काल में तो प्रातःकाल सूर्योदय से पूर्व ही निबट जाना चाहिये। गर्मी की ऋतु में सूर्योदय के पश्चात् तथा सायंकाल कठोर और बहुत अधिक व्यायाम

नहीं करना चाहिये । प्रातःकाल तो सदैव स्फूर्ति, उत्साह उत्पन्न करने वाला हलका व्यायाम दौड़, आसन आदि करना चाहिये । क्योंकि प्रातः काल बहुत अधिक और कठोर व्यायाम करने से श्रम (थकावट) के कारण आलस्य, तन्द्रा वा निद्रा तंग करती वा सताती है, जिसने दिन के कार्यों में बाधा पड़ती है । व्यायाम सदैव स्नान से पूर्व करना ही अच्छा रहता है, किन्तु व्यायाम के पीछे कुछ देर ठहर कर शरीर को ठण्डा करके स्नान करना चाहिये । व्यायाम करने से जब शरीर उष्ण हो और स्वेद (पसीना) आया हुवा हो तो उसी समय स्नान करने से हानि होने की सम्भावना है । किसी विशेष अवस्था वा शीतकाल में स्नान के पीछे भी व्यायाम किया जा सकता है । यदि स्नान के पीछे व्यायाम करना हो तो सन्ध्या से ही निबट कर करना चाहिये । वैसे स्नान के पश्चात् व्यायाम करने से आलस्य रहता है और व्यायाम के पश्चात् स्नान करने से शरीर में स्फूर्ति, स्वच्छता, और सुन्दरता आती है तथा व्यायाम का श्रम (थकावट) भी दूर हो जाता है और जो व्यायाम के द्वारा शरीर के रोम कूपों से दूषित मल निकला करता है, वह स्नान से धुलकर शरीर शुद्ध और पवित्र हो जाता है । इसलिये स्नान से पूर्व ही व्यायाम करना हितकर है । शीतकाल वा वसन्त ऋतु में साधारण लोगों के लिए भी और अच्छा पुष्टिकारक भोजन करने वालों के लिए सदैव ही व्यायाम लाभदायक है ।

महर्षि धन्वन्तरि महाराज लिखते हैं—

व्यायामो हि सदा पथ्यो बलिनां स्निग्धभोजिनाम् ।
स च शीते वसन्ते च तेषां पथ्यतमः स्मृतः ॥

(सुश्रुतसंहिता चिकित्सा० अ० २४ श्लोक ४२)

जो मनुष्य बलवान् हैं और जिनको घी,दूध, बादाम आदि स्निग्ध, पुष्टिकारक पदार्थ पर्याप्त मात्रा में खाने को मिलते हैं, ऐसे लोगों के लिये तो व्यायाम सदैव ही लाभदायक है । उनके लिए सदा आनन्द

ही आनन्द है। किन्तु वसन्त और शीत-ऋतु व्यायाम करने के विशेष ऋतु हैं। इन ऋतुओं में व्यायाम करना अत्यन्त लाभदायक माना गया है।

ऋषियां की इस आज्ञा के अनुसार व्यायाम के पश्चात् स्निग्ध, बलवर्द्धक पदार्थ अवश्य खाने चाहियें। जिन लोगों को व्यायाम के पश्चात् पुष्टिकारक भोजन खाने को नहीं मिलता, उन्हें अधिक व्यायाम न करके थोड़ा व्यायाम करना चाहिये; नहीं तो शरीर क्षीण होने लगता है। आसनों के व्यायाम में पौष्टिक भोजन के खाने की उतनी आवश्यकता नहीं है, जितनी दूसरे ढंग के कठोर व्यायामों में है। ऐसे लोगों को अखाड़े में जाकर व्यर्थ में सूखी हड्डियां नहीं रगड़वानी चाहियें।

व्यायाम करने वाले का भोजन

गोदुग्ध अथवा उससे बने दही आदि पदार्थ, बादाम इत्यादि वा कोई अन्य सात्विक पदार्थ प्रातःकाल व्यायाम के पश्चात् खा लेना चाहिये। क्योंकि व्यायाम के पीछे भूख लगा करती है। खाली पेट रहना अच्छा नहीं। भूखा रहने से हानि होती है।

ब्रह्मचारी रामप्रसाद 'बिस्मिल' अपनी आत्मकथा में लिखते हैं—

"विद्यार्थी प्रातःकाल शौचादि से निवृत्त हो व्यायाम करें, और सदैव कुएं के ताजे जल से स्नान करें। स्नान से निवृत्त हो यथा विश्वास परमात्मा का ध्यान करें। उपासना के पश्चात् थोड़ा सा जलपान (प्रातराश) करें। कोई फल, शुष्क मेवा, दुग्ध अथवा सबसे उत्तम यह है, कि गेहूं का दलिया रंधवा कर यथा रुचि मीठा या नमक डाल कर (वा वैसे ही) खावें। फिर अध्ययन करें।"

किंतु यह ध्यान रखें! कि व्यायाम की उष्णता दूर हो जाने पर जब शरीर सर्वथा शीतल (ठंडा) हो जाये, तभी कुछ थोड़ा सा खाना चाहिये। अधिक पेट भर कर खाना भी उस समय अच्छा नहीं। व्यायाम के पश्चात् तत्काल खाना भी बहुत हानि पहुँचाता है। इसलिये कुछ

ठहर कर खाना चाहिये । व्यायामी मनुष्य का भोजन सदैव नियत समय पर सात्विक, सरल (सादा), पौष्टिक; शीघ्र पचने वाला (हलका) और अल्प मात्रा में होना चाहिये । यह समझ कर कि मेरी जठराग्नि व्यायाम के कारण तीव्र और प्रदीप्त है, मैं अधिक भोजन पचा सकता हूँ, व्यायामी मनुष्य को अधिक भोजन नहीं ठूंस लेना चाहिये। और मांसादि अभक्ष्य, गांजा, भांग, शराबादि मादक द्रव्य, मिर्च, खटाई आदि चटपटे हानिकारक पदार्थों का सेवन नहीं करना चाहिये। कुछ लोग तो घृत, दुग्ध आदि पुष्टिकारक पदार्थ खाकर ही व्यायाम करने लग जाते हैं । कुछ लोग साथ-साथ खाते भी जाते हैं और व्यायाम भी करते जाते हैं । ऐसे लोगों का यही विचार है, कि खा-पीकर अथवा खाते-खाते व्यायाम करने से खाया-पीया सब पच जाता है और शक्ति बढ़ती है । यह उनकी बड़ी भयंकर भूल है । इस प्रकार करने से बड़ी हानि होती है । ऐसे लोग स्वास्थ्य के नियमों से अपरिचित और महामूढ़ होते हैं । ब्रह्मचारी अथवा किसी भी स्वास्थ्य-प्रेमी को ऐसे मूर्खों का अन्धानुकरण नहीं करना चाहिये ।

व्यायाम करके उसी समय बैठना, लेट (सो) जाना वा खड़े रहना हानिकारक है । जब तक शरीर और श्वास अपनी पहली स्वाभाविक अवस्था में न आ जायें और शरीर की उष्णता न्यून न हो जाये, तब-तक शरीर के अवयवों पर हाथ फेरते हुए शनैः-शनैः मन्द गति से टहलते रहना चाहिये और जो व्यायाम से आये हुए स्वेद हों, तो उन्हें तत्काल पोंछ डालना चाहिये । जब तक पसीने सूख न जायें और शरीर ठण्डा न हो, तब तक वेग से चलने वाले वायु से भी शरीर को बचाना चाहिये । व्यायाम करके तत्काल ही लघुशङ्का (मूत्र-त्याग) करना लाभदायक और आवश्यक है । इससे शरीर की व्यर्थ की उष्णता निकल जाती है, मूत्राशय के रोग नहीं होते, शरीर और मन दोनों शान्त होते हैं ।

ही आनन्द है। किन्तु वसन्त और शीत-ऋतु व्यायाम करने के विशेष ऋतु हैं। इन ऋतुओं में व्यायाम करना अत्यन्त लाभदायक माना गया है।

ऋषियों की इस आज्ञा के अनुसार व्यायाम के पश्चात् स्निग्ध, बलवर्द्धक पदार्थ अवश्य खाने चाहियें। जिन लोगों को व्यायाम के पश्चात् पुष्टिकारक भोजन खाने को नहीं मिलता, उन्हें अधिक व्यायाम न करके थोड़ा व्यायाम करना चाहिये; नहीं तो शरीर क्षीण होने लगता है। आसनों के व्यायाम में पौष्टिक भोजन के खाने की उतनी आवश्यकता नहीं है, जितनी दूसरे ढंग के कठोर व्यायामों में है। ऐसे लोगों को अखाड़े में जाकर व्यर्थ में सूखी हड्डियां नहीं रगड़वानी चाहियें।

व्यायाम करने वाले का भोजन

गोदुग्ध अथवा उससे बने दही आदि पदार्थ, बादाम इत्यादि वा कोई अन्य सात्विक पदार्थ प्रातःकाल व्यायाम के पश्चात् खा लेना चाहिये। क्योंकि व्यायाम के पीछे भूख लगा करती है। खाली पेट रहना अच्छा नहीं। भूखा रहने से हानि होती है।

ब्रह्मचारी रामप्रसाद 'बिस्मिल' अपनी आत्मकथा में लिखते हैं—

"विद्यार्थी प्रातःकाल शौचादि से निवृत्त हो व्यायाम करें, और सदैव कुएं के ताजे जल से स्नान करें। स्नान से निवृत्त हो यथा विश्वास परमात्मा का ध्यान करें। उपासना के पश्चात् थोड़ा सा जल-पान (प्रातराश) करें। कोई फल, शुष्क मेवा, दुग्ध अथवा सबसे उत्तम यह है, कि गेहूं का दलिया रंधवा कर यथा रुचि मीठा या नमक डाल कर (वा वैसे ही) खावें। फिर अध्ययन करें।"

किंतु यह ध्यान रखें! कि व्यायाम की उष्णता दूर हो जाने पर जब शरीर सर्वथा शीतल (ठंडा) हो जाये, तभी कुछ थोड़ा सा खाना चाहिये। अधिक पेट भर कर खाना भी उस समय अच्छा नहीं। व्यायाम के पश्चात तत्काल खाना भी बहुत हानि पहुँचाता है। इसलिये कुछ

ठहर कर खाना चाहिये। व्यायामी मनुष्य का भोजन सदैव नियत समय पर सात्विक, सरल (सादा), पौष्टिक; शीघ्र पचने वाला (हलका) और अल्प मात्रा में होना चाहिये। यह समझ कर कि मेरी जठराग्नि व्यायाम के कारण तीव्र और प्रदीप्त है, मैं अधिक भोजन पचा सकता हूँ, व्यायामी मनुष्य को अधिक भोजन नहीं ठूंस लेना चाहिये। और मांसादि अभक्ष्य, गांजा, भांग, शराबादि मादक द्रव्य, मिर्च, खटाई आदि चटपटे हानिकारक पदार्थों का सेवन नहीं करना चाहिये। कुछ लोग तो घृत, दुग्ध आदि पुष्टिकारक पदार्थ खाकर ही व्यायाम करने लग जाते हैं। कुछ लोग साथ-साथ खाते भी जाते हैं और व्यायाम भी करते जाते हैं। ऐसे लोगों का यही विचार है, कि खा-पीकर अथवा खाते-खाते व्यायाम करने से खाया-पीया सब पच जाता है और शक्ति बढ़ती है। यह उनकी बड़ी भयंकर भूल है। इस प्रकार करने से बड़ी हानि होती है। ऐसे लोग स्वास्थ्य के नियमों से अपरिचित और महामूढ़ होते हैं। ब्रह्मचारी अथवा किसी भी स्वास्थ्य-प्रेमी को ऐसे मूर्खों का अन्धानुकरण नहीं करना चाहिये।

व्यायाम करके उसी समय बैठना, लेट (सो) जाना वा खड़े रहना हानिकारक है। जब तक शरीर और श्वास अपनी पहली स्वाभाविक अवस्था में न आ जायें और शरीर की उष्णता न्यून न हो जाये, तब-तक शरीर के अवयवों पर हाथ फेरते हुए शनैः-शनैः मन्द गति से टहलते रहना चाहिये और जो व्यायाम से आये हुए स्वेद हों, तो उन्हें तत्काल पोंछ डालना चाहिये। जब तक पसीने सूख न जायें और शरीर ठण्डा न हो, तब तक वेग से चलने वाले वायु से भी शरीर को बचाना चाहिये। व्यायाम करके तत्काल ही लघुशङ्का (मूत्र-त्याग) करना लाभदायक और आवश्यक है। इससे शरीर की व्यर्थ की उष्णता निकल जाती है, मूत्राशय के रोग नहीं होते, शरीर और मन दोनों शान्त होते हैं।

आरम्भ आरम्भ में व्यायाम के पश्चात् प्यास लगा करती है। जो व्यायाम से होने वाले लाभ को प्रकट करती है। कोई-कोई मूर्ख इस प्यास को बुझाने के लिए तत्काल ही जल, शर्बत आदि कोई पदार्थ पी लेते हैं, जो अत्यन्त हानिकारक हैं। क्योंकि व्यायाम से जो लाभ होता है, ऐसे लोग जल पीकर उसे समाप्त कर देते हैं। व्यायाम के पश्चात् जल, शर्बत आदि कोई पदार्थ नहीं पीना चाहिये। यदि पीना ही हो और प्रभु किसी को दें, तो गाय का धारोष्ण दूध अथवा बादाम आदि रगड़ कर पीने चाहियें। किन्तु ये भी शरीर के शीतल होने पर ही पीने चाहियें। इनके पीने से जहाँ प्यास और भूख दोनों शान्त होती हैं, वहाँ शरीर को बल और शक्ति भी मिलती है।

भोजन करने के पश्चात् न्यून से न्यून ४ घण्टा पीछे व्यायाम करना चाहिये और व्यायाम करने से १ घण्टा पीछे भोजन करना चाहिये।

किन-किन को व्यायाम न करना चाहिये ?

चरक शास्त्र में लिखा है—

क्रोधशोकभयायासैः क्लान्ता ये चापि मानवाः।
ते वर्जयेयुर्व्यायामं क्षुधितास्तृषिताश्च ये॥
(सूत्रस्थान अ० ७)॥

अर्थ-ज्वर आदि रोगों में, क्रोध में, शोक में, भय की अवस्था में और बहुत भूख और प्यास लगने पर व्यायाम नहीं करना चाहिये।

इसी प्रकार जिस समय पेट बहुत भरा हुआ अथवा बहुत क्षुधा (भूख) हो, उस समय भी व्यायाम करना वर्जित है।

व्यायाम समय के वस्त्र

व्यायाम के समय का सबसे अच्छा वस्त्र (पोशाक) लङ्गोट ही है। वैसे तो व्यायाम करते समय लोग लङ्गोट के अतिरिक्त रूमाली, कच्छ,

जांघिया, बनियान, धोती, पाजामा, पैन्ट, तथा और भी अन्य अंग्रेजी ढंग के वस्त्र पहनते हैं। किन्तु बनियान, धोती, पाजामा, पतलून, आदि पहनकर व्यायाम करना तो व्यायाम के साथ हास्य ही करना है। यदि ऐसे लोग रजाई ओढ़ कर बिस्तर पर पड़े रहें तो व्यायाम की दुर्गति न हो। व्यायाम करने के समय शरीर खुला हुआ होना चाहिये और व्यायाम का वस्त्र शरीर में बंधा हुआ और सटा हुआ अर्थात् चुस्त भी हो, किन्तु अधिक खिंचा हुआ अर्थात् रक्त में किसी प्रकार की बाधा डालने वाला न हो। जैसे—पहलवानी जाँघिया मल्लयुद्ध (कुश्ती) के लिए तो अच्छा रहता है, किन्तु इसे पहनकर व्यायाम करने में कठिनाई और कष्ट होता है। इसी प्रकार ढीले-ढाले कच्छे या निकर भी व्यायाम के लिए उपयुक्त नहीं। इनके पहनने से व्यायाम के समय उचित स्फूर्ति और उत्साह नहीं होता। लङ्गोट को भी बहुत खींच कर नहीं बांधना चाहिये। लङ्गोट को कटि (कमर) में कसकर बांधने से बहुत हानि होती है। क्योंकि व्यायाम करते समय सारे शरीर में शिर से पग तक रक्त शीघ्रता पूर्वक दौड़ने लगता है। यदि उस समय कटि में लङ्गोट बहुत कसकर बंधा हुआ है तो वह रक्त की तीव्र गति को रोक देता है और रक्त की गति में बाधा पड़ने से स्वास्थ्य भी बिगड़ता और आयु भी घटती है। लङ्गोट या कोई अन्य वस्त्र जो बहुत कसकर बांधा जाता है, व्यायाम के समय हानि करता है। इसलिये लङ्गोट न बहुत ही ढीला और न ही बहुत खींच या कस कर बांधना चाहिये और व्यायाम के पश्चात् लङ्गोट को तत्काल नहीं खोल देना चाहिये। ब्रह्मचारी को तो लङ्गोट वा कौपीन के बिना क्षण भर भी नहीं रहना चाहिये। एक विशेष बात यह है कि प्रायः भारत में व्यायाम करने वालों के वस्त्र बहुत ही मलिन (गन्दे) रहा करते हैं। उनके वस्त्रों में से दुर्गन्ध आने लगती है, जो अत्यन्त ही हानि-कारक है। इससे अनेक प्रकार के रोगों की उत्पत्ति होती है। इसलिये

वस्त्रों को शीघ्र शीघ्र साबुन आदि से धो डालना चाहिये और सदैव शुद्ध ही रखना चाहिये।

व्यायाम का स्थान

व्यायाम करने का स्थान स्वच्छ, पवित्र, स्वास्थ्यप्रद और खुला हुआ हो। वायु बिना रोक-टोक के भली-भाँति आता जाता हो। वहाँ का वायु ताजा और शीतल हो, उस स्थान पर अथवा इधर-उधर कहीं निकट गलने सड़ने वाली वस्तुयें न हों। किसी प्रकार को दुर्गन्ध न आती हो, वहाँ की शुद्धि (सफाई) भी भली-भांति रखनी चाहिये। दुर्गन्धयुक्त स्थानों में कभी भूल कर भी व्यायाम नहीं करना चाहिये। ग्राम वा नगर से बाहर जंगलों, खेत्रों और उद्यान वाटिकाओं (बाग-बगीचे) का वायु और स्थान अधिक स्वच्छ और पवित्र होता है। किसी बड़ी नदी, जलाशय और तड़ाग का तट भी अधिक स्वास्थ्यप्रद होने से व्यायाम के लिये उपयुक्त है। ऐसे ही स्थानों को व्यायाम करने के लिए चुनें तो अधिक लाभ होगा। जो व्यायामशाला वा अखाड़े वाटिका या फुलवाड़ी में होते हैं, वे बहुत ही अच्छे होते हैं। बात तो जब है, जब विचारशील धनी-मानी लोग वा सार्वजनिक सभायें (सोसायटियाँ), पंचायतें अथवा हमारी राष्ट्रिय सरकार प्रत्येक ग्राम वा नगर के साथ बस्ती से कुछ दूर ऐसी व्यायामशालायें वा साधना मन्दिर बनायें, जिनमें सुगन्धित फूलों के पौधे लगे हुए हों। बहुत सुन्दर-सुगन्धित फूलों की फुलवाड़ी व्यायामशाला के चहुं ओर लगी हुई हो। व्यायामशाला के ऊपर लतायें चढ़ी हुई हों और वहाँ प्रतिदिन नियम से सुगन्धित सामग्री से अग्निहोत्र [हवन] होता हो। व्यायामशाला के अन्दर हनुमान्, भीष्म, भीम, अर्जुन, शंकर और दयानन्द आदि वीर योद्धाओं और आदर्श ब्रह्मचारियों के चित्र भी लगे हुए हों तो ऐसे स्थान पर प्रत्येक मनुष्य की स्वाभाविक इच्छा वा रुचि व्यायाम करने को होती है।

वैसे—व्यायाम एक प्रकार की तपस्या वा साधना है और किसी प्रकार की साधना वा तपस्या एकान्त में ही अच्छी होती है । इसलिए व्यायाम करने का स्थान नगर वा बस्ती से पृथक् ही होना चाहिये । जहाँ तक सम्भव हो, व्यायामशाला वा व्यायाम का स्थान खुला, सुरक्षित, रमणीय और एकान्त में हो । उसमें पानी का यथेष्ट प्रबन्ध हो । एक व्यक्ति के लिये व्यायाम के सब साधनों का जुटाना भी असम्भव है । व्यायामशाला में मुगदर, मोगरी, लाठी, तलवार आदि व्यायाम के साधन सुगमता से रखे जा सकते हैं । मनुष्य पर वायु-मंडल का प्रभाव भी बड़ा भारी पड़ता है । व्यायामशाला में जहाँ सभी व्यायाम करते हों, यदि वहाँ कोई व्यायाम न करने वाला पहुँच जाये, तो अन्य सबको व्यायाम करता देखकर उसकी भी इच्छा वा रुचि व्यायाम करने की होती है । परस्पर एक दूसरे को देखकर व्यायाम करने का उत्साह बढ़ता है । प्रतिकूल विचारों या परिस्थितियों के कारण आई हुई शिथिलता से किसी साथी का व्यायाम करने का नियम वा व्रत नहीं टूटता और व्यायाम करने की उत्सुकता सदैव बनी रहती है । व्यायामशाला के और भी अनेक लाभ हैं ।

देश के सुदिन भी उसी दिन आयेंगे, जब नगर-नगर और ग्राम-ग्राम में सर्वत्र व्यायामशालाएँ बन जायेंगी और व्यायाम को शिक्षा का अङ्ग बना दिया जायेगा । जहाँ व्यायामशाला आदि की सुविधा न हो, वहाँ अपनी सुविधा अनुसार बस्ती के बाहर एकान्त, शुद्ध वायु वाला स्थान व्यायाम के लिए चुन लेना चाहिए । कितने ही लोग अपने घरों व दुकानों में, चौपाल के किसी भाग में वा ऐसे ही ग्राम के अन्दर अन्य स्थानों पर व्यायाम करने लगते हैं जहाँ का वायु स्वच्छ नहीं होता । आने-जाने वाले लोग भी देखते हैं, व्यर्थ की भीड़ हो जाती है और जहाँ पर अधिक मनुष्य रहते हों वहाँ का वायु दूषित हो जाता है । प्रायः कुश्ती लड़ने वाले पहलवान भी अखाड़े नगर वा बस्ती के

अन्दर रखते हैं, यह उनकी भारी भूल है और इसी कारण वे अनेक प्रकार की हानियाँ उठाते हैं। ब्रह्मचारी को तो इस विषय में विशेष सावधानी रखनी चाहिये। वह सदैव ऐसे ही स्थान पर व्यायाम करे, जो शुद्ध पवित्र और खुला हुआ हो और जहाँ का वायु शुद्ध और शीतल है।

व्यायाम के प्रकार वा भेद

आज कल दो प्रकार के व्यायाम प्रचलित हैं। एक-भारतीय, जिन्हें देशी व्यायाम कहना चाहिये। जिसमें दण्ड, बैठक, सपाट, मुदगर, गदा, मोगरी, लाठी, पट्ठा, बनैटी, तलवार, मल्ल युद्ध (कुश्ती), मल्लखम्भ का व्यायाम, तैरना, दौड़ना, कूदना, कबड्डी आदि खेल तथा आसनों के सर्व श्रेष्ठ व्यायाम सम्मिलित हैं। इसी प्रकार और भी अनेक व्यायाम व्यक्तिगत और सांघिक प्रचलित हैं। दूसरे पाश्चात्य ढंग के विदेशी व्यायाम वा खेल फुटबाल, वालीबाल, क्रिकेट, हाकी, टेनिस, बैडमिन्टन, सिंगलबार, डबलबार, मुक्काबाजी, (Boxing) और प्रोफेसर सैण्डो की विशेष व्यायाम डम्बल और भार उठाना (Weight lifting) इत्यादि अनेक प्रकार के व्यायाम प्रचलित हैं।

कौन सा व्यायाम करें ?

व्यायाम करने वालों के सम्मुख एक समस्या खड़ी हो जाती है, कि वे अपने लिए कौन सा व्यायाम चुनें। महर्षि धन्वन्तरि जी इसका उत्तर देते हैं।

वयोबलशरीराणि देशकालाशनानि च।
समीक्ष्य कुर्याद् व्यायाममन्यथा रोगमाप्नुयात्॥

(सुश्रुत संहिता चिकित्सा० अ० २४ श्लोक ४८)

प्रत्येक व्यक्ति को चाहिये कि वह अपनी आयु, बल वा शक्ति

शरीर, प्रकृति, देश वा स्थान, काल वा ऋतु और भोजन के अनुसार भली भांति विचार कर उचित व्यायाम करे। जो उपरोक्त बातों को बिना विचारे व्यायाम करता है, वह अनेक प्रकार के रोगों में फंस जाता है।

क्योंकि व्यायाम का उद्देश्य मनुष्य के शरीर, मन और आत्मा को सुन्दर स्वस्थ; सुडौल, बलवान्, पवित्र और शक्तिशाली बनाना है। अतः जिस समय व्यायाम से मनुष्य की शारीरिक, मानसिक और आत्मिक सभी प्रकार की उन्नति हो, यथार्थ में उसी को व्यायाम कह सकते हैं और ऐसे सर्वगुण सम्पन्न व्यायाम हमारे प्राचीन पुरुषाओं के बहुत लम्बे अनुभव के पश्चात् प्रचलित किये हुए भारतीय देशी ढंग के व्यायाम ही हैं, जो हमें परम्परागत प्राप्त हैं।

महर्षि धन्वन्तरि जी ने आयु, अवस्था आदि को विचार कर व्यायाम करने का आदेश दिया है। इसलिए सर्वप्रथम अपने शरीर की परीक्षा करके यह देखना चाहिए, कि मेरा कौन सा अङ्ग निर्बल है। जैसे-किसी का आमाशय (पेट) खराब है। भोजन ठीक नहीं पचता और पाचनशक्ति बिगड़ी हुई है, तो उसे अन्य अङ्गों की व्यायाम के साथ पेट की व्यायाम पर विशेष ध्यान देना चाहिये। इस प्रकार नियमित व्यायाम करने से उसका पेट बिना किसी औषध के ठीक हो जायगा। जो व्यायामशील होकर भी वैद्यों और डाक्टरों के पास जाता है, उसका व्यायाम करना व्यर्थ ही है। क्योंकि व्यायाम करने वाले को रोग नहीं हो सकते। यदि किसी भूल से हो भी जाये, तो व्यायाम के द्वारा ही उसे भगा देना चाहिये। प्रत्येक अङ्ग को सुदृढ़ और नीरोग बनाने वाले प्राचीन तथा भारतीय ढंग के व्यायाम आसन आदि ही हैं। आज इनका महत्त्व योरप आदि पाश्चात्य देशों के लोग भी भलीभांति समझने लगे हैं। इसीलिये इनका प्रचार अमरीका आदि देशों में खूब बढ़ रहा है।

कलियुगी भीम प्रो० राममूर्ति इस विषय में अपना अनुभव लिखते हैं—

"पाँच वर्ष की आयु में मुझे दमा के लक्षण दिखाई दिये। पिता जी की आज्ञा से मैंने व्यायाम करना आरम्भ कर दिया। जिसके कारण मेरा रोग दूर हो गया। मेरे सम्मुख भीमसेन, हनुमान् जैसे वीरों की मूर्तियां और चित्र सदैव रहा करते थे। मैं निरन्तर यही सोचा करता था, कि इनके समान नहीं हो सकता, तो अपने शरीर को बलवान् तो अवश्य बना सकता हूँ। दस वर्ष की आयु में स्थानीय कालिजियेट स्कूल के अखाड़े में भर्ती हो गया। उन्हीं दिनों पहलवानों की कुश्ती की खबर सुनकर मेरे मन में भी उत्साह उत्पन्न हो गया। मैं पहलवान बनने की इच्छा से व्यायाम करने लगा। ज्यों-ज्यों रुचि बढ़ती गयी, त्यों-त्यों व्यायामों का अपना अभ्यास बढ़ाता गया। मैंने बड़े उत्साह से सैण्डो का डम्बल घुमाना शुरु किया। परन्तु दो वर्ष के बाद ही उसे हताश होकर छोड़ दिया। इसका मुख्य कारण यह था, कि उससे मुझे विशेष लाभ नहीं प्राप्त हुआ। प्रारम्भ की आयु में मैंने हारीजैन्टलबार पैरेललबार, रिंग आदि विदेशी ढङ्ग की कसरतें कीं। कुछ दिनों के पश्चात् इन्हें भी छोड़ दिया और देशी व्यायाम करने लगा। जितने देशीय प्रसिद्ध पहलवान मिलते गये, उन सबसे मैंने शारीरिक-शक्ति बढ़ाने की भारतीय प्रथा और उपाय पूछे। परन्तु कोई सन्तोषप्रद विधि न बता सका। इस समय तक मैंने इन्ट्रैन्स क्लास तक अंग्रेजी और थोड़ी संस्कृत पढ़ ली थी। संस्कृत के पठन-पाठन में मुझे विशेष आनन्द आया। शारीरिक उन्नति के साथ साथ अपने आर्य धर्म के शास्त्र मूल संस्कृत भाषा में पढ़े। गीता के साथ-साथ सुश्रुत आदि आयुर्वैदिक ग्रन्थ भी देखे। अपने शास्त्र के अध्ययन में मुझे शारीरिक उन्नति का सर्वोत्तम उपाय सुझाई पड़ा। अतः समस्त विदेशी ढंग छोड़ कर यही ग्रहण किया और घोषणा कर दी, कि भीम, द्रोण, हनुमान्, अर्जुन

आदि पूर्वजों के गौरव को बढ़ाने वाली वही सर्वश्रेष्ठ व्यायाम की प्रणाली है। इस देशी व्यायाम में सामान और औजार आवश्यक नहीं। धन का कुछ व्यय नहीं। वह अभ्यास ही सब कुछ है, जिससे शरीर के पुट्ठे दृढ़ होते हैं। पुट्ठों की दृढ़ता के लिए प्राणायाम की आवश्यकता है। मैं प्रतिदिन ३ बजे से ९ बजे तक प्राणायाम करता था और १२ मील बिना विश्राम पैदल चलता था। इसके अतिरिक्त प्रतिदिन एक घण्टा जल में तैरता था।"

वे एक अन्य स्थान पर लिखते हैं—

"आरम्भ-आरम्भ में व्यायाम करने में शरीर अकड़ने लगता था। बहुत बार मैं आधा व्यायाम करके ही छोड़ देता। अखाड़े में आना दूभर ज्ञात पड़ता। किंतु तुरन्त ही मेरे मन के देवता जाग पड़ते। अपने आदर्श को सिद्ध करने की मैंने प्रतिज्ञा कर ली थी। यदि ऐसा न कर सकूं तो मृत्यु अच्छी। अन्त में दुर्बलताओं पर मुझे विजय मिली। धीरे-धीरे व्यायाम बढ़ने लगा। उस समय मेरे व्यायाम का ऐसा क्रम था—भोर ही उठकर घर से ३ कोस तक दौड़ता। एक फौजी खाड़ा था, वहां जा कर खूब कुश्ती लड़ता। लड़कर फिर ३ कोस दौड़ते हुए घर आता। यहाँ अपने चेलों के साथ कुश्ती लड़ता। उस समय अखाड़े में ड़ेढ़ सौ जवान थे। उनसे कुश्ती करने के पश्चात् विश्राम कर मैं तैरने चला जाता ..। फिर सांझ को १५०० से लेकर ३००० तकदण्ड और ५०००से लेकर १०८००तक बैठक कर लेता, यही मेरा दैनिक व्यायाम था! इसका फल यह हुआ कि १६ वर्ष की आयु में मुझ में इतनी शक्ति हो गई, कि नारियल के पेड़ पर जोर से धक्का मारता, तो २-३ नारियल टूटकर भद-भद गिर पड़ते। इसी व्यायाम के कारण आज मेरी छाती ४५ इंच चौड़ी है और फैलाने पर ५७ इंच हो जाती है। शरीर की लम्बाई ५ फीट ६½ इंच और तोल २½ मन है।"

रामर्मूति के बल के विषय में उस समय का एक लेखक लिखता है—

"आज भारत के घर-घर में रामर्मूति का नाम फैला है। वह कलियुगी भीम है। हाथी को अपनी छाती पर चढ़ा लेते हैं। २५ घोड़ों की शक्ति की २-२ मोटरें रोक लेते हैं। छाती पर बड़ी सी चट्टान रख कर उस पर पत्थर को टुकड़े-टुकड़े करवा देते हैं। आधी इंच मोटी लोहे की जंजीर कमल की डण्डी के समान सहज में ही तोड़ देते हैं। ५० मनुष्यों से लदी हुई गाड़ी को देह पर से उतरवा देते हैं। यही नहीं, ७५ मील की तेजी से दौड़ती हुई हवा गाड़ी उनके शरीर पर से पार हो जाती है। यह अलौकिक बल है, दैवी शक्ति है, सुनकर आश्चर्य होता है, देखकर दाँतों तले अंगुली दबानी पड़ती है। किंतु यह सब बातें देखने में असाध्य प्रतीत होने पर भी असम्भव नहीं हैं। यदि प्रयत्न करे, तो प्रत्येक मनुष्य रामर्मूति के समान हो सकता है। प्रयत्न भी हो और सच्ची लगन भी हो।"

यह पहले ही लिखा जा चुका है कि रामर्मूति बाल्यकाल में श्वास रोग के रोगी थे। वे अपनी देह की निर्बलता पर बड़े दुःखी रहते थे। भीम, लक्ष्मण, हनुमान् आदि वीर योद्धाओं की कथा सुनकर उनके मन में सच्ची लग्न उत्पन्न हुई। उन्होंने व्यायाम को अपने जीवन का अंग बनाया। वे ब्रह्मचर्य के कट्टर पक्षपाती थे। शारीरिक और मानसिक पवित्रता को ब्रह्मचर्य की नींव समझते थे। ब्रह्मचर्य की धुन में ही उन्होंने ४४-४५ वर्ष की आयु तक विवाह नहीं किया। भारत के बालकों और युवकों के लिये उन्होंने ब्रह्मचर्य और प्राणायाम का क्रियात्मक प्रचार किया। उनका स्वभाव बड़ा हंसमुख था। वे हंसी को स्वास्थ्य के लिए बड़ा उपयोगी समझते थे।

वे सदैव यह कहा करते थे—

"मन से, वचन से और तन से पवित्र रहो। सादा भोजन करो।

जीवन सरल रखो। प्रतिदिन व्यायाम करो। यही संसार में सुखी रहने का मूलमन्त्र है।"

वे नवयुवकों को सदैव इस प्रकार उत्साहित किया करते थे—"निष्फलता ! निष्फलता !! निष्फलता क्या है ? हमने नहीं जाना। एक बार, दो बार, तीन बार, पाँच बार, दस बार प्रयत्न करते चलो, सफलता अवश्य मिलेगी। "Do or die" 'करो या मरो' "कार्यं वा साधयेयम्—देहं वा पातयेयम्", 'करूँगा या मरूँगा' यही हमारा मूलमन्त्र है।"

वे भारत माता के होनहार बालकों की दुर्दशा देखकर उनके उद्धार के लिये व्याकुल होकर कहा करते थे—

"भारत के बालकों और युवकों का उद्धार—यही मेरे जीवन का मूल सूत्र है। वे चाहे कृष्ण और लक्ष्मण, भीम और भीष्म, या हनुमान के समान हों या न हों; किन्तु देश में युवकों की एक अजेय सेना तैयार हो, यही मेरी सदुःकामना है। देश के कोने-कोने में घूम कर मैंने युवकों को प्रोत्साहन दिया है। मन, वचन, तन और धन से भारत के नवयुवकों का मैं सेवक बना हूं। एक दिन मैं संसार से उठ जाऊँगा; किन्तु उसके पहिले मैं यह आश्वासन चाहता हूं कि मेरी सेवा भारत माता के चरणों में स्वीकृत हुई है।"

व्यायाम के विषय में फांसी के तख्ते पर हंसते-हंसते झूलने वाले ब्रह्मचारी रामप्रसाद जी लिखते हैं—

"सब व्यायामों में दण्ड-बैठक सर्वोत्तम है। जहाँ जी चाहा, व्यायाम कर लिया। यदि हो सके तो प्रोफेसर राममूर्ति की विधि से दण्ड तथा बैठक करें। प्रोफेसर जी की रीति विद्यार्थियों (ब्रह्मचारियों) के लिए बड़ी लाभदायक है। थोड़े समय में ही पर्याप्त परिश्रम हो जाता है। दण्ड-बैठक के अतिरिक्त शीर्षासन और पद्मासन का भी

अभ्यास करना चाहिये और अपने रहने के स्थान में वीरों, महात्माओं के चित्र रखने चाहियें।"

ब्रह्मचारी रामप्रसाद जी प्रोफेसर राममूर्ति की पद्धति से प्रतिदिन नियमपूर्वक व्यायाम करते थे। इससे उनको कितना आश्चर्यजनक लाभ हुआ; इस विषय में वे अपनी आत्मकथा में लिखते हैं—

"व्यायाम आदि करने के कारण मेरा शरीर बड़ा सुगठित हो गया था और रंग निखर आया था। मेरा स्वास्थ्य दर्शनीय हो गया। सब लोग मेरे स्वास्थ्य को आश्चर्य की दृष्टि से देखा करते।"

ब्रह्मचारी रामप्रसाद जी के विषय में एक स्थान पर लिखा है—

"उनमें असाधारण शारीरिक बल था। तैरने आदि में वे पूरे पण्डित थे। थकान किसे कहते हैं, वह जानते ही न थे। ६०-६० मील निरन्तर चलकर वह आगे चलने का साहस रखते थे। व्यायाम और प्राणायाम वह इतना करते थे कि देखने वाले आश्चर्यान्वित होते थे।"

व्यायाम और प्राणायाम

वास्तव में प्रोफेसर राममूर्ति की पद्धति कोई अपनी निज की पद्धति नहीं, वह तो हमारे प्राचीन ऋषि-मुनियों की ही पद्धति है। प्रोफेसर राममूर्ति ने मुख्यतया व्यायाम के लिए जिस नियम का आश्रय लिया वह प्राणायाम है।

वे स्वयं इस विषय में लिखते हैं—

"व्यायाम प्राणायाम के साथ करो अर्थात् श्वास मुख से न लेकर नाक से लो और पूरक, कुम्भक और रेचक करते हुए करो।"

लोग यह समझते हैं कि प्राणायाम तो योग का ही एक अङ्ग है। इसका व्यायाम के साथ कोई सम्बन्ध नहीं। इसी भूल के कारण लोगों को व्यायाम से पूर्ण लाभ नहीं होता। प्राणायाम व्यायाम का

प्राण है और इसका हमारे शरीर के साथ सीधा सम्बन्ध है, यह समझ लेना आवश्यक है। इसलिए थोड़ा खोल कर लिखा जाता है।

जब कोई व्यायाम आरम्भ करता है, तो उसके पुट्ठों वा मांस-पेशियों में पीड़ा हो जाती है। इसका अधिक अनुभव उस व्यक्ति को होता है, जो प्रतिदिन व्यायाम नहीं करता। किन्तु एक दिन देखा-देखी या किसी के उत्साहित करने पर सौ-पचास बैठकें इकट्ठी ही लगा डालता है अथवा एकाध मील की दौड़ लगा लेता है। इससे इसकी रानें और पिंडलियां अकड़ जाती हैं और भरी-भरी प्रतीत होती हैं। उठने-बैठने में बड़ा कष्ट होता है। क्योंकि जिन पुट्ठों से कभी कार्य नहीं लिया गया, ऐसे सुख (आराम) में रहने वाले पुट्ठों के छोटे-छोटे भाग (रेशे) व्यायाम करने से टूट जाते हैं और यह टूटकर शरीर में इकट्ठे हो जाते हैं और इनसे सूजन उत्पन्न होकर कष्ट होता है। किन्तु प्रतिदिन व्यायाम वा परिश्रम के अभ्यास से वे ही भाग (रेशे) सुदृढ़ हो जाते हैं और टूटते ही नहीं अथवा बहुत कम टूटते हैं। क्योंकि हमारे रक्त में जो प्राणवायु है, वह इन टूटे हुए भागों (रेशों) को जीवनशक्ति (औक्सीजन) श्वास द्वारा बाहर के शुद्ध वायु से हमारे अन्दर आती रहती है और प्रश्वास द्वारा टूटे हुए व्यर्थ के भागों (रेशों) वा रक्त के मल आदि से मिलकर बना हुआ विषैला वायु (कार्बन) बाहर निकल जाता है। यही कारण है कि व्यायाम करने के समय श्वास चढ़ जाता है और श्वास-प्रश्वासों की गति बढ़ जाती है। क्योंकि साधारण अवस्था में टूट-फूट कम होती है। इसलिए साधारण श्वास-प्रश्वास से कार्य चल जाता है। किन्तु व्यायाम करने से जब टूट-फूट अधिक बढ़ जाती है, तब इसको ठीक करने के लिए अधिक प्राणवायु चाहिये और अधिक प्राणवायु के लिए अधिक श्वास और प्रश्वास की आवश्यकता पड़ती है। इसीलिए व्यायाम के समय अधिक श्वास चढ़ जाते हैं। जब व्यायाम के समय अधिक श्वास चढ़

जाते हैं और व्यायाम के समय प्राणवायु हमारे फेफड़ों में जाता है और रक्त के साथ मिलकर शरीर के कोने-कोने में व्याप्त हो जाता है, जो उस समय यह शरीर की उष्णता को पसीने के द्वारा बाहर निकलता है। इसलिये व्यायाम करने से हमें पसीना आता है। जिस समय हम कोई कठोर व्यायाम करते हैं, तब श्वास-प्रश्वास की गति बढ़ जाती है। कार्बन के ओसजन के साथ मिलने से जो रासायनिक क्रिया होती है, उससे शरीर की उष्णता भी बढ़ जाती है। यदि प्राण और अपान की टक्कर वा संघर्ष से उत्पन्न हुई उष्णता को कम न कर दिया जाय तो, ज्वर हो जाय। क्योंकि शरीर की उष्णता बढ़ जाने का ही नाम ज्वर है। इस अधिक बढ़ी हुई उष्णता को हमारा प्राणवायु श्वास प्रश्वास तथा पसीने के द्वारा हमारे शरीर से बाहर निकाल फेंकता है। उष्णकाल में हम जल को ठण्डा रखने के लिए उसे मिट्टी के घड़े में भर देते हैं। ऐसा करने से घड़े के बाह्य भाग पर जो जल आ जाता है, वह उष्णवायु के साथ छू कर वाष्प (भाप) बन जाता है। वाष्प बनने के लिए जिस उष्णता की आवश्यकता होती है, उसको घड़े के जल से ले लेता है। इसी प्रकार जब व्यायामादि के कारण हमारे शरीर में उष्णता बढ़ती है, तब घड़े के समान हमारा शरीर भी पसीजने लगता है और पसीने के द्वारा शरीर में बढ़ी हुई उष्णता बाहर निकल जाती है और पसीने के साथ ही अनेक प्रकार के विजातीय मल [विष] जो अनेक प्रकार के रोगों की उत्पत्ति के कारण हैं, सहज में ही शरीर से बाहर निकल जाते हैं।

इसीलिए वेद भगवान् ने भी व्यायाम को परम आरोग्य का मुख्य साधन माना है—

विष्कन्धं सर्वा रक्षांसि व्यायामे सहामहे ॥
(अथर्व० कां० २, सू० ४. मं० ४)

निर्बल करने वाले शोषक रोगों को और सब राक्षसों अर्थात सब

रोग कृमियों को हम व्यायाम के द्वारा दबाते हैं वा नष्ट करते हैं।

पाठक ! इतना लिखने से समझ गये होंगे कि श्रम (थकान) को दूर करने के लिए, टूटे हुए पुट्ठों को जोड़ने के लिए अथवा उनमें नवजीवन लाने के लिए और व्यायाम से उत्पन्न हुए विष को दूर करने के लिए प्राणवायु की बड़ी भारी आवश्यकता है।

इसलिए हमें अपने शरीर के अन्दर अधिक से अधिक प्राणवायु को प्रविष्ट करना चाहिये। प्राणवायु का अधिक प्रवेश शीघ्र-शीघ्र श्वास लेकर अथवा गहरे श्वास लेकर ही किया जा सकता है। जिस प्रकार नदी का मार्ग भीड़ा (तङ्ग) होने से उसकी धार व गति का वेग बढ़ जाता है उसी प्रकार हमें भी व्यायाम के समय शीघ्र श्वास लेना पड़ता है और हमारा श्वास फूल जाता है। यदि हम चाहते हैं कि हमारा श्वास न फूले, तो हमें गहरे श्वास लेने का स्वभाव डालना चाहिए। गहरा श्वास सारे फेफड़ों में जाता है। प्रायः लोगों को श्वास लेना नहीं आता। उनका थोड़ा सा श्वास थोड़े से फेफड़ों में जाकर उलटा चला आता है। गहरे श्वास लेने का स्वभाव अभ्यास से ही होता है। अनेक रोगों, पैतृक दोषों और लेटने बैठने की विधि न जानने के कारण लोग छोटे छोटे श्वास लेते हैं। इसलिए फेफड़ों के अनेक रोगों में ग्रस्त रहते हैं। इसलिए व्यायाम के समय हमें गहरा श्वास लेने का अभ्यास करना चाहिए जिससे हमारे फेफड़े स्वस्थ और लचकीले हो जायें। व्यायाम में गहरे श्वासों का नाम ही प्राणायाम है। गहरा श्वास लेने के समय हमें मन की शक्ति के द्वारा फेफड़ों के प्रत्येक भाग में वायु पहुँचाने का प्रयत्न करना चाहिए। व्यायाम के समय हमारी नासिका के दोनों छिद्र शुद्ध और खुले हुए होने चाहियें। आसन, दण्ड, बैठक कोई भी व्यायाम आप करें। सदैव प्राणायाम के साथ करें। यही हमारी प्राचीन शैली है। प्राणायाम वा गहरे श्वास लेने के महत्त्व को अब योरप आदि पाश्चात्य देशों के लोग भी समझने

लगे हैं। और यही प्राणायाम की विधि Deep breathing के नाम से प्रसिद्ध है।

इङ्गलिस्तान के डाक्टर ऊस्टेस माइल्ज अपनी एक पुस्तक में श्वास लेने की विधि के विषय में लिखते हैं—

"पूर्ण श्वास लेने की विधि प्राचीन आर्यग्रन्थों में लिखी है। श्वास सावधानी से लो अर्थात् यदि तुम प्राकृतिक रूप से भली भांति श्वास लेना नहीं जानते तो अभ्यास करो। श्वास गहरा लेना चाहिए कि सम्पूर्ण फुफ्फुस भर जावें और फिर सम्पूर्ण श्वास बाहर भी निकालना चाहिए। उत्तम रूप से श्वास लेने का अभ्यास बहुत गुणकारी है। और एक ऐसी कला है जिसे मनुष्य को प्रतिक्षण पूर्ण करते रहना है, बुढ़ापे में जाकर इसे छोड़ा नहीं जा सकता। वह इसे मरते दम तक पूरा करता है और लाभ उठा सकता है। सहस्रों मनुष्य ऐसे हैं जो श्वास लेने की ठीक विधि को नहीं जानने। उत्तम प्रकार से एक दो वर्ष श्वास लेने का अनुभव कर लो, फिर तुम्हें स्वयं ज्ञात हो जायगा कि फुफ्फुस की वायु की मात्रा दुगुनी हो गई है।"

वे आगे लिखते हैं—"उत्तम विधि से श्वास लेना शारीरिक स्वास्थ्य और स्वास्थ्य रक्षा के नियमों के लिए है। इससे स्वास्थ्य बढ़ता है, उत्तम रूप से श्वास लेने से रूप-रङ्ग ठीक हो जाता है और मनुष्य का जीवन सुख भोगने के योग्य हो जाता है। और हार्दिक वा मानसिक विचार उत्तम हो जाते हैं। उत्तमरूप से श्वास लेने से धन और शक्ति व्यर्थ नष्ट नहीं हो पाती। इससे मनुष्य अपने शरीर और मन को वश में कर सकता है।"

वैसे तो कोई भी व्यायाम करें फुफ्फुस का व्यायाम भी साथ ही होता जाता है। क्योंकि सभी व्यायामों में श्वास शीघ्र-शीघ्र आता जाता है, इससे फुफ्फुस खूब बढ़ते और सिकुड़ते हैं। अच्छी से अच्छी

वायु रक्त को शुद्ध करती है। रक्त का भ्रमण बढ़ता है और शरीर का मल (मवाद) बाहर निकलता है। कुछ मल तो स्वेद द्वारा निकल जाता है, कुछ व्यायाम की उष्णता से जल जाता है, कुछ रक्त के साथ मिलकर फुफ्फुस में आकर शुद्ध हो जाता है। कुछ श्वास मार्ग से बाहर निकल जाता है, कुछ मल मूत्र के साथ बाहर निकल जाता है। ये सब लाभ व्यायाम से होते हैं। किन्तु प्राणायाम वा गहरे श्वासों के अभ्यास के द्वारा रक्त और शरीर की शुद्धि और फुफ्फुस का व्यायाम अन्य सभी व्यायामों की अपेक्षा सैंकड़ों गुना लाभदायक होता है। इसलिए अन्य धार्मिक नित्य कर्मों के साथ दैनिक प्राणायाम करने की आज्ञा प्राचीन शास्त्रों ने दी है। गहरे श्वासों के अभ्यास का नाम ही प्राणायाम है यह पहले ही बताया जा चुका है। अतः सदैव गहरे श्वास लेवें।

गहरे श्वास लेने की विधि का अभ्यास

किसी ऐसे शान्त और एकान्त स्थान में जहाँ का वायु शुद्ध और शीतल हो, जिसमें धूल या धुआँ आदि हानिकारक वस्तुएँ न मिली हुई हों, सिद्धासन वा किसी आसन में जिसमें आप सुखपूर्वक बैठ सकते हों, इस प्रकार बैठ जायें कि आपकी छाती, ग्रीवा (गला) और सिर तीनों एक सीध में रहें, मेरुदण्ड (रीढ की हड्डी) भी सीध में रहना चाहिए। धीरे-धीरे नासिका द्वारा श्वास को बाहर निकालें, जब तक छाती, आमाशय (पेट) रिक्त न हो जायें, श्वास को निरन्तर निकालते रहें अर्थात् सारा वायु निकाल देना चाहिए। इस श्वास के बाहर निकालने की क्रिया को रेचक कहते हैं। फिर इसी प्रकार धीरे-धीरे श्वास को भीतर लें और जब तक छाती और आमाशय भली भान्ति न भर जाएँ, लेते ही रहें; इस श्वास के भरने की क्रिया को पूरक कहते हैं। इस प्रकार आरम्भ-आरम्भ में रेचक और पूरक का

अनेक बार अभ्यास करें । जब एक दो मास के अभ्यास के पश्चात् श्वास का निकालना और भरना भली भान्ति आ जावे तभी बाहर वा अन्दर श्वास के रोकने का अभ्यास करना चाहिए ।

श्वास के बाहर वा अन्दर रोकने के अभ्यास का नाम ही कुम्भक है । यदि किसी की इच्छा आरम्भ में ही श्वास के रोकने की हो तो थोड़ी देर रोकना चाहिए । रोकने का समय धीरे-धीरे बढ़ाना चाहिए; बलपूर्वक रोकने से हानि होती है । अभ्यास से बाहर और भीतर दोनों ओर श्वास के रोकने की अवधि वा (कुम्भक) का समय स्वयमेव बढ़ जाता है । रेचक वा पूरक का अभ्यास सीधे खड़े होकर, लेट कर, चलते हुए, अथवा पश्चिमोत्तान आसन में भी किया जा सकता है । व्यायाम करने से पहले एक दो बार भस्त्रिका प्राणायाम करने से बड़ा लाभ होता है, जिसकी विधि मेरे लिखे प्राणायाम के लेख में देख लेवें । इस प्रकार भस्त्रिका तथा गहरे श्वासों का किया गया यह अभ्यास फेफड़ों को स्वस्थ और लचकीला बना देता है । लचकीले फेफड़ों में श्वास वा प्राण की मात्रा अधिक आती है । जब हम एक बार में अधिक प्राण अन्दर भर लेंगे तो शीघ्र ही दूसरा श्वास लेने की आवश्यकता न होगी । इसी को गहरा वा उत्तम श्वास कहते हैं । इस प्रकार व्यायाम सम्बन्धी प्राणायाम का अभ्यास कर लेने के पश्चात अभ्यासी को रात दिन गहरे श्वास लेने का ही अभ्यास पड़ जाता है । वह व्यायाम वा अन्य पकार के परिश्रम से भी थकता नहीं । और उसका शरीर शुद्ध, स्वस्थ, सुन्दर, सुदृढ़, निर्मल और दीर्घायु वाला हो जाता है । क्योंकि व्यायाम के प्रत्येक श्वास का सीधा सम्बन्ध हमारे स्वास्थ्य, बल और आयु के साथ है, इसलिए व्यायाम करते समय ब्रह्मचारी क्या सभी को फेफड़ों और गहरे श्वास लेने का पूरा ध्यान रखना चाहिए । व्यायाम करते समय जब शरीर या शरीर के किसी अङ्ग को बल लगाना पड़ता है वा विशेष परिश्रम करना पड़ता है, उस

समय श्वास अन्दर भरा हुआ होना चाहिए और श्वास को अन्दर ही रोकना चाहिए अर्थात् आभ्यन्तर कुम्भक करें। व्यायाम में किस समय रेचक, पूरक वा कुम्भक करना चाहिए यह आप भली भांति दण्ड, बैठक आदि की विधि से समझ जायेंगे।

प्रोफेसर राममूर्ति की व्यायामों में श्वास की क्रिया का बहुत ध्यान रखा जाता है। इस लिए जिन दण्ड बैठकों का वे प्रचार करते थे तथा नवयुवकों और विद्यार्थियों के लिए अधिक उपयोगी समझ कर उन्हें सदैव करने का अनुरोध किया करते थे, उन्हीं का उल्लेख किया जाता है—

"व्यायाम तो सभी पहलवान करते हैं, किन्तु वे व्यायाम के साथ श्वास, प्रश्वास के नियमों का ध्यान नहीं रखते। इसलिये उनकी शक्ति को हानि पहुँचना स्वाभाविक बात है"।

प्रो० राममूर्ति ने प्राचीन आयुर्वेद शास्त्रों का अध्ययन किया था। इसलिये इस त्रुटि को दूर करने का प्रयत्न किया और इसमें उन्हें सफलता भी मिली। इसलिये प्रो० राममूर्ति के सभी व्यायामों का (देशी होते हुए भी) विशेष आदर है। क्योंकि उन्होंने प्राचीन प्रणाली का अनुसरण किया है और श्वास-प्रश्वास के नियमों का व्यायाम में विशेष ध्यान रखा है। इसलिये उनके व्यायाम शरीर के अन्य अङ्गों की भान्ति मानसिक शक्तियों के लिये भी लाभदायक हैं।

प्रोफेसर राममूर्ति ने देशी व्यायामों में दण्ड और बैठकों की बहुत प्रशंसा की है। उनका दृढ़ विश्वास है कि शरीर के बनाने में इनसे बहुत अच्छी सहायता मिलती है। उनकी दण्ड बैठक करने की विधि नीचे दी जाती है। दण्ड बैठक भी एक प्रकार के आसन ही हैं इस लिये दण्डों को दण्डासन भी कहते हैं।

दण्डों के अनेक प्रकार हैं। साधारण दण्ड, एक हाथ (बगल) का

का दण्ड, एक पैर का दण्ड, अंगुली डण्ड, अंगूठा दण्ड, एक पैर उठाकर दण्ड, भार उठाकर दण्ड, कुर्सी डण्ड और प्रो० राममूर्ति का दण्ड इत्यादि दण्डों के बहुत प्रकार हैं। यहां केवल प्रो० राममूर्ति के दण्ड की विधि जो सभी के लिये तथा विशेषतया ब्रह्मचारियों के लिये सर्वश्रेष्ठ है, खोलकर लिखी जाती है।

विधि:—हाथों की हथेलियों को भूमि पर रख कर और पैरों को पीछे फैलाकर दण्ड करने के लिये तैयार हो जावे। पैरों की एड़ियां उठी रहें और पैरों का भार उनकी अंगुलियों पर रहे, दोनों हाथ और दोनों पैरों के बीच में छाती की चौड़ाई के समान अन्तर रहना चाहिये, सामान्यतया दो बालिश्त का अन्तर (फासला) ठीक रहता है।

दण्ड की तैयारी में दण्ड करने से पूर्व पीठ और कमर ऊपर को उठी रहे। कमर को जितना हो सके पीछे खींचना चाहिये। ग्रीवा (गर्दन) छाती की ओर झुकी रहे, यहां तक कि ठोडी वक्षःस्थल (छाती) को स्पर्श करती हो और आंखों की दृष्टि पेट की तोंदी पर हो। पीछे पैरों के पन्जे भूमि पर लगे रहें, हाथ और पैर अपने स्थानों को न छोड़ें। आगे की ओर बढ़कर हाथ बिल्कुल सीधे हों। अब कमर और छाती को नीचे ले जायें, हाथों को कोहनियों पर से झुकाते चले जायें। नीचे जाते हुए दण्ड करने से पूर्व लम्बा श्वास खींचें और जितना प्राण आप अपने अन्दर भर सकते हैं भर लें। कोहनियों के ऊपर का भाग छाती की ओर के हाथपार्श्वों(बगलों) को स्पर्श करेगा, सिर और ग्रीवा सीधी रहेगी, पैर घुटनों से मुड़ने न पावें। छाती को नीचे ले जाकर इतनी नीची करें जितनी वह जा सकती है, किन्तु भूमि से स्पर्श न हो। नितम्ब (चूतड़) और मस्तिष्क ऊंचे रहें। दण्ड की इस स्थिति में आकर अपने मन को व्यायाम की क्रिया पर एकाग्र करें। और इसके पश्चात् सिर और छाती को ऊपर उठाकर हाथों को सीधा खड़ा करदें। अब कमर नीची हो जायेगी, मस्तिष्क और छाती ऊंचे होंगे। उठने

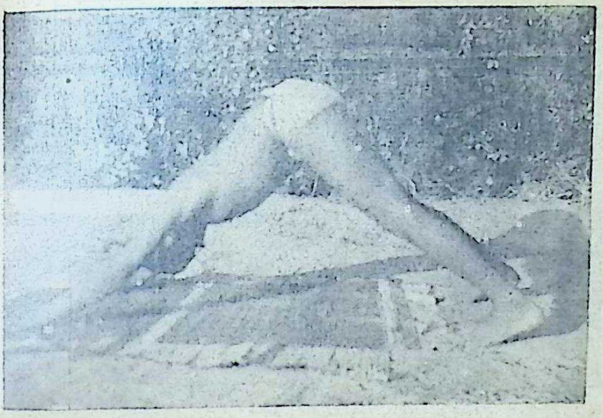

दण्ड की पूर्वावस्था

दण्ड की मध्य स्थिति

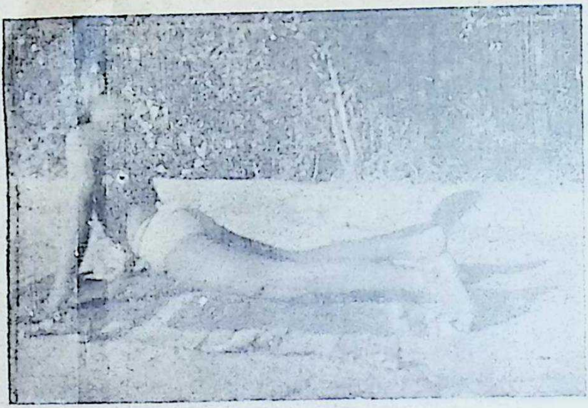

दण्ड को समाप्ति

दण्ड का एक विशेष प्रकार

के समय कन्धों को आगे की ओर खींचकर कमर को खूब तोड़ (खींच) देना चाहिये इस अवस्था में भी श्वास को रोके रखना चाहिये। इसके पश्चात् मस्तिष्क को नीचे झुकाते हुए और ठोड़ी से छाती को स्पर्श करते हुए जब अपनी पहली स्थिति में आ जायें तब धीरे-धीरे श्वास छोड़ें। और श्वास छोड़ते हुए वहां तक भीतर के वायु को निकालें, जहां तक निकलना सम्भव हो, किन्तु कष्ट के साथ नहीं। सुखपूर्वक फिर धीरे-धीरे श्वास को खींचकर जितना वायु भर सकें भरें, और दण्ड की उसी क्रिया को फिर दूसरी बार करें।

इस प्रकार अपनी शक्ति तथा अभ्यास आदि के अनुसार दण्ड का व्यायाम करें। जितने दण्ड करने से श्वास फूल न जायें उतने दण्ड एक बार में करने चाहिये। और एक दण्ड में न्यून से न्यून ४–५ सैकिण्ड का समय अवश्य लगाना चाहिये। श्वास उखड़ने या नासिका की जड़ सूखने के पश्चात् भी दण्डादि व्यायाम करते जाने से हानि होती है। एक बार दण्ड करने के पश्चात् कुछ गहरे श्वास लेने चाहियें। थके हुए पुट्ठों पर हाथ फेरना चाहिये और थकान दूर होने पर यदि अधिक करने की इच्छा और शक्ति हो तथा पौष्टिक भोजन का प्रबन्ध हो तो द्वितीय बार और तृतीय बार भी दण्ड कर लेने चाहियें। दण्ड करते समय श्वास के उतार-चढ़ाव अर्थात् रेचक और पूरक पर हमारा पूरा अधिकार रहे और कुम्भक ध्यानपूर्वक करना चाहिए। श्वास की प्रक्रिया ठीक होने से मनुष्य शीघ्र नहीं थकता, श्वास नहीं चढ़ते, दम नहीं फूलता और उसे उष्णता भी प्रतीत नहीं होती। जब दण्ड करते समय अपनी हथेली और पैर के पञ्जों पर सम्पूर्ण शरीर का भार झुकाया और उठाया जाता है तब बंधी हुई चाल से श्वास के नीचे आने और ऊपर खींचने में बड़ा परिश्रम करना पड़ता है। नसें तन जाती हैं, मुख पर तेज और कान्ति चमचमाती है, आँखें चढ़ जाती हैं, नथुने फूलने लगते हैं, शरीर के जोड़ और गांठें चटकने

लगती हैं। छाती, बाहु, स्कन्ध, जांघ और ग्रीवा धीरे-धीरे फूलती जाती हैं। दण्ड पेल कर निवृत्त होने के पश्चात् एक बार भुजदण्ड छाती के खिलने वा फूलने पर जब दृष्टि पड़ती है तो प्रसन्नता से बाहु फड़क कर आप ही आप भुजदण्ड फड़क उठते हैं और सुडौल देह के गर्व में ग्रीवा भी तन जाती है। दण्ड करते समय देह सीधी और तनी रहे, साथ ही श्वास की गति भी सधी रहे। शरीर दण्ड करते समय दृढ़ता से जमाई हुई बाहुओं के बल पर जब धीरे-धीरे नीचे झुकायें और ऊपर उठायें उस समय बिल्कुल सीधा तना हुआ रहना चाहिए। मांस पेशियों वा पुट्ठों को अकड़ाना चाहिए। पैरों के पंजे भी टस से मस नहीं होने चाहियें। अंगों को गति देते समय श्वास की गति वा बागडोर को कड़ी वा वश में रखना चाहिए।

साधारणतशा सभी का यही विचार है कि दंड करने से शरीर के ऊपर आधे भाग का व्यायाम होता है और कटि (कमर) से नीचे के भाग का व्यायाम बैठक करने से होता है। जिस प्रकार दंड करने के बहुत प्रकार प्रचलित हैं उसी प्रकार बैठकें भी बहुत प्रकार की हैं। परन्तु प्रो० राममूर्ति की बैठक का प्रकार नीचे दिया जाता है।

सपाट बैठक

पैरों के बल सीधे खड़े हो जायें। पैरों में लगभग छः इंच का अन्तर हो। दोनों हाथ लटकते हुए अपनी-अपनी ओर की जङ्घाओं से स्पर्श करते हों। इसके पश्चात् एड़ियों को भी ऊपर उठालें और पैर के पञ्जों, अंगुलियों वा अंगूठों पर ही रहें। छाती तनी हुई अर्थात् आगे को उभरी हुई हो। शरीर सीधा समरेखा में हो। धीरे-धीरे श्वास भर कर कुम्भक कीजिए और अपने आगे ६ इंच के अन्तर पर कूद कर मुट्ठी बांधते हुए धीरे-धीरे बैठना आरम्भ करें। हाथों को भी धीरे-धीरे आगे बढ़ायें, यहां तक कि कन्धों की सीध में आ जायें।

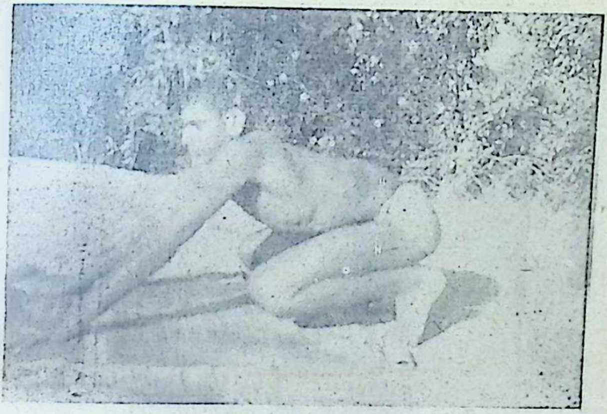

दण्ड का एक प्रकार

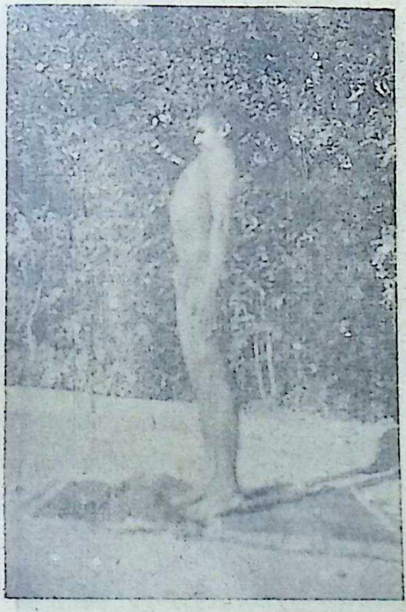

साधारण बैठक

सपाट बैठक

मुट्ठियां बन्द ही रहें, एड़ियां भूमि में न टिकें, पूरा बैठ चुकने पर भी पिंडलियां और जांघ एक दूसरे को स्पर्श न करें, दोनों में आधा इंच का अन्तर रहना ही चाहिए। जब बैठ चुकें त दोनों हाथों को कोहनियों पर से मोड़ते हुए धीरे-धीरे कन्धों की ओर लायें। हाथ की मुट्ठियां कन्धों से स्पर्श न करें, उनमें भी १/२ इच का अन्तर हो। कुछ क्षण वहां ठहर कर धीरे-धीरे उठें। पूरा उठ चुकने पर पीछे कूद कर अपने स्थान पर आ जायें, और हाथों को यथापूर्व अपने स्थान पर ले आयें और श्वास को रेचक करके निकाल दें। यह सदैव ध्यान रखें कि धीरे-धीरे उठें और बैठें। बैठक लगाने से पू कुम्भक करें, बैठक की समाप्ति पर रेचक करें, बीच में श्वास न लें नासिका द्वारा पूरा श्वास भरलें। यह न हो कि बीच में पुनः श्वास खींचना पड़े और निकालते समय सारा ही श्वास निकाल डालें। उठते बैठते प्रत्येक अवस्था में शरीर सीधा रहे, कटि से लेकर छाती तक का भाग तना रहे, ढीला न हो, छाती कड़ी और आगे निकली रहे। मुट्ठियों को इतने जोर से बांधे रखें कि हाथ थरथराने वा कांपने लगें।

साथ ही मन को जंघाओं और पिण्डलियों पर एकाग्र करके यह ध्यान करें कि मेरे सारे पैर के भागों में बल, शक्ति, दृढ़ता और ओज का संचार हो रहा है। और वेद भगवान् की इस आज्ञानुसार "ऊर्वोर्मे ओजोऽस्तु॥ (पारस्कर गृ० कां० १ कण्डिका ३ सूत्र २५)" मेरी जङ्घाओं में ओज अर्थात् स्थिर रहने और चलने की शक्ति आ रही है और दुर्बलता, अशक्तता दूर हो रही है। एक बार बैठक की क्रिया करने में न्यून से न्यून १-२ मिनट लगाना ही चाहिये। शक्ति अनुसार इस समय को बढ़ा भी सकते हैं। सैकड़ों बैठकों के स्थान पर यदि ये १० बैठक भी कर ली जायें तो पर्याप्त रहती हैं और अधिक लाभ करती हैं। इन बैठकों से जांघ, पिण्डली आदि पैर के सभी अङ्गों में और साथ ही हाथों का भी व्यायाम होता है। और हाथ और पैर दोनों के पुट्ठे (मांस पेशियां) बनते हैं।

आरम्भ में ये बैठकें ४-५ ही करनी चाहियें और फिर शक्ति अनुसार बढ़ा सकते हैं। यदि इन्हीं बैठकों को एक ही स्थान पर खड़े होकर किया जाये, आगे पीछे न कूदा जाये तो ये साधारण बैठकें कहाती हैं। कूदने के कारण ही इन का नाम 'सपाट' पड़ा है। दोनों प्रकार से इन्हें कर सकते हैं। जैसी भी इच्छा हो करें, किन्तु सपाट बैठक अधिक लाभ करती है।

एक भ्रम और उसका निराकरण

लोगों में यह भ्रम बहुत बुरी प्रकार से फैला हुआ है कि बैठक का व्यायाम ब्रह्मचारी या विद्यार्थी के लिये अच्छा नहीं होता। यह सर्वथा निर्मूल है। बैठकों से ब्रह्मचर्य में कोई हानि नहीं होती। किन्तु इतना अवश्य ध्यान रखना चाहिए कि ब्रह्मचारी वा विद्यार्थी अथवा अन्य जो कोई भी मस्तिष्क से कार्य करने वाले हैं उन्हें बैठकों की अपेक्षा दण्ड आदि छाती और मस्तिष्क के व्यायाम अधिक करने चाहियें। साधारण नियम यही है कि बैठकें दण्डों से आधी होनी चाहियें।

आजकल अखाड़ों में पहलवान लोग दण्ड की अपेक्षा बैठकें अधिक करते हैं। क्योंकि पहलवानों को मोटी-मोटी और चढ़ी हुई सुन्दर जांघें प्रिय होती हैं। और मल्लयुद्ध में टांगों से वे कार्य भी अधिक लेते हैं। किन्तु आप बड़े-से-बड़े पहलवानों को देखें, चाहे उनके शरीर कितने ही सुन्दर, सुदृढ़ वा सुडौल हों, किन्तु उनके मुख निस्तेज, कान्तिहीन और कुरूप पायेंगे।

आजकल अखाड़ों में जो व्यायाम की पद्धति प्रचलित है, उसमें बड़े भारी सुधार की आवश्यकता है। दण्ड-बैठक करते समय मल्ल लोग इतनी शीघ्रता करते हैं कि यन्त्र (मशीन) के अवयव (पुर्जे) उनकी समानता नहीं कर सकते। इसी कारण श्वास-प्रश्वास की क्रिया अत्यन्त वेग से और शीघ्र होने लगती है। ग्रीष्मकाल में उष्णता के कारण कुत्ते के समान हांपने लगते हैं। कोई-कोई खम्भे, रस्सी, वृक्ष,

वा भित्ति आदि को ही पकड़कर बैठकें लगाते हैं और कटि (कमर) को उस समय सीधा ही नहीं करते। इन बैठकों से बहुत हानि होती है। इस प्रकार शीघ्रता से और अनियमित रूप से दण्ड-बैठक आदि व्यायाम करने से कोई लाभ नहीं होता।

साधारण बैठक और सपाट (कूद) बैठक ही सब से अच्छी होती हैं। इनके अतिरिक्त भी हनुमान् बैठक, वीर बैठक, मुख फेर बैठक, एक पांवपसार बैठक, अङ्गमरोड़ बैठक और घुटने मरोड़ बैठक इत्यादि अनेक प्रकार की बैठकें हैं, जिनके नियमित अभ्यास से लाभ होता है। बैठकों के समान दौड़ना, तैरना इत्यादि पैरों के अनेक व्यायाम हैं। किन्तु शरीर जितना सुन्दर और सुडौल दण्ड-बैठक के लगाने से होता है उतना दौड़ादि अन्य व्यायामों से नहीं।

दौड़

प्रकट रूप में तो दौड़ने से टांगों का ही अधिक व्यायाम होता है, किन्तु दौड़ने का व्यायाम सारे शरीर के लिये उपयोगी है। इससे पैरों के अतिरिक्त छाती, फेफड़ों और पेट आदि का भी व्यायाम होता है। दौड़ से तो फेफड़ों को अत्यन्त लाभ पहुँचता है। क्योंकि दौड़ते समय भस्त्रा या भस्त्रिका प्राणायाम बहुत अच्छी प्रकार से होता है, जिससे फेफड़े वज्र वा इस्पात के समान सुदृढ़ हो जाते हैं और रक्त-संचार के लिये भी बहुत अच्छा है। निस्सन्देह टांगों का बल तो दौड़ से बढ़ता ही है। परन्तु फेफड़ों को शुद्ध और पुष्ट करने, हृदय को गतिशील बनाये रखने, और सुदृढ़ करने तथा रक्त को शुद्ध करने के लिये भी दौड़ने का व्यायाम बहुत उत्तम है। दौड़ने से मनुष्य में स्फूर्ति (चुस्ती) तथा कर्मण्यता आती है। फेफड़ों के बलवान् होने से कास (खांसी) प्रतिश्याय (जुकाम) आदि रोग नहीं सताते। बालक, युवा, वृद्ध और स्त्री सभी के लिये भागने का व्यायाम उत्तम है।

प्रातःकाल सूर्योदय से पूर्व दौड़ लगाना ब्रह्मचारी और विद्यार्थी के लिए तो अत्यन्त हितकर है।

ब्रह्मचारी ही नहीं, सभी को नंगे पांव दौड़ने से अधिक लाभ होता है। बाल्यावस्था तथा वृद्धि अवस्था में यदि जूता आदि पहनकर द ड़ा जाएगा तो पांव का स्वाभाविक विकास और वृद्धि नहीं हो सकेगी। इसीलिए पैरों के विकास का ही ध्यान रख कर ऋषियों ने "उपानच्छत्रधारणं वर्जय" जूता और छत्र (छाता) का धारण निषेध किया है। दौड़ते समय पांव उठा उठा कर पन्जों के ऊपर ही दौड़ना चाहिए अर्थात् पैरों का अगला भाग ही भूमि पर टिका रहे, एड़ियां भूमि में न टिकें। छाती आगे की ओर निकली और तनी रहे तथा कन्धे पीठ की ओर झुके रहें। मुट्ठी बांधकर दोनों हाथों को छाती के बराबर रखें। नेत्र दृष्टि सम्मुख रहे। भागते समय पैरों को इतना ऊपर उठाकर ले जायें कि पैर की एड़ियाँ नितम्ब (चूतड़) को स्पर्श करने को हो जायें। जितने लम्बे पग (कदम) दौड़ते समय रख सकें उतना ही अच्छा है। जिस समय दौड़ आरम्भ करें तो पहले ही वेग (तेजी) से न दौड़ें। शनैः शनैः वेग को बढ़ाते जायें। दौड़ने के लिए आप को अपनी पूरी शक्ति लगा देनी चाहिए। न ही दौड़ को सहसा (एकदम) बन्द करना चाहिए। दौड़ चुकने के पश्चात् तुरन्त ही खड़े हो जाना, बैठ जाना वा सो जाना बड़ा ही हानिकारक है। अतः दौड़ने के पश्चात् जब तक श्वास वेग से चलता रहे तब तक भ्रमण करना ही लाभप्रद है। दौड़ने के पश्चात् जब तक शरीर पूर्णतया ठण्डा न हो जाय तब तक जल से हाथ, मुख, पैर धोना, स्नान करना और खाना पीना कदापि नहीं करना चाहिए। दौड़ने के लिए स्थान खुला हुआ और शुद्ध वायु वाला हो। वहाँ की भूमि सम हो और कंटक कङ्कर से रहित हो। विषैले सर्प कीड़े आदि का कोई भय न हो। दौड़ने के समय नासिका द्वारा लम्बे और गहरे श्वास खींचने और कुछ

रोकते हुए धीरे धीरे छोड़ने का अभ्यास करना चाहिए। लम्बे और गहरे श्वास लेने और छोड़ने से व्याकुलता (घबराहट) और श्रान्ति (थकावट) बहुत न्यून होती है। अत्यन्त वेग से श्वास चलने पर भी नासिका द्वारा ही श्वास-प्रश्वास की क्रिया करनी चाहिए।

मुख खोलकर उसके द्वारा श्वासोच्छ्वास करते हुये दौड़ना बहुत हानिकारक है। दौड़ते समय अङ्गों को शिथिल नहीं रखें। हाथों को पीछे की ओर भली भान्ति खींचे रहें।

आरम्भ २ में दौड़ सौ गज वा एक फर्लाङ्ग से अधिक नहीं लगानी चाहिए। प्रतिदिन थोड़ी २ बढ़ाकर एक वा दो मील या इससे भी अधिक का अभ्यास अपने सामर्थ्यानुसार करना चाहिए। १०-१५ मील तक भागने का भी अभ्यास किया जा सकता है किन्तु मुख्य बात तो सामर्थ्य और पुष्टिकारक भोजन की है। पुष्टिकारक भोजन के अभाव में तथा शक्ति से अधिक दौड़ने से भी शरीर को हानि होती है। आरम्भ में कुछ दूर दौड़ने पर श्वास फूल जाता है और दौड़ने वाला घबराने लगता है। किन्तु साहस बांधकर दौड़ते रहने से व्याकुलता हट जाती है और साहस भी बढ़ जाता है। गहरे श्वास भी दौड़ में अत्यन्त सहायक हैं। हमारे कबड्डी आदि बहुत से ऐसे देशी खेल हैं। जिनमें दौड़ पर्याप्त मात्रा में हो जाती है। यह सदैव ध्यान रखें कि दौड़ते २ जब उष्णता बढ़ जाए और श्वास बहुत शीघ्र-शीघ्र वा वेग से आने लगे और फेफड़ों में न समावे तब दौड़ बन्द कर देनी चाहिए दौड़ते समय फेफड़ों में पीड़ा होने लगती है तब भी दौड़ बन्द कर देनी चाहिये। दौड़ आदि पैरों की व्यायाम से हाथी के सूंड के समान पुष्ट जंघायें हो जाती हैं।

जो लोग रात दिन बैठे रहते हैं और दौड़, भ्रमण आदि पैरों का व्यायाम नहीं करते उनकी टांगें निर्बल हो जाती हैं। जांघों का मांस

या तो सूख जाता है या मेद [चर्बी] बढ़ कर जंघाओं का मांस ढीला और लटकता रहता है। और वे कुरूप और अत्यन्त स्थूल हो जाती हैं। जांघें सर्वथा पतली, अत्यन्त मोटी और ढीली नहीं होनी चाहिएं। जिन जङ्घाओं में अङ्गुली गाड़ने से न गड़े, ऐसी कठोर जंघायें स्वस्थ और सबल मानी जाती हैं। किन्तु दौड़ और बैठक के बिना ऐसी जंघायें कैसे हो सकती हैं। दौड़ादि व्यायाम ही जंघाओं और पिण्डलियों को सुन्दर, पुष्ट और सबल बनाता है।

दौड़ते समय भी मन को टांगों के पिण्डली और जंघादि भागों पर एकाग्र करना चाहिए और यह ध्यान करना चाहिए कि मेरे इन अङ्गों की निर्बलता दूर हो रही है। और वेद की आज्ञा के अनुसार "जंघयोर्जवः" जंघाओं में वेग, स्फूर्ति और बल इत्यादि और "पादयोः प्रतिष्ठा (अथर्व० १६। ६०। २) पावों (पिण्डलियों) में स्थिरता, सुदृढ़ता वा सुन्दरता आदि गुणों का संचार और प्रवेश हो रहा है। इस प्रकार की दृढ़ भावना से वेद की इस पवित्र आज्ञा के अनुसार अत्यन्त लाभ पहुँचता है। पांवों के जंघा, पिंडली आदि भागों में स्फूर्ति, वेग, बल, शक्ति, सुन्दरता, स्थिरता और सुदृढ़ता आदि गुणों का अनुभव अभ्यासी थोड़े दिन में करने लगता है। उसकी जंघायें और पिंडलियां बहुत शीघ्र से पुष्ट और बलवान् हो जाती हैं।

तैरना

साधारण व्यायामों में से तैरना भी हमारे शरीर व स्वास्थ्य दोनों के लिए एक बड़ा उपयोगी व्यायाम है। तैरने से शरीर का बहुत ही अच्छा व्यायाम हो जाता है। बालक, युवा, वृद्ध, स्त्री और पुरुष सभी के लिए तैरने का व्यायाम लाभप्रद है। यदि विचार पूर्वक किया जाये तो किसी अवस्था में भी किसी को हानि नहीं होती। और ब्रह्मचारी के लिए तो तैरने का व्यायाम अत्यन्त लाभदायक है। इससे

वीर्यरक्षा वा ब्रह्मचर्य की साधना में बड़ी सहायता मिलती है। ब्रह्मचारी और ब्रह्मचर्य के प्रेमी यदि प्रतिदिन एक घंटा तैरने का व्यायाम करलें तो स्वप्नदोषादि के द्वारा वीर्यनाश का भय वा आशंका नहीं रहती। प्रमेह, स्वप्नदोषादि वीर्य भ्रष्टता के रोग वा दोष बहुत शीघ्र दूर हो जाते हैं। क्योंकि यह वीर्य सम्बन्धी रोगों को दूर करने के लिए सर्वोत्तम औषध है। जो ब्रह्मचारी अन्य साधनों के साथ तैरने का व्यायाम करते हैं उनको स्वप्नदोष आदि रोग नहीं सताते और वे स्थिरवीर्य वा ऊर्ध्वरेता हो जाते हैं। इसीलिए वेद भगवान् ने जल की महिमा का गान किया है—

"अप्स्वन्तरमृतमप्सु भेषजम्॥ (अथर्ववेद १।४।४)

अर्थात् जल में अमृत और औषध है।

जल के महत्त्व को हमारे प्राचीन पुरुष ऋषि-महर्षि लोग भली-भान्ति जानते थे। इसलिए जलाशयों और नदियों के तटों पर वे अपने आश्रम बनाकर निवास करते थे। यही कारण था कि वे सब अमोघ वीर्य वा ऊर्ध्वरेता होते थे।

व्याकरण के अति प्राचीन और प्रामाणिक ग्रन्थ महाभाष्य में महर्षि पतञ्जलि जी महाराज लिखते हैं—

"अष्टाशीतिसहस्राण्यूर्ध्वरेतसामृषीणां बभूवुस्तत्रागस्त्याष्टमैर्ऋषिभिः प्रजनोऽभ्युपगतः"॥ (महाभाष्य अ० ४ पा० १ सू० ७८

अट्टासी हजार ऊर्ध्वरेता ऋषि हुए हैं उन में से अगस्त्य प्रभृति आठ ऋषियों ने सन्तति उत्पन्न की।

कितने ही विचारशील लोग आज-कल भी इस विषय में अनुभव कर चुके हैं कि युवकों के स्वप्नदोष आदि वीर्य सम्बन्धी रोग केवल प्रतिदिन एक घंटा शुद्ध जल में तैरने से दूर हो जाते हैं। इन रोगों में जब किसी औषध से लाभ नहीं होता तब जल में तैरने का अभ्यास

अचूक औषध का काम करता है। इसलिए ब्रह्मचारी को ब्रह्मचर्य की साधना वा वीर्य रक्षा के लिए और स्वप्नदोष आदि सम्बन्धी रोग ग्रस्त रोगियों को इन रोगों से छुटकारा पाने के लिए प्रतिदिन नदी आदि में तैरने का अभ्यास करना चाहिए। जिससे वे ऊर्ध्वरेता, अमोघ वीर्य वा स्थिर वीर्य वाले बन सकें। तैरने में एक विशेष बात यह है कि इस से व्यायाम और स्नान दोनों साथ-साथ हो जाते हैं। इसलिए सहज में ही व्यायाम और स्नान दोनों का एक ही साथ लाभ हो जाता है। तैरने के व्यायाम से शरीर की अतिरिक्त उष्णता जल के स्पर्श से दूर हो जाती है और रोमकूप स्वच्छ होकर शरीर शुद्ध, निर्मल और पवित्र हो जाता है। यथार्थ में तडाग, नदी, नाले आदि जलाशय ही प्राकृतिक स्नान करने के यथोचित स्थान हैं जिनमें तैरने वा स्नान करते समय भाग-दौड़ करने अथवा इसी प्रकार की अन्य जल क्रीड़ा करने से शरीर और मन दोनों में ही स्वच्छता, स्फूर्ति और उत्साह आदि सद्गुणों की उत्पत्ति और वृद्धि होती है। तैरने से शरीर के सब स्नायुओं और अङ्ग-प्रत्यङ्गों का स्वयं ही पर्याप्त व्यायाम हो जाता है। नदी के बहते हुए जल की लहरों के परस्पर टकराने से एक प्रकार की विद्युत् उत्पन्न होती है जो शारीरिक साधारण रोगों को शीघ्र दूर कर के हमारे स्वास्थ्य पर बहुत अच्छा प्रभाव डालती है। तैरने में वैसे तो सभी अवयवों का व्यायाम होता है किन्तु छाती और फेफड़ों को विशेष लाभ पहुँचता है। तैरने से छाती चौड़ी और सारा ही वक्षःस्थल परिपुष्ट और विस्तीर्ण हो जाता है। फेफड़े अत्यन्त शुद्ध और बलवान् हो जाते हैं। तैरने वाले का सम्पूर्ण शरीर नीरोग, स्वस्थ, सुन्दर, सुडौल, शक्तिशाली, स्फूर्तिमान्, और उत्साह युक्त बन जाता है। गहरे जल में घुस कर प्राणायामपूर्वक धीरे २ बल और आयु की वृद्धि की प्रबल भावना मन में

रखते हुए तैरने से विशेष लाभ होता है। जल में गोता मारने से भी बड़ा अच्छा व्यायाम होता है।

तैरना वैसे भी एक प्रकार की विद्या है। इसलिये इसे प्रत्येक मनुष्य को सीख ही लेना चाहिये। अपनी वा दूसरों की प्राणरक्षा के लिये जीवन में इसकी आवश्यकता पड़ ही जाती है। डूबते समय हमारी पोथी वा पुस्तकें कुछ काम नहीं आतीं। तैरना कोई बहुत कठिन कार्य नहीं, थोड़ा सा यत्न करने पर छोटे-छोटे बालक भी इसे सीख लेते हैं। तैरना भी क्या, जल में घुसकर हाथ तथा पैरों को ही तो हिलाना है। हम देखते नहीं कि छोटे-छोटे कीड़े मकोड़े तक भी तैरना जानते हैं। छोटे-छोटे पशुओं के बच्चे भी किसी नदी, तडाग आदि जलाशय में पहुंचते हैं तो आप ही आप बिना सिखाये तैरने लग जाते हैं। फिर मनुष्य जो सर्वश्रेष्ठ प्राणी ठहरा, उसके लिये तैरना कौनसी कठिन बात है। हम प्रतिदिन देखते हैं कि जिन ग्रामों वा नगरों के निकट नदी, तडाग आदि जलाशय होते हैं वहां के छोटे-छोटे बालक भी तैरने में अत्यन्त निपुण और निष्णात होते हैं। वे परस्पर देखा-देखी तैंरना बिना सिखाये ही सीख जाते हैं।

हां तैरने वाले को भी सावधान रहना चाहिये। अपनी शक्ति से अधिक तैरने का व्यायाम करने से मनुष्य अधिक थककर गहरे जलाशय नदी में डुब भी सकता है। जिससे प्राणों की हानि हो सकती है। बहुत अधिक तैरने के कारण लोगों को उन्माद, मूर्च्छा, मृगी और पागलपन हो जाता है। हमारे ऋषियों ने "अत्यन्तं स्नानं वर्जय" अति स्नानादि को वर्जित किया है। इसलिये एक ढेढ घण्टे से अधिक तैरना भी अच्छा नहीं। और जब तैरने का अच्छा अभ्यास हो जाये और किसी प्रकार का सन्देह न रहे तभी गम्भीर जलाशय वा गहरे जल में घुसना चाहिये। बिना तैरने के अच्छे अभ्यास के गम्भीर जलाशय में घुसने से प्राणहानि होने का भय रहता है।

पाश्चात्य देशों के लोग भी तैरने के महत्त्व को भलीभान्ति समझते हैं। वहां तैरने के लिये बड़ा उत्साह पाया जाता है। अच्छा तैरने वाले बालकों को ही नहीं, किन्तु अच्छे तैराक युवक-युवतियों को बड़े-बड़े उत्सवों में पारितोषिक देकर तैरने के लिये उत्साह बढाया जाता है। वहां के डाक्टर और शरीर-शास्त्र के पण्डित लोग भी निम्न प्रकार की सम्मतियों द्वारा तैरने का प्रचार करते हैं।

"तैरने से मनुष्य में अद्भुत शक्ति उत्पन्न होती है। जीवन का सञ्चार होता है। शरीर के अङ्गों और प्रत्यङ्गों में नवीन जीवन प्राप्त होता है। बल बढ़ता है और मनुष्य अद्भुत स्वास्थ्य का सञ्चय करता है।"

इस प्रकार के प्रचार से दूसरे देशों में तैरने का महत्त्व बढ़ गया है और वहां के स्त्री-पुरुषों में तैरने का बहुत प्रेम और आदर हो गया है। हमें भी अपने देश में इसी प्रकार तैरने का प्रचार करना चाहिये। जिससे तैरने के व्यायाम द्वारा ही हमारे देश वासियों का वीर्य सम्बन्धी रोगों से छुटकारा हो, और वे ब्रह्मचर्य रक्षा में सफलता पाकर जीवन का आनन्द ले सकें।

तैरते समय प्रत्येक को जल की पवित्रता का ध्यान रखना चाहिये। गन्दे, मलिन, मटमैले, दुर्गन्धयुक्त, सड़े हुए तथा वर्षाकाल के नवीन जल में स्नान करने से सिर में पीड़ा तथा अनेक प्रकार के दाद आदि चर्मरोग हो जाते हैं। अतएव शुद्ध, पवित्र, निथरे हुए निर्मल जल के जलाशयों में ही तैरने का व्यायाम करना चाहिये। इस प्रकार के शुद्ध जल में तैरने से ही विशेष लाभ हो सकता है। अन्यथा हानि होने की सम्भावना है। अन्य व्यायामों के समान तैरने के समय भी लङ्गोट के अतिरिक्त अन्य वस्त्र नहीं धारण करना चाहिये।

भ्रमण वा वायु सेवन

रोगी, निर्बल और वृद्ध (बूढ़े) मनुष्यों के लिये ही भ्रमण वा

टहलने को भी व्यायाम कहा जा सकता है। जो व्यक्ति आलस्य, रोगादि के कारण कुछ भी व्यायाम न करता हो तो उसका भ्रमण से कुछ न कुछ व्यायाम हो ही जाता है। भ्रमण को कोमल प्रकृति वाले बाबू लोग, रोगी वा बड़े-बड़े पेट वाले भले ही व्यायाम का स्थान दे दें। किन्तु कोई ब्रह्मचर्य का पथिक वा ब्रह्मचारी भ्रमण को ही व्यायाम समझकर इसी द्वारा ब्रह्मचर्य की साधना करना चाहे तो यह उसकी बड़ी भारी भूल होगी। भ्रमण के द्वारा कोई सात जन्म भी ब्रह्मचर्य पालन में सफलता प्राप्त नहीं कर सकता। ब्रह्मचर्य की साधना के लिये तो शरीर और मन को थकाने वाला कठोर व्यायाम अत्यन्त आवश्यक है। वैसे भ्रमण रोगी आदि के लिये ठीक है। भ्रमण करने वाले को नगर वा ग्राम से बाहर ऐसे स्थान पर ही जहां का वायु शुद्ध, शीतल, स्वास्थ्य प्रद हो भ्रमण करना चाहिये। भ्रमण वा वायु सेवन के लिये सूर्योदय से पूर्व प्रातःकाल का समय ही उत्तम है। शौच आदि से निवृत्त होकर प्रतिदिन कुछ मील नियमित भ्रमण करने वा टहलने से स्वास्थ्य का लाभ अवश्य होता है। भ्रमण करते समय नासिका द्वारा लम्बे और गहरे श्वास लेने से अधिक लाभ होता है।

मल्लखम्भ का व्यायाम

मल्लखम्भ के व्यायाम का प्रचार दक्षिण भारत में अधिक है। मल्लखम्भ के व्यायाम से शरीर बहुत शीघ्र ही स्वस्थ और उन्नत हो जाता है। शरीर में व्यर्थ का मेद (चर्बी) नहीं बढ़ता। शरीर के सभी छोटे-बड़े जोड़ वा अवयव सुदृढ़ हो जाते हैं। इसके व्यायाम से पेट की नसों को भी बहुत लाभ पहुंचता है। हाथों के स्नायु सुदृढ़ हो जाते हैं। सारे शरीर में एक विशेष शक्ति और स्फूर्ति आ जाती है। शरीर बड़ा सुन्दर, स्वस्थ और सुडौल बन जाता है। मल्लखम्भ पर जो व्यायाम किये जाते हैं वे एक प्रकार के आसन ही हैं। मल्लखम्भ के

व्यायाम से आसनों के समान ही शरीर में स्फूर्ति, हलकापन और आरोग्य की वृद्धि होती है। जो मल्ल (पहलवान) मल्लखम्भ का व्यायाम करते हैं वे अपने शरीर को इतना वश में कर लेते हैं कि वे मल्लयुद्ध (कुश्ती) में बहुत ही कम हार खाते हैं। उनके ऊपर दूसरों के दाव पेच नहीं चलते। क्योंकि मल्लखम्भ का व्यायाम करने वाले मल्लविद्या में बड़े निपुण हो जाते हैं। मल्लखम्भ के व्यायाम से बहुत शीघ्र और बड़ी अच्छी प्रकार से अपना शरीर वश में आ जाता है और जिसका शरीर वश में होता है वह मल्लखम्भविद्या में कुशल होता है। मल्लखम्भ का व्यायाम किसी शिक्षक से ही सीखकर करना चाहिये। बालक इसको शीघ्र सीख सकते हैं, बड़ी आयु वा बुढ़ापे में इसका सीखना बड़ा कठिन है।

मल्लखम्भ शीशम की चिकनी और दृढ़ लकड़ी का होना चाहिये। कमर के समान इसकी मोटाई ठीक है। मल्लखम्भ गाड़ने के पश्चात् भूमि से ६-७ फुट ऊँचा रहना चाहिये। मल्लखम्भ को वृक्ष या मकान की छाया में ही गाड़ना चाहिये। जिससे जल और धूप से उसकी लकड़ी को हानि न पहुँचे। मल्लखम्भ के चारों ओर की मिट्टी अच्छी होनी चाहिये और मल्लखम्भ को कभी-कभी तेल लगाकर उसकी लकड़ी को चिकना करते रहना चाहिये। १२ वर्ष की आयु से ऊपर किसी भी अवस्था में इस व्यायाम को कर सकते हैं। सभी अवस्थाओं में यह लाभदायक है। किन्तु वृद्धि अवस्था वाले युवक ब्रह्मचारी और ब्रह्मचारिणियों के लिये यह मल्लखम्भ का व्यायाम अत्यन्त लाभदायक है।

मुग्दर का व्यायाम

मुग्दर का व्यायाम बहुत प्राचीन काल से अथवा यों कहिये कि आदि सृष्टि से ही चला आ रहा है और अपने देश का भीहै। यह

बहुत प्राचीन व्यायाम है। हमारे प्राचीन साहित्य में इसके अनेक प्रमाण मिलते हैं। इससे यही प्रतीत होता है कि प्राचीनकाल में मुग्दर का व्यायाम बहुत उन्नत था। किन्तु हम अपनी अनेक विद्या वा कलाओं के समान व्यायाम सम्बन्धी बहुत-सी आवश्यक बातें भी भूल गये हैं। पुनरपि देश में मुग्दर के व्यायाम सम्बन्धी पर्याप्त ज्ञान और आदर की भावना पाई जाती हैं। अखाड़ों में पहलवान लोग तो प्रायः सभी मुग्दर फेरते ही हैं। किन्तु स्कूल-कालिजों में भी इसका थोड़ा बहुत प्रचार पाया जाता है। मुग्दर को जोड़ी भी कहते हैं। मुग्दर फेरने के बहुत हाथ और नियम हैं। इसके हाथ किसी मुग्दर फिराने वाले से सीख लेने चाहियें। इनको लेख द्वारा सिखाना वा समझाना असम्भव नहीं तो अत्यन्त कठिन अवश्य है।

मुग्दर की जोड़ी न बहुत हल्की न ही बहुत भारी होनी चाहिये। आरम्भ में तो मुग्दर का अधिक भारी होना बहुत हानिकारक है। अपनी शक्ति के अनुसार ही भार होना चाहिये। जब पूर्ण अभ्यास हो जाये तो भारी मुग्दर घुमाना चाहिये। किन्तु वह भी अपनी शक्ति के ही अनुसार हो। लम्बे मनुष्य के लिये लम्बा और छोटे (नाटे) मनुष्य के छोटा मुग्दर ठीक रहता है। इससे विपरीत करने पर चोट लगने का भय रहता है। मुद्गर को दृढ़ता से पकड़ना चाहिये। पकड़ते समय हाथ की अंगुलियाँ तथा बाहु (बाजु) बाहर की ओर रखने चाहियें। प्रथम एक ही मुग्दर को दक्षिण और वाम दोनों हाथों से घुमाने का अभ्यास करना चाहिये। जब अच्छा अभ्यास हो जाय तो एक साथ पृथक्-पृथक् मुग्दर दोनों हाथों से घुमाने चाहियें। मुग्दर घुमाते समय छाती भीतर घुसी हुई न हो, सम्मुख उभरी और निकली हुई होनी चाहिये। मुग्दर के व्यायाम से यों तो शरीर के प्रत्येक अङ्ग का व्यायाम होता है और सब अंगों पर बल पड़ता है किन्तु हाथ की अंगुलियाँ, पञ्जा, कलाई, कोहनी, कलाई के नीचे का भाग, मांडे और

कोहनी के बीच का भाग अर्थात् भुजदण्ड, कन्धे (मोढ़े तथा पीठ के पीछे वाले पुट्ठों पर अधिक बल पड़ता है और इनका बहुत ही अच्छा व्यायाम हो जाता है। ये सब अंग सुदृढ़ और बलवान् हो जाते हैं। कलाई, भुजदण्ड और हाथों की मांस पेशियों को सुदृढ़, सुन्दर और सुडौल बनाने वाला मुग्दर से बढ़कर अन्य कोई व्यायाम नहीं है। केवल मनोरंजन के लिये नहीं किन्तु शारीरिक उन्नति के लिये मुग्दर का एक सुन्दर और श्रेष्ठ व्यायाम है।

डम्बल के व्यायाम को लोग हाथों के लिये अच्छा समझते हैं। और आज-कल मुग्दर के व्यायाम को प्रायः छोड़ते जा रहे हैं। किन्तु मुग्दर के आगे डम्बल का व्यायाम तो कुछ भी नहीं। वैसे मुग्दर से हाथों का व्यायाम तो होता ही है, किन्तु अनेक वर्षों का मेरा नुभव है कि एक साथ भुजदण्ड आदि हाथों के सब अंग प्रत्यङ्गों को तथा छाती, फेफड़ें, सिर, रीड की हड्डी आदि शरीर में अन्य सभी अंगों को बहुत शीघ्र स्व थ, सुदृढ़ और सुडौल बनाने वाला मुग्दर के समान देशी और विदेशी व्यायामों में कोई भी व्यायाम नहीं है। १६ वर्ष से अधिक आयु के ब्रह्मचारियों को मुग्दर का व्यायाम सायंकाल अन्य कठोर व्यायामों के समान प्रतिदिन करना चाहिये।

पत्थर की नाल (चकली) उठाना, गोले फेंकना भी हाथों के लिये अच्छा व्यायाम है। सैण्डो का डम्बल्स का व्यायाम भी हाथों का अच्छा व्यायाम है। किन्तु लिखने वाले व्यक्ति को कमानीदार डम्बल्स का व्यायाम नहीं करना चाहिये। इससे हाथों में भी कभी-कभी कम्प का रोग हो जाता है।

कूदना

कूदना-फांदना भी अच्छा व्यायाम है। कुदाई अनेक प्रकार की होती है—लम्बी, ऊँची, पैर बांधकर, दौड़ कुदाई इत्यादि। कुदाई

के समय हाथ-पैर ढीले रखने से बहुत न्यून लाभ होता है इसलिये हाथ-पैरों को खिचा हुआ और कठोर रखना चाहिये। कूदते समय प्राणायाम करने से अत्यन्त लाभ होता है। वैसे तो कूदने से समस्त ही अंगों का अच्छा व्यायाम होता है किन्तु मुख्यतया उदर (पेट) और पैरों को विशेष बल प्राप्त होता है। कूदने से शरीर में स्फूर्ति आती है, आलस्य दूर भागता है और शरीर के प्रत्येक अवयव में रक्त का सञ्चार होने लगता है। दौड़ने, खेलने, कूदने आदि के व्यायाम से वैसे तो बड़ी आयु वालों को भी लाभ होता है किन्तु १४ वर्ष की आयु तक के बालकों के लिये दौड़ना, कूदना-फाँदना, खेलना इत्यादि बहुत ही लाभदायक है। छोटे बालकों से इसी प्रकार के व्यायाम कराने चाहियें जिन में दौड़ना, कूदना, फाँदना अधिक पड़े। १२ वर्ष से छोटी आयु के बालकों से दंड, वैठक, मुग्दर और मल्लयुद्ध आदि कठोर व्यायाम नहीं कराने चाहियें।

आसन

आसनों का व्यायाम भी स्वास्थ्य के लिए अति उपयोगी है। वैसे आसन बहुत हैं किन्तु पांच-सात आसन जो ब्रह्मचर्य तथा स्वास्थ्य प्रेमी को नित्य प्रति करने चाहियें, उनके विषय में अति संक्षेप से लिखा जाता है। अधिक विस्तार के लिये हमारी 'आसनों के व्यायाम' पुस्तक पढें, जो पृथक् प्रकाशित हो रही है।

१—शीर्षासन

इसके करने की विधि इस प्रकार है—पहले भूमि पर आसन बिछा कर उस पर कपड़े की गोल गद्दी बनाकर रखें और उस पर शिर रख दोनों हाथों की अंगुलियों को परस्पर मिला शिर के दोनों ओर दृढ़ता से रक्खें। पांवों को मोड़कर शिर के समीप ले आवें, तत्पश्चात् शरीर को शनैः शनैः ऊपर को उठाते हुए शिर के बल खड़े हो जावें। मस्तिष्क और सिर के बीच का भाग ही वस्त्र पर टिकना चाहिए। शरीर नितान्त सीधा रहे, पांवों की अंगुलियां ऊपर को खिची हुई और नेत्र खुले रहने चाहिें। घुटने भी मुड़ने न पावें, श्वास-प्रश्वास की क्रिया पूर्ववत् चलती रहे।

शीर्षासन करने के पश्चात् कुछ समय तक सीधा खड़ा रहना चाहिये। कुछ आसनों के अभ्यासियों का मत है कि जितने समय तक शीर्षासन करें उतने ही समय तक सीधा खड़ा रहने से विशेष लाभ होता है। यदि समय के अभाव से अधिक विलम्ब तक खड़े न रह सकें तो अन्य खड़े होकर करने के आसन तथा व्यायाम करने चाहिएं।

शीर्षासन एक दो सैकिण्ड से आरम्भ करना चाहिये और शनैः शनैः अपनी शक्ति तथा भोजन के अनुसार इसके करने का समय बढ़ा देना चाहिए। पन्द्रह या बीस मिनट का अभ्यास हो जाने पर वीर्य

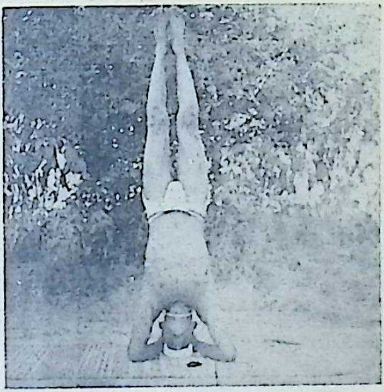

शीर्सासन

हस्तपादांगुष्ठासन

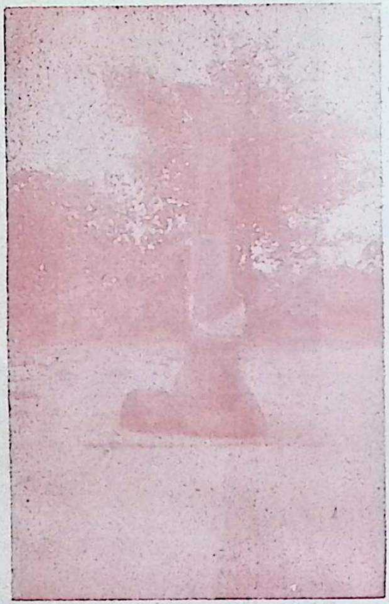

सर्वाङ्गासन

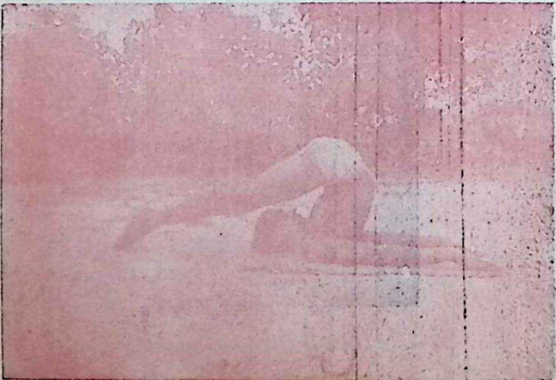

हलासन

सम्बन्धी स्वप्नदोष, धातुक्षय, प्रमेहादि विकार दूर होकर वीर्य की ऊर्ध्वगति हो जाती है; स्वास्थ्य सुन्दर तथा चेहरा लाल हो जाता है। बुद्धि तथा नेत्र ज्योति बढ़ती है, जठराग्नि तीव्र होती है, बढ़ी हुई प्लीहा (तिल्ली) और यकृत् (जिगर) ठीक हो जाते हैं। अर्श, गुल्म, उदावर्त, आध्मान, अजीर्ण, कोष्ठबद्धता, बहुमूत्र प्रभृति उदर रोग तथा फोड़े-फुन्सी, कुष्ठ, कण्डू (खाज), पामा, पीनस आदि चर्म रोगों में भी लाभदायक है।

२—हस्तपादांगुष्ठासन

दोनों हाथों को कटि (कमर) पर रखकर सीधे खड़े हो जावें, एक पांव को शनैः शनैः ऊपर को उठावें, पांव घुटने में से न मुड़े, जब पांव सम्मुख आ जा जावे तब जिस ओर का पांव हो उसी हाथ से पांव के अंगूठे को पकड़े, श्वास अन्दर रहना चाहिए। इसी प्रकार दूसरे हाथ तथा पांव से भी करें। इस आसन को चित्त लेटकर भी कर सकते हैं।

इस आसन के करने से ग्रीवा, कटि और उदर के विकार नष्ट होते हैं, पिण्डली जङ्घा आदि के लिए भी यह लाभदायक है।

३—सिद्धासन

समतल स्थान पर बैठकर बांये पांव की एड़ी गुदा और अण्डकोष के बीच के स्थान पर जमाकर रक्खें। और दाहिने पांव की एड़ी मूत्रेन्द्रिय के ऊपर तथा पंजा बांयें पांव की जङ्घा और पिण्डली के बीच में रहे। दोनों पांवों के गट्टे मिले हुए रहें, ठोड़ी का झुकाव कुछ नीचे की ओर करें अथवा कण्ठमूल में लगावें, हाथ घुटनों पर रहें, दृष्टि नासिकाग्र भाग पर स्थिर रहे, मेरुदण्ड ग्रीवा आदि सभी सम रेखा में सरल रहने चाहिएं।

यह आसन योगाभ्यास ध्यान आदि के लिये सर्वोत्तम है, ब्रह्मचर्य

की रक्षा में भी परम सहायक है, अतः इसका अभ्यास कम-से-कम एक-दो घंटे का तो अवश्य ही कर लेना चाहिये। इस आसन को किसी भी समय पढ़ते-लिखते, खाते-पीते कर सकते हैं।

इस आसन के अभ्यास से मन स्थिर, जठराग्नि दीप्त और हृदय बलवान् होता है। श्वास, कास, अतीसार, बहुमूत्र, स्वप्नदोष प्रमेहादि रोग नष्ट होते हैं। विषयवासना शान्त होकर वीर्य की ऊर्ध्वगति हो जाती है। इसकी सिद्धि से ब्रह्मचर्य की भी सिद्धि होती है, अतः ब्रह्मचारी को ब्रह्मचर्य की सिद्धि तथा वीर्य रक्षा के लिए इसका विशेष अभ्यास करना चाहिए।

४—पश्चिमोत्तानासन

भूमि पर बैठकर दोनों पांवों को सीधा पसार दें, कुछ आगे को झुकते हुए दोनों हाथों से दोनों पांवों के अंगूठों को पकड़ लें और साथ ही श्वास को बाहर निकाल कर पेट को अन्दर खेंचें तथा शिर घुटनों पर रखें, यदि हो सके तो पांवों के बीच में भूमि पर रखने का प्रयत्न करें। पांव घुटनों में से न मुड़ें और पांवों के पंजे भी आगे को तने रहें।

पेट के लिए यह आसन सर्वोत्तम है, इससे जठराग्नि प्रदीप्त होती होती है, पेट हल्का तथा कोमल रहता है, पेट की नस-नाड़ियां मल रहित हो जाती हैं, चर्बी कम होकर पेट छोटा हो जाता है। अजीर्णता, मन्दाग्नि, मलावरोध, उदर पीड़ा प्रभृति उदर विकार समूल नष्ट होते हैं। यकृत् और प्लीहा निर्दोष हो जाते हैं, कुबड़ापन दूर होता है, कद और आयु की वृद्धि होती है।

५—सर्वाङ्गासन

समभूमि पर चित्त लेट जावें और हाथों को सीधा पसार दें, पश्चात् पांवों को शनैः शनैः ऊपर को उठावें और हाथों को कटि पर लगाकर सहारा लेकर इतना सीधा कर दें कि केवल कन्धों के ऊपर का भाग ही भूमि पर टिके। सम्पूर्ण शरीर खिंचा हुआ हो, और श्वास

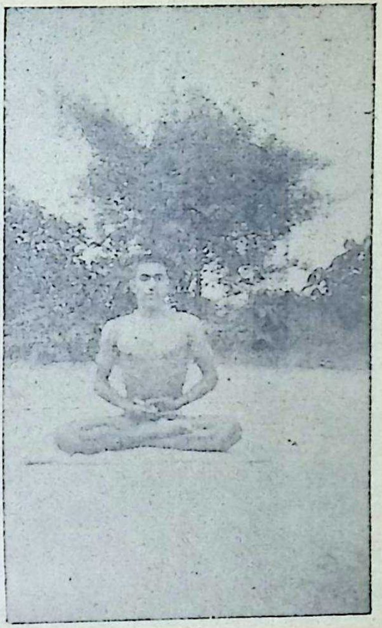

सिद्धासन

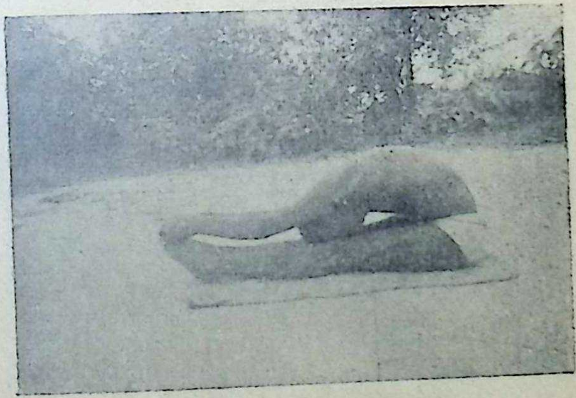

पश्चिमोत्तानासन

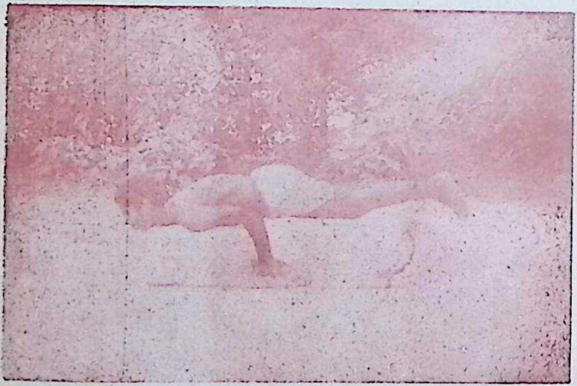

मयूरासन

अन्दर रहे, ठोड़ी कण्ठमूल में लगावें तथा दृष्टि पांव के अंगूठों पर जमावें।

इस आसन के करने से यकृत्, प्लीहा, पक्वाशय, आंतें शुद्ध होकर जठराग्नि तीव्र होती है, कोष्ठबद्धता दूर होती है। कण्ठ के रोगों में लाभदायक है। मिर्गी, गठिया तथा वीर्यरक्षा के लिये उत्तम है।

६—हलासन

सर्वाङ्गासन की स्थिति से ही पांवों को शनैः शनैः शिर के पीछे टेक दें, पांव सीधे रहें और हाथों को भूमि पर सीधा पसार दें तथा श्वास को बाहर निकाल दें।

इसके लाभ भी सर्वाङ्गासन के समान ही हैं। इसके करने से विशेषतया आन्तों को शक्ति मिलती है, कद बढ़ता है, कटिशूल में उत्तम है।

७—मयूरासन

इस आसन को करने के लिए हाथों के पञ्जे पांवों की ओर कर दृढ़ता से भूमि पर जमावें, हाथों के पञ्जों में एक बालिश्त से अधिक अन्तर न रहे। कोहनियों को मिलाकर नाभि पर लगा पांवों को ऊपर उठावें, दोनों पांव मिले हुए तथा तने हुए रहने चाहियें, शिर ऊपर को उठा हुआ रहे। मोर की भांति सम्पूर्ण शरीर का भार पञ्जों पर सन्तुलित रहना चाहिए। आरम्भ में इस आसन का अभ्यास किसी ऊँचे स्थान मेज, कुर्सी, चबूतरे आदि पर करना चाहिए।

इस आसन के करने से जठराग्नि तीव्र होने के कारण पेट के रोग नहीं होते। हाथों के पहुँचे दृढ़ होते हैं, पेट की चर्बी भी कम हो जाती है। संग्रहणी, अतिसार आदि आन्तों के रोगों में लाभप्रद है।

———

संस्था समाचार

आयुर्वेद महाविद्यालय

गुरुकुल झज्जर रोहतक में आयुर्वेद महाविद्यालय के लिये प्राप्त हुए धन तथा वचनों की सूची पिछले अङ्क में निकल चुकी है। उसके उपरान्त जो धन प्राप्त हुआ है उस की सूची निम्न प्रकार है।

गोच्छी रोहतक

श्री महाशय सीताराम जी आर्य	३०१)
,, भगत नान्हेराम जी आर्य	३०१)
श्री माङ्गेराम गोर्द्धनसिंह सुपुत्र बूजनसिह जी	१५१)
श्री महाशय शिवदान जी	१०१)
श्री हरिराम जी	१०१)
श्री कूड़ेसिंह जी	१०१)

वचन

श्री महाशय कूड़ेसिंह जी	५००)
श्री महाशय हरिराम जसराम जी	४००)
श्री महाशय रामसिंह हरनामसिंह जी	१०१)

दाद्या (वजीरपुर) वचन

श्री महाशय प्रभुदायाल जी	१०१)
मामचन्द जी	१०१)
श्री महाशय लाल जी नम्बरदार	१०१)
श्री ,, मौजीराम जी सरपञ्च	१०१)
,, ,, हीरा भोला जी	५१)

श्री महाशय जयलाल जी ५०)

मिलकपुर

विविध हमाशयों द्वारा २००)

समचाणा

श्री सा० वेगराज जी २०१)
श्री सुमेरसिंह जी १०१)
विविध महाशयों द्वारा ८५)

वचन

श्री सा. वेगराज जी ३००)

वेरी वचन

श्री डिप्टी कन्हैयालाल जी ५०१)
" दफेदार रिसालसिंह जी ४००)
श्री डिप्टी बलदेवसिंह जी १०१)
श्री सभाचन्द जी मोटरवाले १०१)
श्री अमीलाल जी १०१)
श्री महाशय केवलकृष्ण जी १०१)
" " रामस्वरूप जी १०१)
" रिसलदार रामस्वरूप जी ३०)
" महाशय मुगलूराम जी २५)

गुरुकुल का वार्षिक महोत्सव ता. २. ३. मार्च सन ५४ ई. मङ्गल, बुधवार को समारोह से मनाया गया। इस अवसर पर ५७२८) पांच ससस्त्र सात सौ अट्ठाईस रुपये गुरुकुल को नकद धन की प्राप्ति हुई। इस धन राशि में एक सौ एक रुपये तथा इससे अधिक दान देने वालों की नाम-सूची निम्न है।

श्री कैप्टन रामकला जी धान्दलान ५०१)
श्री फतहसिंह शालिग्राम जी दाद्यां ५०१)

श्री महाशय जुगलाल जी कासनी	३००)
श्री प. राजपाल जी विहूनी गढ़मुक्तेश्वर	१०१)
श्री महाशय जुगलाल जी खूगाई	१०१)
” ” राजेराम जी मिलकपुर के परिवार से	१०१)
श्री शिवनरायण जी कृषिनिरीक्षक आकूपुर	१०१)
श्री मुख्त्यारसिंह जी जहांगीरपुर	१०१)
श्री महाशय नन्दलाल जी जहांगीरपुर	१०१)
श्री मा. दिलीपसिंह जी लूलोढ	१०१)
श्री मेजर मेहरचन्द जी खूंगाई	१०१)
श्री मेजर चन्दनसिंह जी बादली	१०१)
श्री महाशय जुगलाल जी कलोई	१०१)
श्री महाशय लज्जेराम जी छारा	१०१)
श्री मा. लक्ष्मणसिंह जी किढ़ौली	१०१)
श्री मा. दरियावसिंह जी ढाकला	१०१)
श्री सूबेदारमङ्गलसिंह जी टकरी	१०१)
श्री सुलतानसिंह जी नम्बदार भदानी	१०१)
श्री हरफूलसिंह जी आर्य भदानी	१००)
श्री इन्द्राज जी खेड़का	१००)

वचन

श्री मा. लक्ष्मणसिंह जी	४००)
श्री महाशय नन्दलाल जी आर्य	४००)
श्री सूबेसिंह जी गढ़ी	१०१)
श्री मोहनलाल जी मुनीमपुर	१०१)
श्री प्रह्लादसिंह जी सरपंच भदानी	१०१)
श्री खुशीराम जी आर्य जहांगीरपुर	१११)
श्री रामासिंह जी आर्य जहांगीरपुर	१११)

श्री साँवलसिंह जी पहलवान बाबेपुर १०१)
श्री मनफूलसिंह जी पहलवान खेड़का १०१)
श्री मा. कुन्दनलाल जी १०१)
श्री रतनसिंह सरदारसिंह जी रैया १०१)

महोत्सव के निमित्त महोत्सव के उपरान्त निम्न-धन प्राप्त हुआ।

श्री महादेवी बिरला मेमोरियल चैरिटी ट्रस्ट कलकत्ता ५०१)
श्री सेठ श्रीकृष्ण जी बेरी वाले कलकत्ता . २०१)

सात्विक दान

श्री माननीय राय बहादुर रणधीरसिंह जी रईस दुलीना रोहतक जिले के प्रसिद्ध भूमिपतियों में से है. उन्होंने गुरुकुल के महोत्सव पर २०० बीघे भूमि गत वर्ष गुरुकुल के लिये प्रदान की थी। अपने चि० पुत्र सम्पूर्णसिंह जी तथा श्री जोग मन्दिरजी की प्रेरणा से इस वर्ष उन्होंने अपनी कूकड़ौले की उपजाऊ भूमि में से १०० बीघे भूमि गुरुकुल को प्रदान की है। साथ ही उन्होंने ११०१) अपने ज्येष्ठ पुत्र श्री सम्पूर्ण सिंह जी के नाम पर कमरा बनवाने के लिये दिये हैं। साथ ही एक कमरा अपने कनिष्ठ पुत्र श्री जोग मन्दिर श्री के नाम पर ११०१) का बनवाने का वचन दिया है, जिसमें १०१) दान दे चुके हैं १०००) शीघ्र भिजवा देंगे, ऐसा वचन दिया है। अन्न के उपलक्ष में ६०) दश मन अन्न के अन्न की फस्ल के आने से पहले ही प्रदान कर दिये हैं। भगवान् ऐसे परम उदार व्यक्ति उत्पन्न करे जिससे सार्वजनिक कार्यों में प्रगति हो सके। गरुकुल की ओर से सब दानी महानुभावों का धन्यवाद।

निवेदक—मुख्याधिष्ठाता

नवीन ब्रह्मचारियों का प्रवेश

गुरुकुल झज्जर रोहतक में नवीन ब्रह्मचारियों का प्रवेश प्रारम्भ हो गया है। महर्षि दयानन्द महाराज की शैली के अनुसार आर्ष शिक्षाक्रम के द्वारा व्याकरण आदि विषयों की पढ़ाई समुचित प्रबन्ध है। प्रवेश शुल्क २५) एक बार देना पड़ता है। घृत रहित भोजन का १२०) व्यय वार्षिक लिया जाता है। प्रवेश पत्र कार्यालय से मंगायें। विशेष जानकारी के लिये लिखें।

निवेदक—मुख्याधिष्ठाता

सुधारक के विज्ञापन नियम

समय (अंक)	पूरा पृष्ठ	आधा पृष्ठ	चौथाई पृष्ठ
१	१६)	६)	५)
३	४०)	२४)	१३)
६	७५)	४५)	२५)
१२	१३०)	७५)	४५)

टाईटल अन्तिम (चौथा) पृष्ठ (बाहर का) १५% अधिक
" " तीसरा " (भीतरी) १०% अधिक

विशेषाङ्क में सवाया मूल्य।

संस्थाओं के विज्ञापन आधे मूल्य में।

—व्यवस्थापक

आर्य आयुर्वैदिक रसायनशाला (फार्मेसी) गुरुकुल झज्जर (रजि०) रोहतक की

बहुमूल्य औषधियां

च्यवनप्राश

इसी ऋतु के ताजे आंवले से तैयार किया गया स्वादिष्ठ, सुमधुर और दिव्य रसायन (टानिक) है। जिसका सेवन प्रत्येक ऋतु में स्त्री, पुरुष, बालक व बूढ़े सब के लिये अत्यन्त लाभदायक है। पुरानी खांसी, जुकाम, नजला, गले का बैठना, दमा, तपेदिक, सभी हृदय-रोगों की अद्वितीय औषध है। स्वप्नदोष, प्रमेह, धातुक्षीणता तथा अन्य सब प्रकार की निर्बलता और बुढ़ापे को इसका निरन्तर सेवन समूल नष्ट करता है। यह निर्बल को बलवान् और बूढ़े को जवान बनाने की अद्वितीय औषध है।

मूल्य ७) सेर, ५ सेर लेने पर ६) सेर

स्वप्नदोषामृत

इस भयङ्कर रोग के कारण प्रायः सभी युवक और विद्यार्थी हताश और निराश दिखाई देते हैं। यह औषध इस रोग को दूर करने में बहुत लाभदायक सिद्ध हुई है। यह प्रमेह अर्थात् मूत्र में आगे, पीछे या बीच में वीर्य के आने को बन्द कर देती है। मूल्य ५) रुपये

सूखा रोगामृत

जिन गृहस्थों के बालक सूखा रोग (मसान) से सूख-सूख कर मरते हैं। अनेक प्रकार चिकित्सा करने पर भी कोई लाभ नहीं,

होता। ऐसे निराश रोगियों के लिये यह औषध अचूक है। सहस्रों रोगियों पर अनुभूत है। इसके अतिरिक्त बालक के हरे पीले दस्त, अजीर्ण, अरुचि, दाँत निकलते समय के रोग, वमन, निर्बलता और ज्वर आदि सभी रोगों को दूर कर बालकों को मोटा करता है। अतः प्रत्येक गृहस्थी घर में रखे।

मू० १ मास के सेवन तथा मालिश के लिये १२)

पाचनामृत

मन्दाग्नि, अरुचि; अजीर्ण (कब्ज), पेट का फूलना, पेट का भारीपन, शूल, जी मिचलाना, वमन, खट्टी डकार आदि पेट के सभी रोगों को नष्ट कर भूख को बढ़ाता है। आंतों के सब रोगों को दूर कर पाचनशक्ति को बल देता है। पुराने से पुराने तिल्ली-जिगर की अचूक औषधि है। मूल्य एक शीशी ४)

पामामृत (दाद खुजली)

यह सब ही खुजली दादादि चर्म रोगों के लिये अत्युत्तम औषध है। खुजली सूखी हो या पकने वाली, यह सब प्रकार की खुजली के लिये रामबाण औषध है। इसके प्रयोग करने के पश्चात् किसी अन्य औषध की आवश्यकता नहीं। दाद को जड़ से नष्ट करती है।

मूल्य २)

बाल रोगामृत

बालकों को हरे-पीले दस्त, अपच, अजीर्ण (कब्ज), अरुचि, दांत निकलते समय के रोग, सूखिया (मसान) रोग, वमन, निर्बलता ज्वर आदि सभी रोगों को दूर कर बालकों को मोटा करता है। अतः प्रत्येगृहस्थी घर में रखें।

मूल्य छोटी शीशी २) एक शीशी ५)

कर्ण रोगामृत

कान से पीप आना' बहरापन और प्रत्येक प्रकार की कर्ण पीड़ा को दूर करने के लिये यह उत्तम औषधि है। प्रतिदिन सेवन करने से कानों का कोई रोग नहीं होता और मस्तिष्क की शुष्कता दूर होती है।

मूल्य एक शीशी १)

ज्वरामृत

यह नये व पुराने सभी प्रकार के ज्वरों की रामवाण औषध है। बिगड़े हुये मलेरिया, विषम ज्वर को दूर करने में अद्वितीय औषध है। कुनेन का सेवन सिर दर्द, स्वप्न दोष, प्रमेह आदि अनेक रोगों को उत्पन्न करता है, किन्तु कह औषध सब दोषों को दूर करती है तथा ज्वर की प्रत्येक अवस्था में दी जा सकती है!

सेवन विधि---मात्रा १ तोला से २ तोला तक समान जल मिला कर, बढ़े हुये ज्वर में गरम जल मिला कर तथा उतरे हुये में ताजा जल मिलाकर दिन में तीन बार लेवें। आवश्यकतानुसार अधिक बार भी ले सकते हैं। मूल्य छोटी शीशी २) बड़ी शीशी ५)

उदर सुधा रस

यह रस उदर के प्रत्येक प्रकार के रोग के लिए अमृत का काम करता है। पेट का कोई रोग रहने नहीं पाता। मरोड़ तथा दर्द को तो देते के साथ ही शान्त करता है। अजीर्ण दूर करके आरोग्य प्रदान करता है। मूल्य ३) तोला

बलदामृत

इसकी जितनी प्रशंसा की जाय थोड़ी है। हृदय और उदर के रोगों में रामवाण है, इसके निरन्तर प्रयोग से फेफड़ों की निर्बलता दूर

होकर पुनः बल आ जाता है। पीनस (सदा रहने वाले जुकाम और नजले) की महौषधि है। वीर्यवर्द्धक कास (खांसी) नाशक, राजयक्ष्मा (तपेदिक) श्वास (दमा) के लिये लाभकारी है। रोग के कारण आई निर्बलता को दूर करती तथा अत्यन्त रक्तवर्द्धक है। निर्बलों को बलिष्ठ व हृष्ट-पुष्ट बनाती है। यह अपने ढङ्ग की एक ही औषधि है।

मूल्य छोटी शीशी २) बड़ी शीशी ५)

ब्राह्मीघृत

यह घृत आयुर्वेद शास्त्र की विधि के अनुसार बनाया गया है। इसका सेवन कुष्ठ (कोढ़) मृगी (हिस्टीरिया), मस्तिष्क की निर्बलता, चक्कर आना, याद किये हुये पाठ तथा सुनी हुई बात का भूल जाना रक्खी हुई वस्तु याद न रहना आदि को जड़ से नष्ट कर देता है और जिसकी स्मरण शक्ति सर्वथा नष्ट हो चुकी हो उसके लिये श्रुतिधर अर्थात् एक बार सुन लेने पर फिर कभी न भूलने वाला बना देता है। स्कूल के विद्यार्थी, दफ्तर के बाबू और वकील आदि मस्तिष्क का काम करने वालों के लिये अत्यन्त लाभदायक हैं। स्वप्नदोष, सब प्रकार के धातु प्रमेह को दूर करता है, इसके सेवन से स्मरण शक्ति खूब बढ़ती है। मूल्य आध पाव ४) एक सेर ३२)

सञ्जीवनी तैल

मूर्च्छित लक्ष्मण को चैतन्य देने वाली इतिहास-प्रसिद्ध बूटी से तैयार किया गया यह तैल घावों को भरने में जादू का काम करता है। भयङ्कर फोड़े-फुन्सी, गले-सड़े जख्मों तथा आग से जले जख्मों की अचूक दवा है। कोई दर्द या जलन किये बिना थोड़े समय में सभी प्रकार के घावों को भर कर ठीक कर देता है। खून का बहना तो तुरन्त ही बन्द हो जाता है। चोट की भयङ्कर पीड़ा को तुरन्त शान्त

कर देता है। दिनों का काम घण्टों में और घण्टों का काम मिनटों में पूरा कर देता है। फाये में भर कर बार बार चोट आदि पर लगायें।

मूल्य छोटी शीशी ॥=) बड़ी शीशी ५)

नेत्र ज्योति सुर्मा

लगाइये और नेत्र ज्योति पाइये। इसके लगाने से आँखों के सब रोग—जैसे आँख दुखना, खुजली, लाली, जाला, फोला, रोहे, कुकरे, पास का कम दीखना (शोर्ट साइट), दूर का कम दीखना (लांग साइट) प्रारम्भिक मोतिया बिन्द आदि दूर हो जाते हैं। आँख के सब रोगों की राम बाण औषध है। यही नहीं किन्तु लगातार लगाने से दृष्टि (बीनाई) को तेज तथा आँखों की कमल की तरह साफ स्वच्छ रखता है। बुढ़ापे तक आँखों को रक्षा करता है। प्रतिदिन जिसने भी लगाया उसी ने मुक्तकण्ठ से इस सुर्में की प्रशंसा की है।

सेवन विधि—पहले सलाई को शुद्ध जल से धोकर पोंछ लें। फिर सुर्में में भर कर झाड़ कर लगाइये। प्रातः सायं लगाना चाहिये।

मूल्य ॥) शीशी

स्त्रीरोगामृत

यह स्त्रियों के प्रत्येक रोग में रामबाण है। रक्त व श्वेतप्रदर तथा मासिकधर्म के लिये अत्यन्त लाभप्रंद है। प्रसूत रोगों को नष्ट करता है।

मूल्य २) बड़ी शीशी।

नपुंसक संजीवनामृत

स्वप्नदोषादि रोगों तथा अन्य अप्राकृतिक कारणों से जो पुरुष नपुंसक (नामर्द) हो चुके हैं। उनके लिये यह औषधि अमृत के समान लाभदायक है। पुनः पुरुषत्व प्रदान करती है। मू० ५)

ब्राह्मी आंवला तैल

यह मस्तिष्क की निर्बलता व उष्णता को दूर करता है। बालों को काला करता है। गंज बालों के झड़ने को दूर करता है। मृगी,

पागलपन, हिस्टीरिया, आदि में भी इसका उपयोग हितकर है।

मूल्य ४) पाव

अमृतघृत

यह घृत सब प्रकार के विष स्थावर (संखियादि) जंगम (सर्प बिच्छू विषादि) को दूर करता है। अपस्मार, उन्माद, क्षय, भूतग्रह, उदर-विकार, पाण्डु, प्लीहा, कामला, हनु स्तम्भ आदि रोगों में विशेष लाभकारी है, विषनाश करने में तो अमृत का काम करता है। यह मृत सदृश पुरुषों को भी जीवन प्रदान करता है। अतः इसे अमृत कहा है। यह सब विषों के नाशक घृतों में श्रेष्ठ है।

मूल्य ४) आध पाव ३२) सेर

बृहद् योगराज गूगल

यह वात रोगों के लिये रामबाण औषध है। जोड़ों का दर्द गठिया, अर्धाङ्ग, लकवा, रींगनबाव, हाथ पैरों का कम्पन, पीठ जांघ आदि की पीड़ा, हाथ पावों का सूखना आदि वायु रोगों को दूर करने के लिये, इसके समान कोई औषध नहीं है। १ तोला मूल्य २।।)

फलघृत

यह स्त्रियों के गर्भाशय के सभी रोगों को दूर करता है। जिन स्त्रियों को गर्भ नहीं ठहरता, या ठहर कर गिर जाता है, या सन्तान निर्बल होती है, उनके लिये अत्युत्तम है। स्त्रियों के शरीर या कमर दर्द के लिये बहुत उत्तम है। स्त्रियों के आर्तव दोष तथा पुरुषों के वीर्य दोष दूर करता है। जिनके बच्चे मर जाते हैं उन गृहस्थों को इसका सेवन करना चाहिये। जिनके कन्यायें ही होती हैं इसके सेवन से पुत्र उत्पन्न होता है। इसका अनुभव तो सेवन करके ही किया

जाता है। संतान रूपी फल का देने वाला यथा नाम तथा गुणकारी है। प्रत्यक्ष में प्रमाण क्या। सेवन करें और फल प्राप्त करें।

मूल्य ४) आध पाव ३२) सेर।

शीतपित्तामृत

यह शीत पित्त अर्थात् छपाकी पित्त निकलने के रोगों को सर्वथा दूर करने वाली औषध है। पुरानी से पुरानी बिगड़ी हुई शीत पित्त छपाकी इससे दूर हो जाती है। इसके प्रयोग से इसका मूल ही नष्ट हो जाता है।

मूल्य ५) एक मास के सेवनार्थ।

दन्त रक्षक मंजन

दांतों से खून वा पीप का आना, दांतों का हिलना, दांतों के कृमि रोग, सब प्रकार की दांतों की पीड़ा तथा रोगों को दूर भगाता है और दांतों को मोतियों के समान चमकाता है। मूल्य १ शीशी ।।)

त्रिफलादि घृत

यह घृत आंखों के लिये अत्युत्तम है। इसकी जितनी प्रशंसा करें थोड़ी है, यह आंखों के समस्त रोगों के लिये रामबाण है। इसके सेवन से नेत्रों का कोई भी रोग नहीं रहता। इससे रतौंधी, आंखों की खुजली; पानी जाना, धुंधजाला इत्यादि सब रोग दूर होते हैं, आंखें निर्मल होकर चमकने लगती हैं। सौ वर्ष तक नेत्र ज्योति नवयुवकों के समान बनी रहती है। मोतियाबिंद को भी लाभदायक है। आंखों के छोटे-बड़े सब रोगों को हितकारी है। मूल्य आध पाव ४) एक सेर ३२)

रक्त पित्तामृत

शरीर के मुख, नासिका, गुदा आदि किसी भी मार्ग से तथा सांप के काटने, बवासीर तथा अन्य किसी भी रोग के कारण कितनी ही

अधिक मात्रा में रक्त [लहू] निकलता हो, इसकी कुछ ही मात्रा देने से तुरन्त रुकता है। पित्तज्वर, हाथ पांवों की जलन, हृदय व दिल की धड़कन आदि पित्त के सभी रोगों में रामबाण है। मू० ४)

व्रणामृत

भयङ्कर फोड़े, फुन्सी, गले-सड़े पुराने जख्मों तथा अनेक वर्षों के नासूर [सरह] आदि रोगों की अद्वितीय औषध है। दिनों का काम घण्टों व घण्टों का काम मिनटों में करती है। मूल्य एक शीशी १)

प्रसूतामृत

यह प्रसूता स्त्री [जच्चा] के सभी रोगों अर्थात् ज्वर, कास [खांसी], अतिसार [दस्त] आदि रोगों को दूर करता है। प्रसूता की निर्बलता को दूर कर पुनः बल, जीवन और शक्ति प्रदान करता है। अत्यन्त लाभदायक औषध है। मूल्य ५)

दन्त रक्षक तैल

दांतों तथा मुख के सभी रोग दूर करता है। प्रति दिन के प्रयोग से दांत मजबूत होते हैं। कोई रोग नहीं होता। दन्त पीड़ा आदि सभी रोग नष्ट होते हैं। इसका प्रतिदिन दातुन की तरह प्रयोग करना चाहिये।

मूल्य ।।) शीशी

अर्शरोगामृत

यह औषधि सब प्रकार के अर्श (बवासीर) के लिये रामबाण का काम करती है। हमारी रसायनशाला में इसे तैयार करने के लिये कई मास तक भरसक प्रयत्न किया गया है। इसकी तीन-चार मात्रा के सेवन मात्र से ही खून का आना तो तुरन्त बन्द हो जाता है। यह औषधि जादू के समान तुरन्त प्रभाव दिखाती है। प्राचीन आयुर्वेद का इसे चमत्कार कहना चाहिये। संसार में इससे बढ़ कर अर्श के लिये कोई औषधि नहीं।

सेवन विधि—एक से दो गोली तक प्रातः-सायं धारोष्ण दूध के साथ सेवन करें। यदि कोष्ठवद्धता (कब्ज) के कारण मल त्यागते समय रक्त आता है तो गोली लेते समय एक तोले से दो तोले तक ईसबगोल के साथ मिला कर सेवन करें। मूल्य एक मास के लिये १०)

बालरोगामृत रस

बालकों के प्रत्येक रोग, हरे पीले दस्त, वमन, अजीर्ण, अपचन तथा दांत बिकलते समय के सभी रोग, ज्वर खांसी आदि को दूर करता है। तथा बालकों को मोटा करता है।

मूल्य एक मास की औषधि ६) नमूना १)

१ यदि आप उत्तम औषधियां प्राप्त करना चाहे तो सब प्रकार के आसव-अरिष्ट, रस, भस्में, अवलेह, पाक, चूर्णादि हम से मंगा कर देखें। उत्तम रीति से हम शास्त्रोक्त विधि से बनाते हैं।

स्वास्थ्यवर्धक चाय

यह चाय स्वदेशी, ताजी एवं शुद्ध जड़ी-बूटियों से तैयार की गई है। वर्तमान चाय की भाँति यह नींद और भूख को न मार कर खाँसी, जुकाम, नजला, सिरदर्द, खुश्की, अजीर्ण, थकान, सर्दी आदि रोगों को दूर भगाती है। मस्तिष्क एवं दिल को शक्ति देती है। मू० १ छटांक ।)

'सुधारक' के विषय में सम्मतियां

यह मासिक पत्र सामाजिक कुरीतियों को निर्भयता पूर्वक दूर करने तथा आर्थिक, राजनीतिक व धार्मिकआदि क्षेत्रों से मलविक्षेप दूर करने के हेतु महर्षि दयानन्द के अनुयायी ब्रह्मचारी श्री भगवान्देव आचार्य गुरुकुल झज्जर (रोहतक) के सुयोग्य सम्पादकत्व में प्रकाशित हो रहा है। पृष्ठ संख्या २४ होते हुए वार्षिक मूल्य केवल २) है। उसका हाल में सुन्दर गो-विशेषाङ्क निकला है और 'व्यायाम सन्देश' विशेषाङ्क भी मई में प्रकाशित होने वाला है। सभी सुधार प्रेमी इसको अपनावें।

'वालंटियर लश्कर, ग्वालियर

गो-अंक के लिए आपने जो प्रयत्न किया है वह प्रशंसा योग्य है। अंग्रेजी तथा संस्कृत के प्रत्येक प्रसिद्ध लेखक का विचार लिखा है। यह अंक इतना सारगर्भित है, आर्य तो क्या यदि अनार्य भी इसे पढ़े इतना ही नहीं यदि मुसलमानी भी पवित्र हृदय से पढ़े तो वह भी गाय का भक्त बन जायेगा। —मास्टर सरदारसिंह

एम० बी० स्कूल, बस्ती रेघट, देहली।

सुधारक का गो-विशेषांक

गुरुकुल झज्जर (रोहतक) का सचित्र मासिक पत्र गत छः मास से प्रकाशित हो रहा है। जनवरी-फरवरी १९५४ ई० का उसका यह गो-विशेषांक है। वार्षिक मूल्य २) रु० तथा एक अंक का ≡) आना। सम्पादक श्री भगवान्देव जी आचार्य एवं श्री विश्वप्रिय शास्त्री हैं।

गो-माता के सर्वाङ्गीण महत्व पर प्रकाश डालता हुआ ४८ पृष्ठों का यह लघुकाय विशेषांक अत्युत्तम पाठ्य-सामग्री से परिपूर्ण है। भारत वर्ष गौ को अपनी कामधेनु माता मानता है; अतः गोरक्षा अत्यावश्यक है तथा गो-दुग्ध अमृत है, इत्यादि विषयों पर तीन-चार लेख महत्व पूर्ण हैं। हम पत्र तथा विशेषांक की सफलता चाहते हैं।

श्री वेङ्कटेश्वर समाचार बम्बई।

हमारी एजेन्सियां

१—गुरुकुल फार्मेसी रेलवे रोड रोहतक।
२—नवजीवन संचारक कम्पनी, आर्यसमाज सीताराम बाजार देहली।
३—वैद्य सोमवीर आयुर्वेदाचार्य, मार्केट रोड डालमियां दादरी, महेन्द्रगढ़
४—जगराम आर्य ग्राम पोस्ट समचाना जि० रोहतक।
५—फतहसिंह आर्य ग्राम पोस्ट रैय्या जि० रोहतक।
६—अतरसिंह आर्य माजरा पोस्ट जहाजगढ़ जि० रोहतक।
७—कुरड़ाराम आर्य दातोली पोस्ट चिड़िया जिला महेन्द्रगढ़।
८—शिवनारायण जी आर्य पंचगामा पोस्ट बाढ़ड़ा जि० महेन्द्रगढ़।
९—दुलीचन्द आर्य आर्यनगर पोस्ट बाढ़ड़ा जि० महेन्द्रगढ़।
१०—बलराम आर्य वैद्य ग्राम पोस्ट नोनामाजरा जिला रोहतक।
११—मा० दलीपसिंह आर्य लूलोढ़ पोस्ट गोरिया जिला रोहतक।
१२—प्यारेलाल आर्य ग्राम पोस्ट भापड़ौदा जि० रोहतक
१३—कुन्दनलाल आर्य ग्राम पोस्ट इसलोटा जि० महेन्द्रगढ़
१४—परशुराम आर्य जनरल मर्चेण्ट झज्जर जि० रोहतक
१५—सम्राट् प्रेस पहाड़ी धीरज देहली।
१६—श्री रघुवीरसिंह बोडा, ग्राम-पोस्ट-एलम जिला मुजफ्फरनगर।

इन से भिन्न अन्य भी बहुत सी छोटी-छोटी एजेन्सियां हैं।
एजेन्टों की आवश्यकता है, पत्र व्यवहार करें।

गोवध बन्द कराने के लिये ३६ करोड़ हिन्दुओं की मांग!
क्रान्तिकारी विचारों के साथ!

"गोरक्षण"

गोसेवा में भाग लेने के लिये आज ही २॥) वार्षिक गोदान भेजकर ग्राहक बनिये। नमूने के लिये ।=) का टिकट भेजिये। नमूना मुफ्त नहीं भेजा जाता। धार्मिक संस्थाओं और छात्रों को अर्ध मूल्य में। ग्राहक बनाने वालों को भरपूर कमीशन दिया जाता है। गोवध बन्दी कराने तथा गोरक्षा प्रचार के लिए स्वयं ग्राहक बनें तथा औरों को बनावें। चन्दा मनीआर्डर से नीचे लिखे पते पर भेजिए।

मैनेजर—"गोरक्षण" रामनगर बनारस।

सुधारक रजि० नं० ई० पी० ८०

ग्राहक संख्या ५४७ पता

सेवा में— श्री जगदीशचन्द्र ... विद्यार्थी

मु० C/o मुरारी ब्रदर्स

पो० कमलानगर

जि० देहली।

हवन सामग्री

यह हवन सामग्री सैकड़ों सुगन्धित, पौष्टिक, वलवर्धक औषधियों से तैयार की जाती है। ऋतु अनुकूल ताजा और शुद्ध सामग्री का ही यज्ञ करना महत्व रखता है। दैनिक हवन के प्रेमियों ने इसे अपनाया है। यज्ञ-महायज्ञ और संस्कार तथा पर्वों के लिये यह उपयोगी सिद्ध हुई है। मूल्य १) सेर

ग्राहकों से नम्र निवेदन

हम सुधारक का व्यायाम सन्देशाङ्क मई-जून (वैशाख-ज्येष्ठ) दोनों महीनों का प्रकाशित कर आपकी सेवा में भेज रहे हैं। यह-अङ्क पढ़कर इसके विषय में अपनी शुभ सम्मति अवश्य भेजने की कृपा करें। यह अङ्क पहुँचने पर दस मास के सुधारक के अङ्क आपके हाथ में पहुंच गये, अतः यदि आपने अभी तक इसका लागत मात्र मूल्य २) नहीं भेजा है तो तुरन्त ही मनीआर्डर द्वारा भेजने की कृपा करें। जो सज्जन ग्राहक नहीं हैं उनको यह अङ्क १) में मिलेगा। अभी तक ६००) रु० के घाटे में सुधारक चल रहा है। यदि प्रत्येक ग्राहक महानुभाव ५-५ नये ग्राहक बना दें तो सब कार्य सुचारु रूप से चल सकता है और अधिक सामग्री से युक्त सुधारक का प्रकाशन होसकता है।

प्रकाशक आचार्य भगवान्देव गुरुकुल झज्जर ने सम्राट् प्रेस पहाड़ी धीरज देहली में मुद्रक जगदेवसिंह शास्त्री सिद्धान्ती के प्रबन्ध से छपवाया।